अंक 286 वर्ष 58

भाषा

सितंबर–अक्तूबर 2019

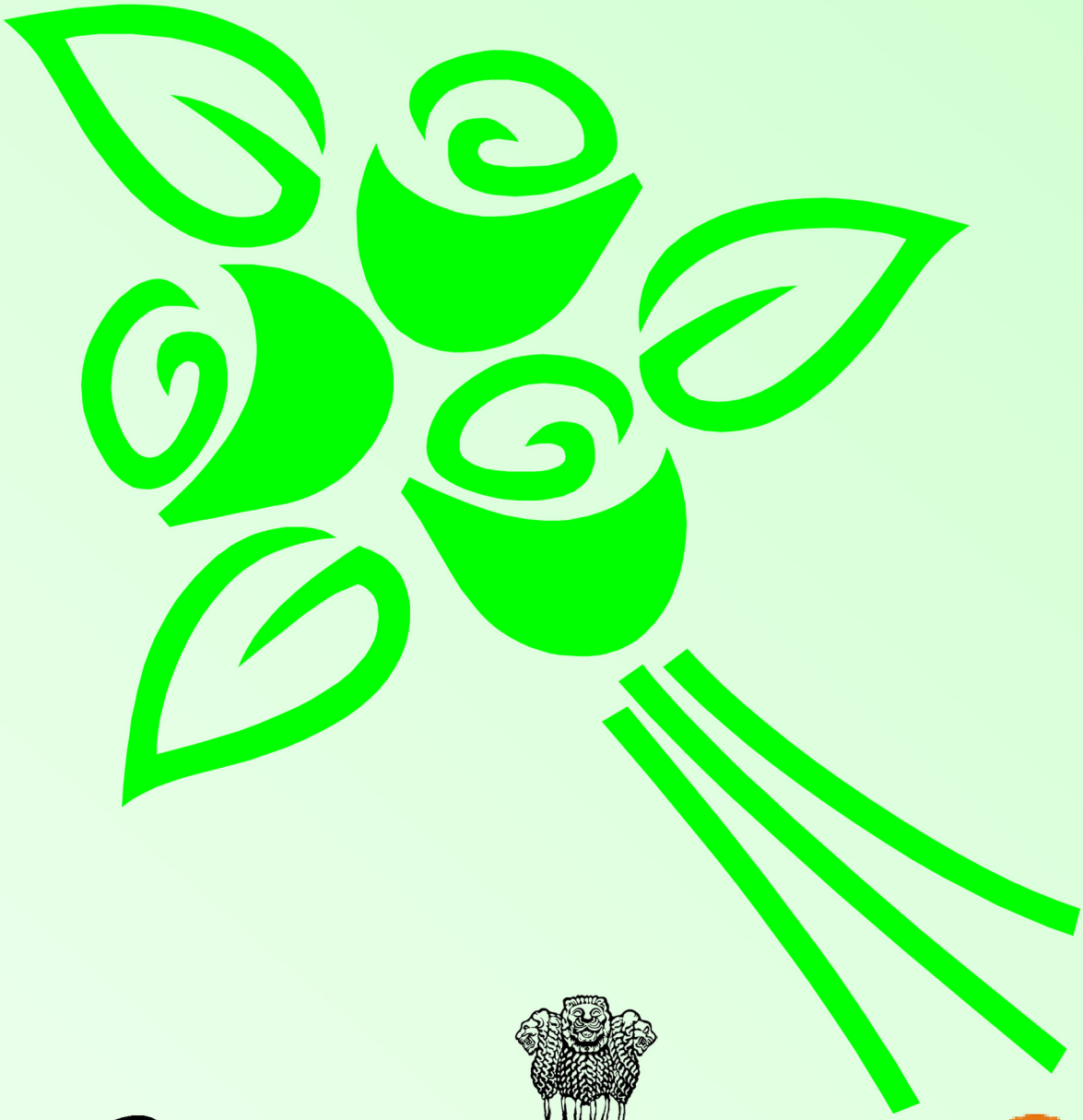

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

सत्यमेव जयते

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
भारत सरकार

Skill India

भाषा (द्वैमासिक)

लेखकों से अनुरोध

1. ***भाषा*** में छपने के लिए भेजी जाने वाली सामग्री यथासंभव सरल और सुबोध होनी चाहिए। रचनाएँ प्रायः टंकित रूप में भेजी जाएँ। हस्तलिखित सामग्री यदि भेजी जाए तो वह सुपाठ्य, बोधगम्य तथा सुंदर लिखावट में होनी अपेक्षित है। रचना की मूलप्रति ही भेजें। फोटोप्रति स्वीकार नहीं की जाएगी।

2. लेख आदि सामान्यतः फुल स्केप आकार के दस टंकित पृष्ठों से अधिक नहीं होने चाहिए और हाशिया छोड़कर एक ओर ही टाइप किए जाने चाहिए।

3. अनुवाद तथा लिप्यंतरण के साथ मूल लेखक की अनुमति भेजना अनिवार्य है। इससे रचना पर निर्णय लेने में हमें सुविधा होगी। मूल कविता का लिप्यंतरण टंकित होने पर उसकी वर्तनी संबंधी त्रुटियाँ प्रायः नहीं होंगी, अतः टंकित लिप्यंतरण ही अपेक्षित है। रचना में अपना नाम और पता हिंदी के साथ–साथ अंग्रेजी में भी देने का कष्ट करें।

4. सामग्री के प्रकाशन विषय में संपादक का निर्णय अंतिम माना जाएगा।

5. रचनाओं की अस्वीकृति के संबंध में अलग से कोई पत्राचार कर पाना हमारे लिए संभव नहीं है, अतः रचनाओं के साथ डाक टिकट लगा लिफाफा, पोस्टकार्ड आदि न भेंजे। इन पर कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी।

6. अस्वीकृत रचनाएँ न लौटा पाने की विवशता/असमर्थता है। कृपया रचना प्रेषित करते समय इसकी प्रति अपने पास अवश्य रख लें।

7. भाषा में केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी वर्तनी का प्रयोग किया जाता है। अतः रचनाएँ इसी वर्तनी के अनुसार टाइप करवाकर भेजी जाएँ।

8. समीक्षार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए।

संपादकीय कार्यालय

संपादक भाषा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली–110066

भाषा

सितंबर–अक्तूबर 2019

अध्यक्ष, परामर्श एवं संपादन मंडल
प्रोफेसर अवनीश कुमार

परामर्श मंडल

श्रीमती चित्रा मुद्गल
प्रो. गंगा प्रसाद विमल
डॉ. नरेंद्र मोहन
प्रो. श्याम आर. असोलेकर
श्री राहुल देव
प्रो. एम. वेंकटेश्वर
डॉ. मिलन रानी जमातिया

संपादक
डॉ. राकेश कुमार

सह–संपादक
श्रीमती अर्चना श्रीवास्तव

प्रूफ रीडर
श्रीमती इंदु भंडारी

कार्यालयीन व्यवस्था
सेवा सिंह

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार

ISSN 0523-1418
भाषा (द्वैमासिक)
वर्ष : **58** **अंक : 5 (286)**
सितंबर–अक्तूबर 2019

संपादकीय कार्यालय
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.chdpublication.mhrd.gov.in
ईमेल : bhashaunit@gmail.com
दूरभाषः 011–26105211 / 12

बिक्री केंद्र :
नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, सिविल लाइंस,
दिल्ली - 110054
वेबसाइट : www.deptpub.gov.in
ई–मेल : pub.dep@nic.in
दूरभाष : 011-23817823/ 9689
फैक्स : 011-23817846

सदस्यता हेतु ड्राफ्ट नियंत्रक,
प्रकाशन विभाग, दिल्ली के पक्ष में भेजें।

बिक्री केंद्र :
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.chdpublication.mhrd.gov.in
ईमेल : bhashaunit@gmail.com
दूरभाषः 011–26105211 / 12

सदस्यता हेतु ड्राफ्ट निदेशक, कें. हिं. नि.,
नई दिल्ली के पक्ष में भेजें।

मूल्य :

1.	एक प्रति का मूल्य	=	रु. 25.00	**(डाक खर्च सहित)**
2.	वार्षिक सदस्यता शुल्क	=	रु. 125.00	
3.	पंचवर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 625.00	
4.	दस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 1250.00	
5.	बीस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 2500.00	

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे भारत सरकार या
संपादन मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

अनुक्रमणिका

निदेशक की कलम से
आपने लिखा
संपादकीय
आलेख

1. अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य और हिंदी भाषा	डॉ. दीनदयाल	9
2. भारतीय अस्मिता और हिंदी साहित्य	डॉ. संध्या वात्स्यायन	16
3. गढ़वाली भाषा का व्याकरणिक स्वरूप: समासों के संदर्भ में	डॉ. वीरेंद्र सिंह बर्त्वाल	22
4. आज के संदर्भ में कामायनी	बबीता रानी श्रीवास्तव	26
5. तकनीकी शिक्षा में भाषा की भूमिका	डॉ. जय कौशल	30
6. संपर्क भाषा हिंदी बनाम राजभाषा हिंदी	रमेश चंद्र	33
7. उच्छृंखल प्रयोगों से मानकी स्वरूप खोती हिंदी	रामभवन सिंह ठाकुर विद्यावाचस्पति	36
8. केंद्रीय सरकारी कार्यालयों में राजभाषा हिंदी का विकास : एक अध्ययन	कंचन बाला	41
9. राष्ट्रभाषा हिंदी और महात्मा गांधी	डॉ. ओम प्रकाश पांडेय	46
10. स्वतंत्र भारत में आज हिंदी	प्रो. प्रदीप के. शर्मा	52
11. समाज, संस्कृति और भाषा: परस्पर संबंध और आधुनिक चुनौतियाँ	डॉ. रजनी 'प्रताप'	57

साक्षात्कार

12. प्रोफेसर कट्टीमणी से एक साक्षात्कार	डॉ. अनीता गांगुली	62

कविता (हिंदी)

13. काशी	इंदुकांत शर्मा	67
14. प्रात:काल का समय	विमला उपाध्याय	68
15. कुछ तो है	प्रियदर्शी खेरा	69

कहानी (हिंदी)

16. झेलम से गंगा की ओर	पवन कुमार खरे	70

कविता (अनूदित खंड)

17. अरण्यकांड में(कन्नड/हिंदी) — एच. एच. वेंकटेशमूर्ती, अनुवाद : डी. एन. श्रीनाथ — 74

18. छुटकारे (तमिल/हिंदी) — ईरोडु तमिळन्पन्, अनुवाद : र. शौरिराजन — 76

कहानी (अनूदित खंड)

19. हत्यारे (मैथिली) — नारायण जी, अनुवाद : वैद्यनाथ झा — 78

20. जोंके का डॉक्टर(तेलुगु) — श्रीनिवासराव, अनुवाद : एस. शेषारत्नम् — 83

परख

21. सृजन के आईने में अनुवाद (सेतु के आर-पार(नाटक)/डॉ. संतोष खन्ना) — प्रो. पूरनचंद टंडन — 88

22. विश्व भाषा हिंदी (विश्व भाषा हिंदी/प्रो. मीरा सरीन) — वशिनी शर्मा — 93

23. गज़लों में जीवन सत्य (सिराज औरंगाबादी (गज़ल-संग्रह)/असलम मिर्झा) — डॉ. जय शंकर शुक्ल — 96

24. मुद्दे की बात और एक सहज व्यंग्यकार का लेखन (नकटों के शहर में (व्यंग्य संग्रह)/संतोष त्रिवेदी) — डॉ. रमेश तिवारी — 98

25. रस्सी पर चलती लड़की (रस्सी पर चलती लड़की (काव्य-संग्रह)/ भगवान वैद्य प्रखर) — डॉ. सारिका कालरा — 103

संपर्क सूत्र — **108**

सदस्यता फार्म

निदेशक की कलम से

संपूर्ण भारत की सांस्कृतिक एवं भाषाई एकता के साथ-साथ यदि एक भारत श्रेष्ठ भारत की बात करें तो हिंदी भाषा भारत की एकता, अखंडता और श्रेष्ठता की सूत्रधार है। राष्ट्र की स्वतंत्रता से लेकर श्रेष्ठ राष्ट्र निर्माण में हिंदी भाषा एवं इसके साहित्य का अभूतपूर्व योगदान रहा है। भारत के संविधान के भाग 17 में धारा 343 से 351 तक राजभाषा के विषय में निर्देश हैं इसी के अनुसार संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी है तथा हिंदी के शब्द भंडार को विस्तृत करने के लिए मुख्यतः संस्कृत से तथा गौणतः अन्य भारतीय भाषाओं के शब्द ग्रहण करते हुए हिंदी भाषा की समृद्धि सुनिश्चित करना संघ का कर्तव्य निर्देशित किया गया है। राष्ट्र निर्माण एवं राष्ट्र विकास में भाषा का योगदान सर्वप्रमुख है। यदि हमारा भाषाई ज्ञान अधूरा है तब हमारा ज्ञान-विज्ञान के साथ-साथ राष्ट्रीय विकास भी अधूरा ही रहेगा। भाषा को इतना समृद्ध बनाया जाए कि ज्ञान-विज्ञान की अभिव्यक्ति की जा सके तथा इसके शब्द भंडार में असंख्य शब्द हों। भाषा हमारे ज्ञान के साथ-साथ संस्कृति, साहित्य, शिक्षा, जीविका, उपार्जन, जीवनचर्या आदि को सशक्त बनाने का काम करती है। हिंदी भाषा की उन्नति के बिना व्यवसाय की उन्नति में प्रश्न चिह्न लगा रहेगा। व्यवसाय जीविका उपार्जन का मुख्य अंग है। जीविका उपार्जन प्रत्येक नागरिक का मूलभूत अधिकार है तथा राष्ट्र निर्माण की नींव है। इस नींव को हमें मजबूत करना है ताकि आने वाली पीढ़ियों के लिए सशक्त भविष्य का निर्माण सुनिश्चित किया जा सके।

मनुष्य की जो चिंतन करने की प्रवृत्ति है उस प्रवृत्ति को भाषा के प्रभाव से मुक्त रखना होगा तभी हम विश्व में अग्रिम पंक्ति में अपने आप को खड़ा हुआ देखेंगे। चिंतन, आत्मविश्वास और व्यक्तित्व विकास हमारी मातृभाषा/जनभाषा से जुड़ा है। हमें अपनी मातृभाषा में पारंगत होने के बाद ज्ञान प्राप्ति के लिए अन्य भाषाओं, चाहे भारतीय हों अथवा विदेशी, को अपनाना होगा। ज्ञान को अपने राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक तक पहुँचाने के लिए, ताकि प्रत्येक भारतीय का जीवन स्तर ऊपर उठ सके, हमें हिंदी के ज्ञान को सर्वसुलभ कराना होगा। जब तक ज्ञान हिंदी में उपलब्ध नहीं होगा, ज्ञान जन-सामान्य तक नहीं पहुँचेगा, जन-सामान्य के जीवन-स्तर में सुधार तीव्र गति से नहीं होगा। मल्टीनेशनल कंपनियाँ जो भारत में व्यवसाय कर रही हैं हिंदी ही नहीं भारतीय भाषाओं को भी निसंकोच अपना रही हैं क्योंकि कंपनी अपने उत्पाद को जन-सामान्य तक पहुँचाना चाहती है। ठीक उसी प्रकार प्रत्येक भारतीय नागरिक को ज्ञानवान बनाने के लिए हमें ज्ञान की भाषा हिंदी बनानी होगी। हमारी संसद की भाषा, न्याय की भाषा, चिकित्सा विज्ञान की भाषा, इंजीनियरिंग की भाषा हिंदी होनी चाहिए। हिंदी में ज्ञान अधूरा है तो निश्चित रूप से हमारा विकास भी अधूरा है। सबका साथ सबका विकास मंत्र को तीव्र गति देने के लिए हिंदी के साथ-साथ समस्त भारतीय भाषाओं में ज्ञान और सूचनाएँ उपलब्ध कराना हमारा परम दायित्व होना चाहिए। यदि ऐसा होता है तो भारत विकसित राष्ट्र बनने के मार्ग पर तीव्रता से अग्रसर होगा।

हिंदी को पुष्पित-पल्लवित देखने की आशा में.....

प्रोफेसर अवनीश कुमार

आपने लिखा

'भाषा' पत्रिका का मार्च-अप्रैल, 2019 का अंक अपने गरिमामय रूप में सामने आया। पत्रिका का प्रत्येक अनुभाग अनुप्रेरक है। आलेख अनुभाग में हिंदी साहित्य के संदर्भो के साथ भारतीय भाषा के तुलनात्मक, प्रशिक्षण, अनुवाद और काव्यशास्त्रीय विवेचन-विश्लेषण विशेष उपयोगी हैं। प्रेमचंद की 'कफन' कहानी के उल्लास और विद्रोह के संदर्भ से और भीष्म साहनी के संस्मरणात्मक प्रस्तुति से पत्रिका में रसात्मक बोध को उत्कर्ष मिला है।

धरोहर में भारतेंदु हरिश्चंद्र के 'भारत दुर्दशा' नाटक को देकर तत्कालीन विषमताओं, समस्याओं और उलझनों से सुपरिचित कराने का सराहनीय प्रयास किया गया है। इसके साथ ही हिंदी नाट्य कृतियों में उत्कर्ष देती अभिनेयता का परिचय कराया गया है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि हिंदी नाट्य साहित्य की मनभावन परंपरा है। हिंदी कहानी साहित्य के साथ मराठी कहानी 'पराया लड़का' के हिंदी अनुवाद प्रस्तुति से भारतीय साहित्य की सहज अनुभूति का अवसर मिला है। भारतीय भाषाओं में काव्य-सृजन की भावनात्मक प्रस्तुति प्रशंसनीय है।

परख अनुभाग में काव्य कृतियों, उपन्यास और विचार-चर्चा पर किया विश्लेषण पत्रिका के लिए वरदान सिद्ध हुआ है। डॉ. गंगा प्रसाद विमल का 'भक्तिधारा के अंत:सूत्र' का भावोद्गार अनुप्रेरक है।

पत्रिका की रचनाओं के संयोजन, छपाई और साज-सज्जा आदि सभी दृष्टियों से इसके उज्ज्वल भविष्य का स्पष्ट आभास होता है। आशा है पत्रिका के प्रत्येक अंक में सतत उत्कर्ष रूप उभरता रहेगा।

प्रो. नरेश मिश्र, पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

प्रिय डॉ. राकेश कुमार जी,

'भाषा' द्वैमासिक पत्रिका का मार्च-अप्रैल, 2019 अंक मिला।

इस बार पत्रिका सर्वथा नए कलेवर में देखकर मन प्रसन्न हो उठा है। इसके लिए केंद्रीय हिंदी निदेशालय के दूरदृष्टि संपन्न निदेशक डॉ. अवनीश कुमार जी के साथ ही आपको भी बधाइयाँ देता हूँ।

मैं लगभग चार दशकों से भी अधिक समय से भाषा के लेखक-परिवार का सदस्य रहा हूँ और मुझे गर्व है कि इस पत्रिका ने अपना महत्व सदैव बनाए रखा है। इस बार का अंक तो आपके संपादन-कौशल का पूर्णत: साक्षी बन गया है। सर्वथा सुंदर कलेवर के साथ ही सामग्री-चयन की दृष्टि से भी यह अंक समृद्ध है।

प्रो. ऋषभ देव का आलेख "तुलनात्मक भारतीय साहित्य : अवधारणा और मूल्य" इस अंक का शृंगार कहा जा सकता है। इसी प्रकार डॉ. संजय प्रसाद श्रीवास्तव का आलेख "हिंदी तथा बंगला भाषाओं में कारक चिह्न : एक विश्लेषण" भी बहुत मूल्यवान है। डॉ. पंकज साहा का आलेख प्रेमचंद की अमर कहानी "कफन" को बिल्कुल अलग दृष्टिकोण से देखने का सराहनीय प्रयास है।

अंक की कहानियाँ भी रोचक हैं और विभिन्न भाषाओं के दर्शन कराती हैं। कुल मिलाकर मेरी दृष्टि में तो यह अंक बहुत सुंदर, उपादेय और ज्ञानवर्धक है।

डॉ. योगेंद्र नाथ शर्मा "अरुण", डी लिट्
पूर्व प्राचार्य एवं हिंदी विभागाध्यक्ष,
74/3, न्यू नेहरू नगर,
रुड़की-247667

संपादकीय

हिंदी को राजभाषा के रूप में स्वीकार करने के साथ ही हिंदी के प्रति हमारे कर्तव्य को निर्धारित करने वाले और अक्सर उद्धृत किए जाने वाले संविधान के अनुच्छेद 351 से हिंदी के लेखक, विचारक एवं विद्वान परिचित ही होंगे। आज इस अनुच्छेद में निहित आशयों और अभिप्रायों पर गंभीरता के साथ पुनः चर्चा किए जाने की आवश्यकता है कि हिंदी के प्रति संघ का यह कर्तव्य क्यों निर्धारित किया गया? हिंदी को भारत की अन्य सभी भाषाओं से अधिक सम्मानजनक और दायित्वपूर्ण स्थान क्यों दिया गया? हिंदी की महत्ता को प्रतिपादित करने वाले संविधान के अनुच्छेद 351 में प्रदत्त निर्देशों में हिंदी को केवल राज-काज की भाषा के रूप में विकसित करने का प्रयोजन भर नहीं है बल्कि राष्ट्र की सांस्कृतिक एकता को अभिव्यक्ति प्रदान करना भी है। हिंदी को समृद्ध करने के संकल्प के साथ ही उसकी सीमाओं एवं सामर्थ्य तथा उसके समक्ष आने वाली चुनौतियों के संकेत भी हमें इसी अनुच्छेद में मिलते हैं, इन पर चर्चा किए बिना हिंदी की विकास यात्रा का कोई भी प्रारूप अधूरा ही रहेगा। भारत की संस्कृति अपनी संपूर्णता के साथ जिस भाषा में सर्वाधिक प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त हो सकती है वह केवल हिंदी ही है। आधुनिक भारत का समवेत स्वर जिस विश्वसनीयता और प्रामाणिकता के साथ हिंदी में मुखरित हो सकता है वह न अंग्रेजी में हो सकता है, न संस्कृत में, न उर्दू में और न ही किसी अन्य भारतीय भाषा में। इस सच्चाई को हमारे संविधान निर्माताओं ने संभवतः पहले ही समझ लिया था। वैसे तो किसी भी भाषा का विकास एक सांस्कृतिक प्रक्रिया है किंतु भारत के संदर्भ में हिंदी का विकास एक राष्ट्रीय सांस्कृतिक प्रक्रिया है जो हमारे लोकतांत्रिक मूल्यों की संवाहक भी है। संविधान सभा के विद्वानों को पूरा विश्वास था कि हिंदी अपनी उत्पत्ति से लेकर आज तक भारत की समन्वयी प्रकृति और समावेशी प्रवृत्ति के अनुरूप भारतीय संस्कृति के बहुआयामी रूपों को स्वर देती आई है। सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों को अभिव्यक्त करने वाली हिंदी हर आम-खास, अशिक्षित-शिक्षित, ग्रामीण-शहरी, उत्तर-दक्षिण, हिंदू-मुस्लिम आदि समस्त समूहों और उपसंस्कृतियों का समावेश करती है। सर्वसाधारण भारतीय जनता ने हिंदी के इसी रूप को स्वीकार किया है।

भाषा का प्रश्न देश की अस्मिता से जुड़ा हुआ है। भारत को स्वतंत्र हुए सत्तर वर्ष से अधिक का समय हो गया है। भारत ने राजनैतिक स्वतंत्रता तो प्राप्त की, लेकिन भाषा की स्वतंत्रता उसे अभी तक नहीं मिल सकी है। भाषा की स्वतंत्रता संभवतः सच्चे मन से चाही ही नहीं गई, वरना स्वाधीनता की पहली सुबह ही जब हमने एक राष्ट्र ध्वज और एक राष्ट्र गान तय किया था, तब एक राष्ट्र भाषा क्यों नहीं। इसका परिणाम यह हुआ कि राष्ट्र भाषा का प्रश्न आज तक उलझा हुआ है। विश्व का शायद ही कोई ऐसा देश होगा जो आजाद होने के सत्तर वर्ष बाद भी भाषा की दृष्टि से पराधीन हो। पर जो हुआ सो हुआ। अब समय आ गया है कि संविधान में जो दिशा-निर्देश हिंदी को राजभाषा के रूप में स्थापित करने के लिए दिए गए हैं, उनका पालन और क्रियान्वयन विशुद्ध ईमानदारी से हो।

हमें इस बात पर भी ध्यान देना होगा कि केवल साहित्य दर्शन से कोई भाषा समृद्ध नहीं हो जाती। जब तक जीवन के दूसरे व्यावहारिक अनुशासनों जैसे- समाज, राजनीति, अर्थतंत्र, वाणिज्य, व्यवसाय, प्रशासन, विधि, चिकित्सा, शिल्प, कला, विज्ञान, अभियांत्रिकी तथा अन्य तकनीकी क्षेत्रों में उसकी पहुँच नहीं होगी, हिंदी पूर्ण राष्ट्रभाषा नहीं बन सकती। आवश्यकता इन क्षेत्रों में लगातार मौलिक और नए शोध और अनुसंधानों की है, केवल अनुवाद के बल पर कोई भाषा विश्वभाषा बनने का सफर तय नहीं कर सकती।

भाषा के प्रचार-प्रसार में समाचार पत्रों, प्रसार माध्यमों, फिल्मों, गीतों तथा कवि सम्मेलनों आदि की सर्वाधिक भूमिका रहती है। जबकि शिक्षण संस्थान, शोध संस्थान और व्याकरण उसके आधार को दृढ़ता प्रदान

करते हैं। हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए इन सभी माध्यमों को मजबूत करना हमारी प्राथमिकता होनी चाहिए।

हिंदी के बहुमुखी विकास की संकल्पना को साकार करती हमारी 'भाषा' पत्रिका अपने इस अंक में 'हिंदी दिवस' के उपलक्ष्य पर हिंदी भाषा के विविध आयामों को इंगित करती हुई प्रस्तुत की जा रही है। 'भाषा' के इस अंक के प्रति आपकी प्रतिक्रियाएँ आमंत्रित हैं।

(डॉ. राकेश कुमार)

अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य और हिंदी भाषा

डॉ. दीनदयाल

भारत एक बहुभाषी तथा बहुसांस्कृतिक देश है। 1971 की जनगणना के अनुसार, भारत में 33 भाषाएँ प्रमुख मानी गई हैं। इन 33 भाषाओं में से संविधान की आठवीं अनुसूची में 22 भाषाओं का उल्लेख किया गया है। ये भाषाएँ हैं - असमिया, ओड़िया, उर्दू, कन्नड, कश्मीरी, कोंकणी, गुजराती, डोगरी, तमिल, तेलुगु, नेपाली, पंजाबी, बांग्ला, बोडो, मणिपुरी, मराठी, मलयालम, मैथिली, संथाली, संस्कृत, सिंधी तथा हिंदी। ये सभी भाषाएँ चार भाषा परिवारों-भारत-आर्य भाषा परिवार, द्रविड़ भाषा परिवार, ऑस्ट्रिक-एशियाई भाषा परिवार तथा चीनी-तिब्बती भाषा परिवार के अंतर्गत आती हैं। भारत-आर्य भाषा परिवार की भाषाओं में हिंदी सबसे प्रमुख भाषा है। यह भारत की प्रधान भाषा है। देश की आधे से अधिक जनता इस भाषा को बोलती है। अब राष्ट्रभाषा पद पर आसीन होने के कारण लगभग सारे देश में यह बोली जाती है। भाषावैज्ञानिकों में इसके क्षेत्र को लेकर काफी विवाद है। डॉ. ग्रियर्सन ने अपनी पुस्तक 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया' में आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण किया है तथा हिंदी भाषा के बारे में कहा है कि - "हिंदी हिंदुस्तानी भाषा का वह रूप है जिसमें संस्कृत शब्दों की बहुलता है और जो देवनागरी लिपि में लिखी जा सकती है।" पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों ने प्रायः इसी मत को अपनाया है। वस्तुतः हिंदी अत्याधुनिक भारतीय भाषाओं में एक मुख्य भाषा है। यह भारत की सबसे शक्तिशाली संबोधन की भाषा है जो अपनी क्षमता में ज्ञान-विज्ञान, अर्थ-व्यवस्था, राजनीति तथा दर्शन इत्यादि गूढ़ विषयों पर उन्नत अभिव्यक्ति प्रस्तुत करती है। हिंदी भाषा के अंतर्गत 18 बोलियाँ आती हैं। विभिन्न भाषा वैज्ञानिकों ने हिंदी को पाँच उप-भाषाओं में विभाजित किया है। ये हैं -

1. पश्चिमी हिंदी - इसमें खड़ी बोली, बांगरू, ब्रजभाषा, कन्नौजी तथा बुंदेली भाषाएँ आती हैं। इन भाषाओं का प्रयोग क्षेत्र - मेरठ, मुजफ्फरनगर, मुरादाबाद, बिजनौर, कानपुर, बुंदेलखंड है।

2. पूर्वी हिंदी - इसके अंतर्गत अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी आदि भाषाएँ समाहित हैं तथा इसका व्यवहार क्षेत्र कानपुर, लखनऊ, इलाहाबाद है।

3. राजस्थानी हिंदी - मेवाती, मालवी, जयपुरी तथा मारवाड़ी आदि भाषाएँ राजस्थान में बोली जाती हैं।

4. पहाड़ी हिंदी - इसमें दो भाषाएँ कुमाऊँनी और गढ़वाली आती हैं। इनका व्यवहार क्षेत्र अल्मोड़ा, नैनीताल, देहरादून एवं चमोली है।

5. बिहारी हिंदी - भोजपुरी, मैथिली, मगही। इसका क्षेत्र भोजपुर, गोरखपुर, दरभंगा, मुजफ्फरनगर एवं पटना है।

हिंदी भाषा का विकास अपभ्रंश के शौरसेनी रूप से हुआ है। अपनी राष्ट्रीय छवि बनाने तथा भारत की विभिन्न भाषाओं में शीर्ष स्थान पाने में खड़ी बोली हिंदी की अपनी कुछ विशिष्टता रही है जिसके कारण हिंदी भाषा भारत में ही नहीं अपितु अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपनी उपस्थिति दर्शाती है।

हिंदी भाषा भारत की सर्वाधिक लोकप्रिय भाषा है। इस भाषा का प्रयोग द्वितीय संप्रेषण भाषा के रूप में भी होता है। अहिंदी भाषी नगरों में हिंदी भाषा के स्वरूप के बीच काफी संघर्ष होता है। इस संघर्षोपरांत हिंदी का एक नया रूप बनता है। जैसे- मुंबइया हिंदी, दिल्ली की हिंदी। मुंबइया हिंदी को मराठी हिंदी के नाम से भी जाना जाता है। दिल्ली की हिंदी में पंजाब, हरियाणा तथा मेरठ आदि क्षेत्रों की भाषाओं का सम्मिश्रण हो चुका है जिसके कारण यहाँ की हिंदी भाषा में बलाघात एवं शैलीगत भिन्नता आ गई है। भाषा का समाज सापेक्ष अध्ययन ही भाषा के अंतर्गत होने वाले सूक्ष्म भेदों को प्रकट करता है। व्यक्ति की व्यक्तिगत शैली, उसका रहन-सहन, शिक्षा एवं नौकरी इत्यादि अनायास ही भाषा में कई स्तर के भेद उत्पन्न करते हैं।

मुंबई की हिंदी या मुंबइया हिंदी : मुंबई में भारत के लगभग सभी प्रदेशों के लोग रहते हैं। यहाँ मराठी भाषियों की संख्या ज्यादा है लेकिन यहाँ दक्षिण की भाषाएँ, गुजराती, सिंधी, पंजाबी आदि भाषाएँ बोलने वाले भी मौजूद हैं। इन सबके अंतरवर्गीय संपर्क की भाषा हिंदी है। मुंबई के हिंदी भाषी लोगों में पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा बिहार से आए हुए ज्यादातर व्यक्ति हैं। इस प्रकार मुंबइया हिंदी में हिंदी की पूर्वी बोलियों के तत्व हैं और यह दो स्थानीय भाषाओं - मराठी और गुजराती के प्रभाव से प्रभावित होकर विकसित हुई है।

उच्चारण के स्तर पर मुंबइया हिंदी में परिवर्तन : मुंबइया हिंदी मुख्यत: हिंदी की पूर्वी बोलियों तथा गुजराती एवं मराठी से प्रभावित हुई है। स्वर 'ऐ' तथा 'औ' का उच्चारण संध्यक्षर स्वर के समान होता है। जैसे- ऐसा - अइसा, पैसा - पइसा आदि। कई शब्दों में, खासकर एकाक्षरिक शब्दों में, संध्यक्षर स्वर के विकल्प में अधिक उच्च स्वर का उच्चारण किया जाता है। जैसे - मैं-में, कौन - कोन। कई शब्दों के उच्चारण 'में' 'ह' वर्ण का लोप होने से उच्चरित शब्दों में भी परिवर्तन हो जाता है। उदाहरण- नहीं - नईं, पहला - पेला, पहनना - पेनना। 'ज' 'के' लिए 'झ' का प्रयोग मुंबइया हिंदी की प्रमुख विशेषता है। जैसे-आजाद-आझाद, जेरॉक्स - झेरॉक्स।

रूपरचना के स्तर पर मुंबइया हिंदी में परिवर्तन : मुंबइया हिंदी में 'मैं', 'हम' के स्थान पर 'अपन/अपुन, का प्रयोग भी किया जाता है। मानक हिंदी के परसर्ग का, की, के, से, में, पर मुंबइया हिंदी के परसर्ग 'ने' और 'कू' (को) के बराबर हैं। ये परसर्ग तिर्यक् या विकारी (Oblique); रूप में नहीं आते हैं तथा सर्वत्र योजक शब्द 'का' लेते हैं। जैसे - घर के वास्ते/ लिए - घर का वास्ते, आप लोगों के समान - आप लोग का सरीखा।

मुंबइया हिंदी में 'कहाँ', 'वहाँ', 'यहाँ' शब्द के स्थान पर 'किधर', 'इधर' शब्द का प्रयोग मिलता है। 'कब' की जगह 'कभी' का प्रयोग किया जाता है। जैसे - वो कब आएगा - वो कभी आएगा। मुंबइया हिंदी में निपात का पर्याय 'च' है। मसलन - मैं ही - मेंच, ऐसा ही - ऐसाच, वैसा ही - वैसाच इत्यादि।

वाक्य संरचना के स्तर पर मुंबइया हिंदी में परिवर्तन : मानक हिंदी की दो वृत्ति सूचक क्रियाएँ जैसे - 'सक' और 'चाहिए' का मुंबइया हिंदी में अलग प्रकार से प्रयोग किया जाता है। जैसे - मैं कर नहीं सकता (मानक हिंदी) - मैं करने को नईं सकता (मुंबइया हिंदी), हम नहीं जा सकते - अपुन नईं जाने को सकता। सहायक क्रिया 'चाहिए' के स्थान पर 'मंगता/मांगता' का प्रयोग किया जाता है। जैसे - मुझे पैसे नहीं चाहिए - मेरे को पइसा नईं मांगता।

मुंबइया हिंदी में 'हाँ' के लिए 'हौ' शब्द का प्रयोग किया जाता है। क्रियार्थक संज्ञा 'जाना', 'देखना' आदि एवं क्रिया शब्द 'जाना है' तथा 'देखना है' इत्यादि दोनों ही संदर्भों में मुंबइया हिंदी में क्रमश: 'जाने का/जाने का है' तथा 'देखने का/देखने का है' का प्रयोग मिलता है।

दिल्ली की हिंदी : दिल्ली भारत देश की राजधानी है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इस शहर की आबादी में आकस्मिक वृद्धि हुई तथा देश के विभाजन के कारण यहाँ पंजाबी एवं अन्य सीमांत प्रदेश की भाषाएँ एवं बोलियाँ बोलने वाले लोगों का एक बड़ा वर्ग आकर बस गया। यहाँ की हिंदी पर पंजाबी एवं हरियाणवी बोलियों का खूब प्रभाव पड़ा है। दिल्ली हिंदीभाषी प्रदेश है। दिल्ली के समीपवर्ती ज़िलों जैसे रोहतक एवं गुड़गांव में हरियाणवी बोली जाती है और मेरठ तथा बुलंदशहर में खड़ी बोली। इस प्रकार दिल्ली में हरियाणवी एवं खड़ी बोली बोलने वाले दोनों ही बहुत बड़ी संख्या में बसे हुए

हैं। महानगर होने के कारण यहाँ दक्षिण की कुछ भाषाएँ तथा बंगाली, सिंधी, गुजराती, मराठी इत्यादि भाषाएँ बोलने वाले भी लोग अल्प संख्या में हैं। चूँकि इन भाषाओं की भाषिक विशेषता इस वर्ग के भीतर तक ही सीमित हैं। अतः इनका दिल्ली की हिंदी पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है। इस प्रकार यहाँ की हिंदी पर पंजाबी एवं हरियाणवी का विशेष प्रभाव देखने को मिलता है।

उच्चारण के स्तर पर दिल्ली की हिंदी में परिवर्तन : दिल्ली के हिंदी की यह एक बहुव्याप्ति प्रवृत्ति है कि इसमें कई शब्दों के आक्षरिक (Syllabic) गुच्छ टूटते हैं जबकि कुछ शब्दों के बनते हैं। जैसे - तिलक - तिल्क, परीक्षा - प्रीक्षा, परेशान - प्रेशान, परंतु - प्रन्तु, गलत - गल्त, पड़ोसी - प्ड़ोसी, प्रसाद - परसाद, उन्नति - उनती इत्यादि। दिल्ली की हिंदी के कई शब्दों के मध्य से 'ह' का लोप हो जाता है तथा कुछ स्वनिम परिवर्तन हो जाता है। उदाहरण के तौर पर - बहुत - भौत, बहना - भैना, वह आ रहा है - वह आ रिया ऐ। परंतु इस प्रकार का प्रयोग ज्यादातर अशिक्षित लोग करते हैं। शिक्षा का स्तर बढ़ने के साथ 'ह' का पुनः स्थापन हो जाता है। आजकल हिंदी में एक नई प्रवृत्ति और आ गई है। अब लोग /फ/ के स्थान पर /फ़/ का प्रयोग करने लगे हैं। जैसे - फल - फ़ल, फूल- फ़ूल आदि।

रूप रचना के स्तर पर दिल्ली की हिंदी में परिवर्तन दिल्ली की हिंदी में 'मुझे', 'तुम्हें' के स्थान पर 'मेरे को', 'तेरे को' का प्रयोग अधिक प्रचलित है । हालांकि इस प्रभाव का कारण पंजाबी भाषा है लेकिन इसका स्पष्ट आधार ज्ञात नहीं है। पंजाबी तथा हरियाणवी में 'आप' शब्द का प्रयोग नहीं किया है। 'आप' के स्थान पर 'तुसी' शब्द का प्रयोग करते हैं। जैसे - आप आइए - तुसीं आओ। यहाँ पर विशेष बात यह है कि मानक हिंदी में 'आप' के साथ कभी भी 'आओ' क्रिया शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता है परंतु पंजाबी भाषा के प्रभाव के कारण 'आइए' के स्थान पर 'आओ' हो जाता है। मानक हिंदी में 'जी हाँ', 'जी नहीं' का प्रयोग किया जाता है जबकि दिल्ली की हिंदी में 'हाँ जी', 'नहीं जी' चलता है।

वाक्य संरचना के स्तर पर दिल्ली की हिंदी में परिवर्तन : दिल्ली की हिंदी में यह माना जाता है कि 'मुझे' के स्थान पर 'मैंने' का प्रयोग पंजाबी प्रभाव के कारण होता है। उदाहरण - मुझे जाना है - मैंने जाना है। पंजाबी में 'को' के लिए /नूँ/ रूप है। मुझको जाना है - मैंनूँ जाणा ए। कर्त्ताकारक के प्रथम तथा मध्यम पुरुषों में 'ने' रूप नहीं प्रयुक्त होता है परंतु 'ने' की व्यवस्था है, जैसे - मैंने काम किया - मैं कम्म कित्ता, मैंने कोशिश की - मैं कोशिश कित्ती। यद्यपि हरियाणवी में 'ने' की व्यवस्था है तथा कर्ताकारक के प्रथम तथा मध्यम पुरुषों में 'नै' रूप लगता है। जैसे - मुझे - मन्नै, मैंने - मैंनै, उसने/उसे - उसनै। यहाँ यह माना जा सकता है कि 'मैंने जाना है' का स्रोत हरियाणवी है और पंजाबी इस प्रवृत्ति को रूप साम्य के कारण पुष्ट करती है।

भाषा, समाज और संस्कृति का अंतर्संबध - हमारे देश की एक महान और सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि यहाँ भाषा, समाज और संस्कृति की विभिन्नता के बावजूद उसका मूल चिंतन एक रहा है। भाषा के स्तर पर आपसी तालमेल के लिए चिंतन की एकरूपता अपरिहार्य है। एक ही जैसे विचार तथा भाव हमारे देश के अलग-अलग भागों में अलग-अलग ध्वनियों के रूप में व्यक्त होते हैं। हमारे यहाँ कई शब्द ऐसे हैं जो विभिन्न भाषाओं में आपस में अत्यंत ही समान होते हैं। जैसे - हिंदी का एक शब्द है 'चरखा'। यह शब्द पंजाबी, उर्दू, ओड़िया, मराठी, बांग्ला तथा असमिया में 'चरखा' ही है। गुजराती में 'चरखो' और सिंधी में 'चर्खो' बन गया है। मलयालम में 'चरक' और तमिल में 'चरक' है। यही शब्द तेलुगु में 'राट्नमु' तथा तमिल में 'इराट्टे' है। ये दोनों शब्द लोकभाषा के शब्द 'रहट' से मिलते हैं। इस प्रकार हमारे देश में चिंतन के साथ-साथ शब्दों में भी एकरूपता मौजूद है।

भाषा, समाज और संस्कृति[4] इन तीनों में अत्यंत ही घनिष्ठ संबंध होता है। ये तीनों ही एक-दूसरे के बिना अपूर्ण हैं। बिना समाज के किसी व्यक्ति के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती है और व्यक्ति रहित समाज, समाज नहीं हो सकता है। व्यक्ति समाज में रहकर ही समाज द्वारा बनाए गए सांस्कृतिक नियमों का पालन करता है। अन्य प्राणियों की भाँति मानव कुछ मूलभूत प्रवृत्तियों सहित जन्म लेता है और अपनी बौद्धिक शक्ति के उपयोग से इन प्रवृत्तियों का शोधन करता है। समाज में रहकर मनुष्य बहुत कुछ

अर्जित करता है। समाज द्वारा अर्जित व्यवहार संस्कृति का हिस्सा होते हैं। इस प्रकार संस्कृति के अंतर्गत किसी विशिष्ट समाज के अंतर्गत व्याप्त जीवन-यापन की पद्धति, विचार, प्रथाएँ, रीतियाँ, मान्यताएँ तथा विश्वास आदि सभी समाहित होते हैं। संस्कृति एक निश्चित समाज के रीति-रिवाज, संस्कार, आदर्श आदि को भावी पीढ़ी को इस प्रकार देती है कि व्यक्ति जाने-अनजाने अप्रत्यक्ष रूप से उन्हें ग्रहण करता चलता है। मनुष्य जिस समाज में निवास करता है वह स्वत: ही उस समाज की संस्कृति को ग्रहण करता है। चूँकि भाषा एक नितांत अर्जित व्यवहार है अत: भाषा संप्रेषण का मुख्य साधन होने के साथ-साथ संस्कृति का प्रमुख उपादान एवं वाहक है। इस प्रकार भाषा तथा संस्कृति दोनों ही सामाजिक तथ्य हैं। जिस प्रकार मनुष्य मानव-रूप में भाषार्जन की प्राकृतिक क्षमता रखते हुए भी जन्मजात भाषा-भाषी नहीं होता है उसी प्रकार वह संस्कृति में जन्म लेता है, संस्कृति सहित जन्म नहीं लेता है। संस्कृति और भाषा दोनों ही सतत प्रवाहमान तथा परंपरागत सामाजिक उपादान हैं और दोनों की ही पहचान प्राय: दिक् काल के आधार पर की जाती है । ये दोनों ही निरंतर परिवर्तित एवं विकसित होते हैं। भाषा के बिना समाज और समाज के बिना भाषा की परिकल्पना नहीं की जा सकती है। समाज में व्यवहृत भाषा अनेक प्रकार की सामाजिक संरचनात्मक घटनाओं से परिवर्तित और विकसित होती रहती है। व्यक्ति स्तर से सामाजिक व्यवहार के स्तर तक भाषा सदैव विचलित होती रहती है। यही भाषिक विकल्पन भाषा और समाज में अन्योन्याश्रय संबंध को दर्शाता है तथा भाषा परिवर्तन का महत्वपूर्ण कारण बनता है। समाज में प्रचलित भाषा के सभी रूपों का सूक्ष्म अध्ययन करने वाला विषय समाज भाषा विज्ञान (Sociolinguistics)[5] कहलाता है।

हिंदी भाषा का वैश्विक परिदृश्य : आज हिंदी विश्व के 140 देशों में किसी न किसी रूप में प्रयुक्त होती है। टोकियो विश्वविद्यालय के प्रो. होजुमि तनाका ने 1999 में 'मशीन ट्रांसलेशन समिट' नामक संगोष्ठी में स्पष्ट किया है कि आज बोलने वालों की संख्या के आधार पर हिंदी, चीनी भाषा के बाद विश्व की दूसरी सबसे बड़ी भाषा है। डॉ. जयंती प्रसाद नौटियाल अपने 'भाषा शोध' (2005) में लिखते हैं कि विश्व में हिंदी जानने वालों की संख्या एक अरब दो करोड़ पच्चीस लाख दस हजार तीन सौ बावन (1,02,25,10,352) है जबकि चीनी बोलने वालों की संख्या केवल नब्बे करोड़ चार लाख छह हजार छह सौ चौदह (90,04,06,614) है। साथ ही हमें यह तथ्य स्वीकार करना होगा कि अंग्रेजी भाषा के प्रयोक्ता विश्व के सबसे ज्यादा देशों में फैले हुए हैं।

द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन मॉरीशस में हाइडेलबर्ग विश्वविद्यालय के दक्षिण एशिया संस्थान में आधुनिक भारतीय भाषा एवं साहित्य विभाग के संस्थापक अध्यक्ष डॉ. लोठार लुत्से ने अपने देश जर्मनी का प्रतिनिधित्व करते हुए समापन समारोह में हिंदी भाषा के महत्व और उसके उज्ज्वल भविष्य के बारे में कहा था- "हिंदी पर बोलना तो चाहिए उन लोगों को जिनके लिए हिंदी अस्मिता का एक निशान है। जिनके लिए हिंदी जीने का शायद सबसे महत्वपूर्ण साधन है।"

"हिंदी तो भारत और मॉरीशस के लोगों के लिए इनकी संस्कृति की भाषा रही है। इनकी बपौती रही, इनकी मातृभाषा रही है। हम चाहते हैं कि देश-विदेश में हिंदी का व्यापक प्रचार-प्रसार हो।"

हिंदी के धर्मयोद्धा एवं संत साहित्यकार कामिल बुल्के भी हिंदी के भविष्य के प्रति काफी आशावान थे। उन्होंने कहा है- "जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मैं हिंदी के उज्ज्वल भविष्य के विषय में पूर्णत: आश्वस्त हूँ। मेरा आशावाद निराधार नहीं है। मैं हिंदी के अभ्यंतर सामर्थ्य, हिंदी भाषा-भाषियों की समझदारी, अन्य भाषा-भाषियों के देश-प्रेम और समस्त भारतीय नागरिकों के स्वाभिमान पर भरोसा रखता हूँ। हिंदी न केवल देश के बीस करोड़ लोगों की सांस्कृतिक भाषा है, बल्कि बोलने-समझने की संख्या की दृष्टि से वह दुनिया की तीसरी भाषा है। वह भारत के बाहर भी, न केवल एशिया बल्कि कई अन्य महाद्वीपों में फैल गई है, अर्थात् लंका, बर्मा, मलाया, इंडोनेशिया, फिजी, मॉरीशस, दक्षिण और पूर्वी अफ्रीका, गयाना, वेस्टइंडीज और त्रिनिदाद में। इस संख्यात्मक तथा भौगोलिक महत्व के अतिरिक्त नमनीयता, व्यंजकता, समृद्धि, सरलता आदि अभ्यंतर गुण हिंदी के उज्ज्वल भविष्य में सहायक हैं। भारत के सभी धर्मों तथा विभिन्न भाषा-भाषियों ने हिंदी के विकास में योगदान किया है। वह किसी विशिष्ट वर्ग, प्रदेश या

संप्रदाय की भाषा न होकर भारतीय जनता की भाषा है।"

हिंदी में साहित्य सृजन की परंपरा करीब बारह सौ साल पुरानी है। आंकड़ों कि माने तो आज हिंदी एक विश्वभाषा के रूप में प्रतिष्ठित है। यह आवश्यक नहीं है कि हिंदी सभी की मातृभाषा ही हो। यह व्यक्ति की द्वितीय, तृतीय या फिर चतुर्थ भाषा भी हो सकती है। हिंदी 8वीं शताब्दी से लेकर आज 21वीं शताब्दी तक निरंतर प्रगतिशील रही है। हिंदी की शब्द-संपदा विपुल है। इसका साहित्य संस्कृत साहित्य के बाद विश्व का श्रेष्ठतम साहित्य है। विश्व की सबसे बड़ी कृषि विषयक शब्दावली हिंदी भाषा में लिखी गई है। आज विश्व के महत्वपूर्ण साहित्य अनुवाद के द्वारा हिंदी भाषा तथा अन्य भारतीय भाषाओं में उपलब्ध हैं। अनुवाद, इस प्रकार की भूमिका आज से नहीं सदियों से निभा रहा है। आठवीं शताब्दी में आदि शंकराचार्य ने केरल के कोच्चि नगर से चालीस किलोमीटर दूर कालड़ी कस्बे में जन्म लिया था और वे मलयाली भाषी थे। उन्होंने वैदिक धर्म का प्रचार करते हुए भारत के पूर्व में जगन्नाथपुरी,पश्चिम में द्वारका, उत्तर में बद्रीनाथ तथा दक्षिण केश्रृंगेरी में चार मठों की स्थापना की। 13वीं-14वीं शताब्दी में तमिल भाषी रामानुजाचार्य ने वाराणसी में आकर भक्ति आंदोलन चलाया था। तेलुगु भाषी वल्लभाचार्य, कन्नड भाषी मध्वाचार्य और मलयालम भाषी निम्बार्काचार्य ने वृंदावन में रहकर कृष्ण और राधा संप्रदाय की ज्योति प्रज्ज्वलित की। इन सभी आचार्यों ने संस्कृत और अपनी-अपनी भाषाओं में जो ज्ञान प्राप्त किया था उसे तत्कालीन संपर्क भाषा संस्कृत या हिंदी भाषा में प्रसारित किया। अत: भारत बहुभाषिक देश होने के नाते प्राचीन काल से ही अनुवाद की परंपरा को स्थापित किए हुए है।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सामाजिक एवं राजनैतिक क्षेत्र में हिंदी: भारत देश उपनिवेशवाद के चंगुल में 200 साल तक पिसता रहा है। इस दौरान भारतीय लोगों को अंग्रेजी प्रशासन मजदूर और सेना के रूप में अपने विभिन्न उपनिवेशों में ले गई। कोई भी भाषिक समूह अपनी भाषा के साथ-साथ सांस्कृतिक संपदा भी अपने साथ विस्थापित करता है। अत: हिंदी भाषी समूह के लोगों ने विश्व के विभिन्न भागों में अपनी भाषा एवं संस्कृति का प्रचार-प्रसार किया। मॉरीशस, त्रिनिदाद, सूरीनाम, फिजी, मलेशिया, सिंगापुर आदि देशों में हिंदी बोलने वालों की संख्या पर्याप्त है। ये लोग हिंदी की अस्मिता को सुरक्षित रखने में निरंतर प्रयासरत हैं। नि:संदेह भारतीय हिंदी साहित्यकारों ने हिंदी भाषा को संवारा है परंतु कई विदेशी हिंदी भाषा के साहित्यकार भी है जो हिंदी को पल्लवित करने में निरंतर लगे हुए हैं।

समय-समय पर हमारे देश के राजनेताओं ने अंतरराष्ट्रीय मंचों पर हिंदी भाषा में भाषण देकर यह सिद्ध कर दिया है कि हिंदी भाषा किसी अन्य विदेशी भाषाओं से कम नहीं है। श्रीमती इंदिरा गांधी से लेकर श्री अटल बिहारी बाजपेयी आदि कई महान राजनेताओं द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ एवं अन्य कई विश्वमंच पर दिए गए वक्तव्य अद्भुत रहे हैं। दक्षेस शिखर सम्मेलन में कई भारतीय राजनेताओं द्वारा हिंदी भाषा के माध्यम से भारत देश का प्रतिनिधित्व किया गया है। मॉरीशस, त्रिनिदाद, सूरीनाम, लंदन एवं न्यूयार्क इत्यादि कई स्थानों पर विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन किया जा चुका है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा विदेशों में भारतीय भाषा विद्यापीठों की स्थापना की गई है जो निरंतर हिंदी के साथ ही अन्य कई भारतीय भाषाओं पर शोध कार्य कर रहे हैं। अमरीका में 150 से ज्यादा शैक्षणिक संस्थानों में हिंदी भाषा का शिक्षण हो रहा है। भारत से बाहर के देशों में शिक्षा एवं रोजगार के अवसरों के चलते काफी संख्या में भारतीय विस्थापित हो रहें हैं। अमरीका, रूस, फ्रांस, इंग्लैंड, चीन, ऑस्ट्रेलिया आदि देशों में भारतीय न केवल अपना जीवन यापन कर रहे हैं अपितु देश के शीर्ष स्थानों पर भी अपनी स्थिति सुनिश्चित कर रहे हैं।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सूचना एवं तकनीकी क्षेत्र में हिंदी: आज भूमंडलीकरण के दौर में विश्व की तमाम भाषाओं में परस्पर वैचारिक आदान-प्रदान हो रहा है। आज विश्व में सबसे ज्यादा पढ़े जाने वाले समाचार-पत्रों में आधे से अधिक हिंदी भाषा के हैं। हिंदी के कई चैनलों का उपग्रहों के माध्यम से विदेशों में प्रसारण किया जा रहा है। हिंदी सिनेमा लोगों को प्रभावित करता रहा है। हिंदी सिनेमा के संवाद तथा गाने विश्व स्तर पर लोकप्रिय हुए हैं। शिक्षण संस्थाओं में कई पाठयक्रम

हिंदी माध्यम से तथा ऑनलाइन चलाए जा रहे हैं। पिछले कुछ वर्षों में एफ. एम. रेडियो के विकास द्वारा हिंदी कार्यक्रमों से एक नया श्रोता वर्ग तैयार हो चुका है। मोबाइल बैंकिग, टैब बैंकिंग, ई-मेल, ई-बुक, ए.टी.एम. सर्वत्र हिंदी भाषा की सुविधा उपलब्ध है। हिंदी भाषा के ऑनलाइन शब्दकोश अत्यंत ही लोकप्रिय हो रहे हैं। गूगल, माइक्रोसॉफ्ट, याहू इत्यादि विश्वस्तरीय कंपनियाँ हिंदी के महत्व को देखते हुए बाजार एवं लाभ के मद्देनजर हिंदी भाषा के प्रयोग को खूब बढ़ावा दे रहीं हैं। फोनेटिक आधार पर कार्य करने वाले कुंजीपटल की सुविधा के चलते हिंदी टाइपिंग में सहजता हो गई है जिससे बिना प्रशिक्षण के ही नए हिंदी भाषाई प्रयोगकर्ता हिंदी भाषा की टाइपिंग में सक्षम हो रहे हैं। मशीनी अनुवाद की दिशा में प्रगति होने से अन्य भाषाओं से हिंदी भाषा में अनुवाद सहज बनता जा रहा है। इंटरनेट के द्वारा हिंदी के समाचार पत्र तथा पत्रिकाएँ अन्य देशों में भी विविध वेबसाइटों से प्राप्त किए जा सकते हैं। आज हिंदी जितनी भारत वर्ष से जुड़ी हुई है उतनी ही श्रीलंका, म्यांमार, नेपाल, फिजी इत्यादि देशों के साथ भी जुड़ चुकी है। इंडोनेशिया, जापान, अमरीका, कनाडा, अफगानिस्तान, मिस्र, मंगोलिया, मलेशिया आदि देशों द्वारा हिंदी के अध्ययन-अध्यापन के साथ ही भारत के त्योहारों, रीति-रिवाजों को ग्रहण करने की भी कोशिश की जा रही है।

निष्कर्ष: इस प्रकार हिंदी भाषा अपनी बोधगम्यता के कारण विदेशों में भी लोगों के दिलों पर राज कर रही है। हिंदी भाषा को बाहर की दुनिया में लोकप्रिय बनाने में हमारे देश के वर्तमान प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी निरंतर प्रयासरत हैं। आज हिंदी एक विश्वभाषा के रूप में प्रतिष्ठित है। यह सहज ही लोगों के दिलों में रचती-बसती जा रही है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम हिंदी भाषा के प्रति अपने दायित्वबोध को महसूस करते हुए एक स्वस्थ तथा सुदृढ़ इच्छाशक्ति के साथ एकजुट होकर हिंदी की विश्व विकास-यात्रा में सम्मिलित हों। हमें विधि, वाणिज्य, प्रौद्योगिकी एवं ज्ञान-विज्ञान की सामग्री को हिंदी भाषा में उपलब्ध कराने में तीव्रता लानी होगी। तभी हिंदी भाषा ने जिस गति से अपने क्षेत्र को विस्तृत किया है, उसी तरह आगे भी करती रहेगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची (Bibliography)

1. Mood expresses the intension of the speaker.

2. क्रियार्थक संज्ञा वे शब्द हैं जो क्रिया से उत्पन्न होते हैं। जैसे- तैरना स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है। इसी प्रकार, घूमना, आगमन आदि शब्द।

3. स्वनिम भाषा की वह लघुतम अखंड्य इकाई है, जो समान ध्वनियों का प्रतिनिधित्व करती है। जैसे - 'अ', 'इ', 'क', 'च', 'ट' आदि।

4. संस्कृति शब्द 'कृ' धातु में 'सम्' उपसर्ग और क्तिन प्रत्यय के संयोग से निर्मित हुआ है जिसका अर्थ है 'साफ या परिष्कृत करना'।

5. भाषा एवं समाज के बीच पाए जाने वाले उन सभी प्रकार के संबंधों का अध्ययन एवं विश्लेषण समाज भाषाविज्ञान करता है जिनका संबंध सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रकार्यों के साथ होता है।

- गुप्ता, जीतेंद्र (2011), भारतीय इतिहास बोध का संघर्ष और हिंदी प्रदेश दिल्ली: ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड.
- जगन्नाथन, वी. रा. (1981), प्रयोग और प्रयोग, दिल्ली- ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस., पृ. 414-423,
- नागर, अमृतलाल (1986), साहित्य और संस्कृति. दिल्ली: राजपाल एंड संस.
- रस्तोगी, कविता (2000), समसामयिक भाषाविज्ञान, लखनऊ: सुलभ प्रकाशन., पृ. 138.
- सिंह, दिलीप, (2008) भाषा का संसार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
- सिंह, जवाहर (संपा). (2013).एशिया और हिंदी साहित्य. कोलकाता: मौलाना अबुल कलाम आजाद एशियाई अध्ययन केंद्र
- शर्मा, भक्तराम (संपा), (1993), विश्व हिंदी के भगीरथ. दिल्ली: जगतराम एंड सन्स. पृ. 77,102.
- शर्मा, शंकर दयाल (1997), हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति, नई दिल्ली: किताबघर, पृ. 54.
- शाह, अशोक के. (2008), हिंदी भाषा और भाषाविज्ञान. मथुरा: अमर प्रकाशन
- वर्मा, धीरेंद्र (1961), हिंदी भाषा का इतिहास इलाहाबाद: हिंदुस्तानी एकेडेमी

● वर्मा, धीरेंद्र (1971), ग्रामीण हिंदी इलाहाबाद: हिंदी भवन

● अनुवाद पत्रिका, जनवरी-मार्च 2016, अंक-166, भारतीय अनुवाद परिषद, पृ. 26-27

● उपाध्याय, करुणाशंकर. हिंदी का वैश्विक परिदृश्य, ऑनलाइन पत्रिका, सामयिकी http://www.abhivyakti-hindi.org/parikrama/delhi/2011/09_12_11.htm accessed on 01/03/18,5.53PM

● वर्मा, मोनिका. हिंदी का वैश्विक परिदृश्य. ऑनलाइन स्रोत http://www.himalini.com/hindi.html. accessed on 28/02/18. 11.00AM.

– 146, द्वितीय तल, अशोका एंक्लेव, मेन फरीदाबाद, हरियाणा-121003

❑❑❑

भारतीय अस्मिता और हिंदी साहित्य

डॉ. संध्या वात्स्यायन

सभ्यता प्रगतिगामी होती है। वह अपने समय से मुठभेड़ करती है। समकालीन सवालों से जूझती है और समानांतर विकसित होती है। उसका यह विकास बिना उसकी पहचान के संभव नहीं। पहचान के संकट के साथ अस्मिता का संकट भी खड़ा होता है। संकट से पार पाना और पहचान को पुष्ट करने से अस्मिता की निरंतरता विकसित होती है। भारतीय संस्कृति की पहचान अत्यंत प्राचीन है। न केवल कला, साहित्य के क्षेत्र में बल्कि ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में भी भारतीय अस्मिता निरंतर कायम रही है जिसका लोहा पूरा विश्व मानता रहा है।

'भारतीय अस्मिता की निरंतरता' के संदर्भ में अस्मिता क्या है, उसका अर्थ जान लेते हैं। अस्मिता का मूल भाव है- मेरी सत्ता अर्थात् मन का वह भाव या मनोवृत्ति जिसमें एक पृथक और विशिष्ट सत्ता का भाव निहित है। दूसरा अर्थ शंकर के अद्वैतवाद से जुड़ता है जिसमें वे कहते हैं- 'अहम् ब्रह्मास्मि' अर्थात् मैं ही ब्रह्म हूँ। विशेष सांख्य में इसे 'मोह' तथा वेदांत में 'हृदय ग्रंथि' कहा गया। योगशास्त्र के अनुसार अस्मिता को पाँच क्लेशों में से एक माना गया। कुछ अर्थों में इसे 'अभिमान' भी कहा गया है। साहित्य में इसे 'अस्मिता' या 'स्वत्व' के रूप में स्वीकार किया जाता है।

अस्मिता को अंग्रेजी में 'आइडेंटिटी' का अनुवाद मान लिया गया है। हिंदी में 1950 के आसपास सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने आइडेंटिटी के समानांतर 'अस्मिता' शब्द चलाया। यह संस्कृत के अर्थों से भिन्न है। अज्ञेय ने इसी को आधार बनाकर 'हम नदी के द्वीप हैं' नामक कविता लिखी और 'नदी के द्वीप' नामक उपन्यास लिखा। अज्ञेय अस्मिता को व्यक्तिवाद के संदर्भ में लेते हैं।

भारतीय अस्मिता की शुरुआत सिंधु घाटी सभ्यता से मानी जा सकती है। आज जहाँ हम खड़े हैं, उसकी शुरुआती नींव सिंधु घाटी सभ्यता में ही पड़ी। प्रोफेसर चाइल्ड ने लिखा है कि "सिंधु-सभ्यता एक खास वातावरण में आदमी की जिंदगी का एक पूरा संगठन जाहिर करती है और सालों-साल की कोशिशों का ही नतीजा हो सकती है। यह एक टिकाऊ सभ्यता थी। उस वक्त भी हिंदुस्तान की अपनी छाप पड़ चुकी थी और यह आज की हिंदुस्तानी संस्कृति का आधार है। यह रिश्ता पाँच हजार साल पुराना होते हुए भी वैसा ही अटूट है। मैक्समूलर जैसे विद्वान भी भारत की अटूट परंपरा से अचंभित थे। 1882 में कैंब्रिज विश्वविद्यालय के अपने व्याख्यान में वे भारत की उन तमाम सांस्कृतिक, साहित्यिक तथा सामाजिक विरासत का जिक्र करते हैं जिसने भारत की परंपरा को अक्षुण्ण रखा। मैक्समूलर की ही बात को इतिहासकार रोम्यां रोला ने कुछ यूँ आगे बढ़ाया- "*अगर दुनिया की सतह पर कोई एक मुल्क है जहाँ के जिंदा लोगों के सभी सपनों को उस कदीम वक़्त (प्राचीनकाल) से जगह मिली है, जब से इंसान ने अस्तित्व का सपना शुरू किया, तो वह भारत है।*"

विद्वान डॉडवेल के अनुसार "भारत में समुद्र

की तरह सोखने की असीम शक्ति थी। बाहरी ताकतों के मेल-मिलाप से भारत की जीवनी शक्ति और मजबूत हुई। यहाँ का 'हिंदूपन' उन पर छा गया। विंसेट स्मिथ का मानना है- "विदेशी मुसलमान अपने पूर्वजों शकों और युई-ची की तरह हिंदू धर्म की पचा लेने की अद्‌भुत शक्ति के वश में हुए और तेजी के साथ उनमें 'हिंदूपन' आ गया।"

हम सब जानते हैं कि हिंदी साहित्य का प्रारंभ लगभग दसवीं सदी से माना गया है जिसका विकास संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश से हुआ। इस दृष्टि से भारतीय अस्मिता की निरंतरता के सूत्र का आरंभ संस्कृत ग्रंथों से माना जाएगा जो प्रायः वेदों-पुराणों में अंतर्निहित है। हमारी भारतीय संस्कृति के पुरातन चिह्न वेदों में मिलते हैं। वेदों का समय काल बेहद अनिश्चित है लेकिन इसे प्रमाणित तौर पर 2500 साल पुराना ही माना जाना चाहिए और यही समय आर्यों का भारत में आगमन का काल है। वेद आर्यों के भावोद्‌गार हैं। वेदों में ईश्वर-मनुष्य-जगत के संबंधों का वर्णन है। वेदों में स्तुतियाँ हैं, प्रार्थनाएँ हैं, यज्ञ-हवन की विधियाँ हैं जादू-टोना भी है और बहुत ऊँचे दर्जे की प्राकृतिक कविताएँ भी हैं। यह सब कुछ भारतीय अस्मिता को नया आयाम देती हैं। निरंतरता को कायम रखती हैं। प्रारंभिक वैदिक समय में ईश्वर-आत्मा के सवाल इतने महत्व के नहीं थे जो कालांतर में हुए। ईश्वर की परिकल्पना के साथ ही एकेश्वरवाद, अद्‌वैतवाद जैसे सिद्‌धांत पैदा हुए। यह दौर 'वेदांत' का दौर कहलाया। यहाँ उपनिषदों का जिक्र है और इसी समय में मिलती है- मनुष्य की पहली पुस्तक-ऋग्वेद अर्थात् प्रथम वेद। इसमें प्रकृति की सुंदरता और रहस्य की भावना अंतर्निहित है। सच्चे अर्थों में यहीं से भारतीय अस्मिता की खोज चल पड़ी जो आज भी निरंतर जारी है। रवींद्रनाथ ठाकुर ने इसे "जन-समाज की मिली-जुली प्रतिक्रिया का यह काव्यमय वसीयतनामा माना। वेदों की रचना एक प्रकार से भारतीय संदर्भ में एक 'सत्य' की खोज थी। जिसे लोग अपने ढंग से व्याख्यायित करते थे अर्थात् 'एकम् सत् विप्रा बहुधा वदंति' की राह वेदों की राह थी।

उपनिषदों का काल 800 ईसा पूर्व माना जाता है। यह वेदों से आगे का विकास है। उपनिषद अपनी वैज्ञानिक समझ, छानबीन, सत्य की साहसिक खोज का परिणाम है। ख़ास जोर आत्मा-परमात्मा पर दिया गया। उपनिषद में ही कहा गया कि बिना सच्चे ज्ञान के पूजा पाठ बेकार है। भीतरी मन को ज्ञान का ऊँचा स्थल माना गया जिसका परिणाम यह हुआ कि समाज उसकी दृष्टि से गायब हो गया। उपनिषद एक दार्शनिक रुझान है। प्रो. एफ. डब्ल्यू. टॉमस अपनी पुस्तक 'दि लीगेसी ऑफ इंडिया' में कहते हैं- ''उपनिषदों का जो खास गुण है वह है इसका निष्कपटपन होना। वह इस तरह का है, मानो दो दोस्त आपस में किसी गंभीर विषय पर विचार-विमर्श कर रहे हों।"

उपनिषदों की अच्छी व्याख्या चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य करते हैं- "प्रशस्त कल्पना, विचारों की शानदार उड़ान, जांच-पड़ताल की बेधड़क भावना, जिसके पीछे सच्चाई तक पहुँचने की गहरी प्यास है- इनसे प्रेरित होकर उपनिषदों में गुरु और शिष्य विश्व के खुले हुए रहस्य' में पैठते हैं और यह बात दुनिया की इन सबसे पुरानी पवित्र पुस्तकों को सबसे आधुनिक और संतोष देने वाली बना देती है।"

उपनिषद की एक प्रार्थना अत्यंत प्रसिद्‌ध है- "असत् से मुझे सत् की ओर ले चल! अंधकार से प्रकाश की ओर ले चल! मृत्यु से मुझे अमरत्व की ओर ले चल।" वेदों-उपनिषदों के पश्चात् प्राचीन भारत में महाकथाओं की परंपरा का आरम्भ होता है जिसका रूप काव्यात्मक था। इसी कारण ये महाकाव्य कहलाए। प्राचीन भारत के दो महाकाव्य - 'रामायण' और 'महाभारत' अत्यंत प्रसिद्‌ध ग्रंथ हैं। सत्य की खोज के समानांतर तत्कालीन भारत में हो रही घटनाओं को इन महाकाव्यों में स्थान मिला। ये दोनों रचनाएँ विश्व की सर्वाधिक चर्चित रचनाएँ हैं। ये दोनों रचनाएँ दंत-कथाओं के अत्यंत विकसित रूप हैं। इसके पूर्व पुराणों में कथाओं का एक विस्तृत रूप मिलता है जिसमें अपने-अपने आराध्यों को महिमामंडन के साथ प्रस्तुत किया गया। विष्णुपुराण, शिवपुराण उनमें सबसे प्रसिद्‌ध रचनाएँ हैं।

रामायण, महाभारत या इनसे पूर्व रचित पुराणों की कथाएँ भारतीय अस्मिता को उसकी जमीन में घटी घटनाओं से जोड़ती हैं, निरंतरता का सूत्र कहीं भी नहीं

टूटता। रामायण-महाभारत में संपूर्ण आर्यावर्त्त की परिकल्पना है। यह परिकल्पना एक सांस्कृतिक सूत्र का आधार है। हिंसा पर अहिंसा की प्रतिस्थापना पर बल है। असत् पर सत्य की जीत का बल है। यही भारतीय अस्मिता है। यही भारतीय दर्शन है। इसका एक-एक अंश भारतीयता का अंश है। महाभारत यथार्थ का आधार है और रामायण आदर्श रूप का। महाभारत और रामायण दोनों ऐसे ग्रंथ हैं जिसमें भारतीय अस्मिता के लगभग सारे चिह्न मिलते हैं। महाभारत में वेदों का बहुदेववाद है उपनिषदों का अद्वैतवाद है एकेश्वरवाद की परिकल्पना भी इसमें अंतर्निहित है। 'मन्मनां भव मद् भक्तोह्' कहकर कृष्ण इसी ओर संकेत करते हैं। यह भारतीय अस्मिता के चिह्न ही हैं। महाभारत में ही कर्म का ज्ञान देने वाली भगवद्गीता है जो तीन योग- कर्म, भक्ति, ज्ञान के माध्यम से बेहतर समाज की व्यवस्था देती है। साहित्य की जो धारा रामायण-महाभारत महाकाव्यों से निकली वही आगे चलकर भारतीयता के चिह्नों के साथ पुष्ट होती गयी। चाणक्य का 'अर्थशास्त्र' भारतीय अर्थ-तंत्र को दिखाता है। इनके पूर्व मनु और उनके बाद के स्मृतिकारों ने व्यापार और भारतीय समाज एवम् अर्थतंत्र का ब्यौरा दिया है। याज्ञवल्क्य-नारद ने भी इस ओर संकेत दिए हैं। गुप्तकाल में कालिदास अपने साहित्यिक कौशल से मेघदूत, अभिज्ञान शाकुंतलम्, रघुवंश जैसी रचनाएँ लिखते हैं जो तत्कालीन भारत की अस्मिता को दर्शाती है। शूद्रक रचित 'मृच्छकटिक' तथा विशाखदत्त रचित 'मुद्राराक्षस' गुप्तकालीन भारत से परिचय कराती हैं। दंडी का 'दशकुमार चरित' दक्षिण भारत का दर्शन कराता है। पाणिनि के 'अष्टाध्यायी' नामक ग्रंथ में व्याकरण के सूत्रों के साथ भारत के भूगोल का भी पता चलता है। छठी सदी में वराहमिहिर ने 'वृहत् संहिता' लिखकर भारत की कृषि व्यवस्था तथा तत्कालीन भारतीय अर्थव्यवस्था का इतिहास प्रस्तुत किया। जैन धर्म संस्कृत, प्राकृत में लिखकर तत्कालीन भारतीय अस्मिता को प्रचारित करते हैं। पालि में लिखा बौद्ध साहित्य सुत्तपिटक, विनयपिटक तथा अभिधम्मपिटक में संकलित है।

जैसा कि हम सब जानते हैं, हिंदी साहित्य का आरंभ दसवीं सदी से होता है। हिंदी, अपभ्रंश से निकलकर अपना रूप ग्रहण कर रही थी। भारतीय अस्मिता की निरंतरता के सारे सूत्र जो वेद, वेदांत, उपनिषदों, पुराणों तथा रामायण, महाभारत-गीता में निहित थे, वे हिंदी साहित्य की धारा से जुड़ते रहे।

आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक यह धारा अक्षुण्ण बनी रही। भारतीय अस्मिता की निरंतरता जितनी ऐतिहासिक है, उतनी ही साहित्यिक भी।

आदिकालीन साहित्य में अंतर्निहित धर्म, नीति, श्रृंगार तथा वीर रस की रचनाएँ भारतीय अस्मिता की निरंतरता का ही परिणाम हैं। यह शांर्ग्धर के अपभ्रंश, अमीर खुसरो की खड़ी बोली तथा विद्यापति की मैथिली का दौर था। यह दौर सिद्ध-नाथ साहित्य का भी है। गोरखनाथ मानसिक दृढ़ता पर बल देते हैं।

उनका मानना है कि योगी को काम, क्रोध या किसी भी प्रकार का विघ्न विचलित नहीं कर सकता-

हँसिबा षेलिबा रहिबा संग।
काम क्रोध न करिबा संग।।
हँसिबा शेलिबा गाइबा गीत।
दिढ़ करि राखिबा आपना चीत।।
हँसिबा शेलिबा धरिबा ध्यान।
अहि विधि कथिबा ब्रह्म गियान।।[8]

इन पदों में सहजता पर बल दिया गया जो सच्ची भारतीयता की पहचान है। वे मानते हैं-सहज शील का धरे सरीर, सो गिरही गंगा का तीर।[9]

लौकिक साहित्य तथा चरित काव्यों का दौर जिन पर पुराणों का प्रभाव दिखता है। सर्गों-अध्यायों का अनुपालन तथा कथाओं का अनुकरण, पुराणों, रामायण-महाभारत-सा है। अपने राजा या इष्ट की प्रशंसा का भाव यहाँ भी है।

हालाँकि रामायण-महाभारत-सा आदर्श यहाँ नहीं मिलता। वह व्यवस्था नहीं मिलती जो संपूर्ण आर्यावर्त्त की परिकल्पना से जुड़ा था। भारत छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था और छोटे राजा अपने-आप को ईश्वर के समान रखने में संकोच नहीं करते थे। चंदबरदाई का पृथ्वीराजरासो हो या नरपतिनाल्ह का बीसलदेवरासो।

इनमें भारतीय अस्मिता के चिह्न काफी संकुचित हो चले थे। गौरव था अभिमान था साहस था लेकिन संपूर्ण आर्यवर्त्त का सपना नहीं था। झगड़ा देश के लिए नहीं स्त्री और जमीनों के लिए था। इन रचनाओं में अपने देश के प्रति लगाव उन्हें भारतीयता से जोड़ता है।

आदिकाल के इसी दौर में विद्यापति और अमीर खुसरो जैसे रचनाकार भी हुए। विद्यापति की पदावली में श्रीकृष्ण की प्रेमलीला है। यह भक्ति साहित्य की प्रेरणास्रोत पुस्तक रही। दूसरी ओर अमीर खुसरो हैं जिन्हें अपने देश भारत से प्रेम था। उन्होंने अपनी मसनवी 'नूह सिपहर' का एक पूरा अध्याय भारत की प्रशंसा में लिख दिया।[10] वे 'भारत को पृथ्वी का स्वर्ग' कहते थे।[11] उन्होंने भारतीय ज्ञान-विज्ञान यहाँ की जलवायु यहाँ तक कि यहाँ के काले रंग की बड़ी प्रशंसा की। उन्हें विदेशी आक्रमण से घृणा थी[12] और वे भारतीय नगरों के प्रशंसक थे।

हिंदी साहित्य का भक्तिकाल हिंदी साहित्य को नए आयाम देता है। भक्ति की वही निरंतरता यहाँ दिखती है, जो वेदांत से आई। भक्तिकाल को हिंदी साहित्य का स्वर्णकाल कहा जाता है। जैसा कि कहा गया है कि 'भक्ति द्राविड़ उपजी, लाये रामानंद' के अनुसार भक्ति का उदय दक्षिण भारत में हुआ और वह धारा उत्तर भारत की ओर आई। शंकर के अद्वैतवाद, रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैतवाद, निंबार्काचार्य के द्वैताद्वैतवाद, मध्वाचार्य के द्वैतवाद तथा वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैतवाद का प्रभाव भक्ति आंदोलन पर पड़ा। भक्ति की दोनों धाराओं-सगुण-निर्गुण में भारतीय संस्कृति की छाप स्पष्ट है। भक्ति की प्राचीनधारा कई रूपों में यहाँ विकसित होती है। वल्लभाचार्य का भक्तिमार्ग 'पुष्टिमार्ग' के रूप में जाना जाता है। श्रीकृष्ण उनके आराध्य हैं। वे अवतारी हैं और उनकी लीलाएँ ब्रज, द्वारका तथा कुरुक्षेत्र में होती हैं। अष्टछाप के कवि इसी धारा के कवि हैं जो वल्लभाचार्य की भक्ति-परंपरा का अनुकरण करते हैं। सखाभाव इस भक्ति का प्रधान लक्षण है। ईश्वर के सभी रूप उनके लिए पूजनीय हैं। कृष्ण के जन्म से लेकर संपूर्ण संस्कारों में ये भाव सम्मिलित हैं। वात्सल्य एवम् श्रृंगार रस इनका आश्रय बनता है-अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए। सूरदास ने भक्ति के रूप सखाभाव को समृद्ध किया। श्रीकृष्ण को बाल्य और किशोर रूप का अत्यंत सुंदर वर्णन मिलता है। माँ और पुत्र के प्रेम का वर्णन सूरदास ने किया-

सिखवत चलत जसोदा मैया।

अरबराय कर पानि गहावती, डगमगाय धरै पैयाँ।[13]

अथवा बाल हठ का चित्रण हो-

मैया कबहूँ बढैगी चोटी

कितिक बार मोहि दूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी।[14]

राधा कृष्ण के प्रेम का चित्रण हो-

धेनु दुहत अति ही रति बाढ़ी

एक धार दोहनि पहुँचावत, एक धार जहाँ प्यारी ठाढ़ी।[15]

भक्ति की समृद्ध परंपरा तथा भारतीय अस्मिता के चिह्न गाँव, गाय, दूध और उससे जुड़ी अर्थव्यवस्था का जिक्र भक्तिकाल के कवियों के यहाँ मिलता है।

कुंभनदास जब कहते हैं- "तुमनी के दुहि जानत गैया" तो वे भारतीयता के चिह्नों को उजागर करते हैं। रामभक्ति धारा के कवियों के केंद्र में राम हैं। राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं और उनका जीवन अनुशासित है। तुलसीदास 'रामकथा' कहते हैं और भारतीय अस्मिता की निरंतरता के सूत्र उस कथा से जुड़ते हैं।

भारतीय संस्कारों की समृद्ध परंपरा तुलसी के यहाँ घनीभूत होती है। तुलसी श्रीराम के बाल्यरूप का वर्णन करते हैं लेकिन उसमें सखा भाव की अपेक्षा आराध्य भाव अधिक है। सगुण- निर्गुण का झगड़ा यहाँ भी है परंतु भक्ति के क्षेत्र में एक समन्वय-सा दिखता है। तुलसीदास कहते हैं-

अगुन सगुण विच नाम सुसाखी।

उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी।

वहीं कबीर भी जब भक्ति साधना में आते हैं तो 'राम' को अपना 'भरतार' कहते हैं। स्वयं को 'राम की बहुरिया' कह राम के गुण को रखते हैं। परहित,

परदुखकातरता, विनयशीलता कई ऐसे मूल्य हैं जिन्हें हम भारतीय अस्मिता के चिह्न भी कहते हैं- भक्तिकाल में आपको दिखेंगे।

रीतिकाल का साहित्य श्रृंगार का साहित्य है। कृष्ण भक्ति यहाँ भी है परंतु राधा उस भक्ति की बराबर हिस्सेदार है। ज्ञानी, चतुर स्त्री का जो रूप रीतिकाल में मिलता है, संभवत: हिंदी साहित्य में अन्यत्र कहीं नहीं है। भारतीय अस्मिता के संदर्भ में यह एक महत्वपूर्ण बिंदु है जिस पर विचार किया जाना चाहिए।

बिहारी का पहला दोहा है-

मेरी भव बाधा हरौ राधा नागरी सोइ,

जा तन की झाँईं परैं स्याम हरित दुति होइ।

बिहारी यहाँ कृष्ण से पहले राधा की स्तुति करते हैं। उद्देश्य स्पष्ट है कि राधा श्रीकृष्ण तक पहुँचने का मार्ग हैं- साधन हैं। वही श्रीकृष्ण के सर्वाधिक निकट हैं। स्मृतिकार मनु की इस बात से आप इसे जोड़ सकते हैं- "जहाँ स्त्रियों का सम्मान होता है वहाँ देवता वास करते हैं।" भक्तिकाल में स्त्री का जहाँ एक रूप ठगिनी या माया से जोड़ा जाता है रीतिकाल में वह राधा नागरि हो जाती है अर्थात् चतुर-ज्ञानी स्त्री। नदी-नाले, गली-मोहल्ले, दालान, छत, बैठक, तीज-त्यौहार का जितना व्यापक रूप रीतिकाल में दिखता है, वह अन्यत्र कहीं और नहीं दिखता। होली उनका पसंदीदा त्योहार है अर्थात् भारतीय जनमानस, उनकी दिनचर्या रीतिकाल के साहित्य के केंद्र में है। यह सब कुछ राधा कृष्ण के प्रेम के बहाने से आते हैं। यहाँ प्रेम है, दर्शन नहीं है। यहाँ भारतीय अस्मिता की निरंतरता के सूत्र दिखते नहीं है, परंतु जुड़े अवश्य हैं। कृष्ण भक्ति की परंपरा यहाँ विद्यमान है रूप अलग है। आधुनिककाल का संबंध वैचारिकता से है। माना गया कि गद्य आधुनिकता का वाहक बनेगा ऐसा हुआ भी। परंतु कविता का स्थान नहीं बदला। बदली तो केवल परिस्थितियाँ। नवजागरण काल ने मध्यकालीन बोध को हटा आधुनिक संवेदनाओं को बिठाया। पुराने से तालमेल बिठाकर चलना संभव था और ऐसा हुआ भी। मध्यकालीनता और आधुनिकता के द्वंद्व के साथ आधुनिककाल का प्रारंभ होता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र गद्य खड़ी बोली में और कविता ब्रजभाषा में लिख रहे थे। भाषा के साथ-साथ, संवेदना के स्तर पर भी यह द्वंद्व दिखता था। प्राचीनता और नवीनता की एकसूत्रता भारतेंदु हरिश्चंद्र के यहाँ मिलेगी। देश- चिंता, राष्ट्र-निर्माण की संकल्पना के साथ वे साहित्य के क्षेत्र में उतरे थे। अपनी जमीन, अपनी भाषा, अपनी संस्कृति से जुड़ाव, प्राचीन वेदों, उपनिषदों में भी मिलता है और कालांतर में भी यह निरंतरता भारतेंदु हरिश्चंद्र के यहाँ भी पाई जाती है और उनके बाद आने वाले तमाम नामी-गिरामी साहित्यकारों में भी मिलती है। जिनमें पं. अयोध्या सिंह उपाध्याय, महावीर प्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, निराला, सुमित्रानंदन पंत, नरेश मेहता, श्रीकांत वर्मा, कुंवर नारायण जैसे रचनाकार सम्मिलित हैं। मैथिलीशरण गुप्त की रचना 'भारत भारती' में हिंदुओं की वर्तमान एवम् भविष्य की दशाओं का चित्रण है। इसके अतिरिक्त 'जयद्रथ वध', 'पंचवटी', 'साकेत', 'यशोधरा', 'प्लासी का युद्ध', 'सिद्धराज' में भारतीय अस्मिता के चिह्नों का नए ढंग से चित्रण मिलता है।

इसके पूर्व पं अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का 'प्रिय प्रवास' कृष्ण को नए ढंग से प्रस्तुत करता है। गौ-चारण के बाद आते कृष्ण का चित्रण देखिए-

ककुभ-शोभित गोरज बीच से

निकलते ब्रज वल्लभ यों लसे,

कदन ज्यों करके दिशि कालिमा

विलसता नभ में नलिनीश है।

श्रीकृष्ण से जुड़ी समृद्ध कृष्ण भक्ति परंपरा से यह अंश कितनी बेहतरी से जुड़ता है। यह ढंग काफी हद तक आधुनिक है। वैसा ही ढंग उनकी रचना 'वैदेही वनवास' में दिखता है। मैथिलीशरण गुप्त ने ऐतिहासिक रूप से उपेक्षित प्राचीन नारियों उर्मिला, यशोधरा का चित्रण कर आधुनिक संवेदना से प्राचीन संवेदना को एकसूत्रित कर दिया है। जयशंकर प्रसाद के मनु 'स्मृतिकार' से अधिक 'मनुष्य' दिखते हैं। यही आधुनिकता की पहचान है। निराला, 'तुलसीदास', 'राम की शक्ति पूजा' में प्राचीन कथा को आधुनिक द्वंद्व से जोड़कर देखते हैं। तुलसी के राम द्वंद्व में नहीं है, निराला के हैं- संशय से घिरे हुए। वेदों में वर्णित प्राकृतिक सौंदर्य

का एक रूप पंत के साहित्य में भी दिखता है। वे प्रकृति को मनुष्य की वैचारिकी से जोड़कर देखते हैं। आजादी के पश्चात् रचनाकारों में अज्ञेय, नरेश मेहता, श्रीकांत वर्मा तथा कुंवर नारायण ऐसे रचनाकार हैं जो प्राचीन भारतीय मिथकों को आधार बनाकर नए सवाल खड़े करते हैं। अज्ञेय की 'असाध्यवीणा', श्रीकांत वर्मा की 'मगध', कुंवर नारायण की 'आत्मजयी', जिसमें कठोपनिषद् को आधार बना कर मृत्यु संबंधी शाश्वत समस्या पर नई व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। इसमें नचिकेता की कथा है इसके अतिरिक्त 'चक्रव्यूह' एवम् 'वाजश्रवा के बहाने' रचनाओं में भी कुंवर नारायण प्राचीन भारतीय मिथकों का प्रयोग कर अस्मिता की निरंतरता के सूत्र जोड़ते हैं। नरेश मेहता 'संशय की एक रात' में रामायण की सेतु-बंध के पश्चात की घटना को आधार बनाते हैं। 'युद्ध हो अथवा न हो' के बीच का संशय है। श्रीकांत वर्मा 'मगध' के बहाने राजसत्ता के चरित्र को उजागर करते हैं। संदर्भ ऐतिहासिक है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय अस्मिता की निरंतरता के जो सूत्र आरंभिक सभ्यता में बनते रहे हैं उतने ही अधिक प्रासंगिक एवम् सार्थक हैं। यही प्रासंगिकता एवम् सार्थकता भारतीय अस्मिता की निरंतरता को समृद्ध करते हैं।

– एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, अदिति महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

❑❑❑

गढ़वाली भाषा का व्याकरणिक स्वरूपः समासों के संदर्भ में

डॉ. वीरेंद्र सिंह बर्त्वाल

गढ़वाली एक हिमालयी क्षेत्र की भाषा है। यह अधिकांशतः उत्तराखंड के एक बहुत बड़े क्षेत्र गढ़वाल में बोली जाती है। गढ़वाल में प्रयुक्त होने के कारण इसका नामकरण इसी आधार पर 'गढ़वाली' हुआ। हिंदी के बहुत निकट गढ़वाली की लिपि देवनागरी है। लगभग सत्तर वर्ष पहले तक इस भाषा को गढ़वाल राज्य की राजभाषा होने का गौरव प्राप्त था। कुछ लोग इसे भाषा नहीं, बोली मानते हैं, परंतु इसमें भाषा की लगभग सभी विशेषताएँ होने के कारण इसे भाषा कहना ही समीचीन है।

गढ़वाली भाषा हिंदी की पाँच उपभाषाओं में पहाड़ी के अंतर्गत आती है। यह समृद्ध भाषा है। इसका शब्दभंडार और साहित्य विशद् है। इसका ठोस व्याकरणिक आधार है। यह भाषा अत्यंत प्राचीन है। यह हिंदी से भी पुरानी है। अनेकों लोकगीत, लोकगाथाएँ, लोककथाएँ, कविताएँ, मुहावरे, लोकोक्तियाँ इसके साहित्य के अंग हैं, जिनमें यहाँ का लोकजीवन सशक्त ढंग से प्रतिबिंबित हुआ है। गढ़वाली की विशाल शब्द संपदा एवं लोकप्रियता इससे पुष्ट होती है कि अब तक अनेकों नाटक, कविताएँ, कहानियाँ एवं पत्र-पत्रिकाएँ इसमें प्रकाशित हो चुकी हैं और यह कार्य निरंतर गतिमान है। लगभग सौ वर्ष पूर्व भाषा विशेषज्ञ ग्रियर्सन अपने 'भाषा सर्वेक्षण' में गढ़वाली को विख्यात विभाषा स्वीकर कर चुके हैं।

गढ़वाली का व्याकरणिक आधार हिंदी और संस्कृत के बहुत निकट है। समास, लिंग, वचन, कारक चिह्नों के मामले में हिंदी-संस्कृत-गढ़वाली में कतिपय समानताएँ हैं। यद्यपि अभी यह बात स्पष्ट नहीं हो पाई है कि गढ़वाली का जन्म मूलतः किस भाषा से हुआ है, किंतु इसके ढांचे के आधार पर यह अवश्य प्रतीत होता है कि इसका संस्कृत और हिंदी से बहुत निकट का संबंध है। इस भाषा में गुजराती, मराठी, ब्रज और संस्कृत के शब्दों की उपलब्धता है। यही कारण है कि हिंदी या उसकी उपभाषाओं के व्यवहारी लोगों को गढ़वाली समझने में बहुत कठिनाई नहीं होती है। किस भाषा का आविर्भाव कब हुआ, इस संबंध में निश्चित रूप से कुछ भी कह पाना असंभव है। इस संबंध में अनुमान ही लगाया जा सकता है। गढ़वाली भाषा के संबंध में भी यह सिद्धांत लागू होता है। यूँ तो यह कई सौ वर्ष प्राचीन है, किंतु आधुनिक स्वरूप की गढ़वाली की आयु दो सौ वर्ष से भी अधिक अनुमानित है।

गढ़वाली के मौजूदा स्वरूप का इतिहास हिंदी के मौजूदा स्वरूप के इतिहास से भी पुराना माना जाता है। गढ़वाली यूँ तो सदियों पहले से लिखित रूप में अस्तित्व में आ गई थी, लेकिन यह 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध में आधुनिक स्वरूप में आने लग गई थी। अर्थात् आधुनिक स्वरूप में आए इसे लगभग सवा दो वर्ष हो चुके हैं।[1]

मंत्र साहित्य गढ़वाली भाषा का महत्वपूर्ण भाग है। इसकी शब्दावली विचित्र है। मंत्र साहित्य वर्तमान गढ़वाली से बहुत भिन्न दिखलाई देता है। उसके स्वरूप के आधार पर कहा जा सकता है कि वह बहुत पुराना होगा। इस पर नाथ पंथ की छाया का प्रचुर प्रभाव दिखलाई देता है। शब्दकोश की दृष्टि से गढ़वाली मंत्र और लोकगीत बहुत महत्वपूर्ण हैं।

लोकगीतों, रखवाली मंत्रों की सुरक्षित परंपरा इस ओर संकेत करती है कि गोरखनाथ के समय में गढ़वाली का 'संधा भाषा' जैसा कोई रूप पहाड़ों में प्रचलित रहा होगा। प्राचीन गढ़वाली का इनके अतिरिक्त कोई और रूप हमारे सामने विद्यमान नहीं है। देवप्रयाग से प्राप्त 1455 ई. का जगतपाल का लेख अब तक के प्राप्त अभिलेखों में सबसे पुराना है।[2]

हिंदी-संस्कृत और इनके परिवार की अन्य कई भाषा-बोलियों से बहुत निकट होने पर भी गढ़वाली का स्वरूप और स्वभाव विचित्र प्रतीत होता है। भौगोलिक आधार पर देखें तो उत्तराखंड का एक भाग गढ़वाल मध्य हिमालय के अंतर्गत आता है। उत्तराखंड का दूसरा भाग कुमाऊँ है, जो भाषा के लिहाज से गढ़वाल से बहुत निकटता रखता है। इन दोनों अंचलों की भाषाएँ अर्थात् गढ़वाली और कुमाऊँनी मध्य पहाड़ी के अंतर्गत आती हैं। इस भाषा का संबंध दरद, पैशाची अथवा खश प्राकृत से बताया गया है। आर्यों के यहाँ निवास करने के कारण गढ़वाली पर आर्यों की भाषा की स्पष्ट छाप है। इसे राजस्थानी की एक शाखा भी बताया गया है, किंतु उसके संपूर्ण स्वरूप पर दृष्टिपात करें तो इस पर अन्य भाषाओं के लक्षण भी दिखलाई देते हैं।

....इसमें संदेह नहीं कि राजस्थान और गढ़वाल-कुमाऊँ के लोगों में गुर्जरों, शकों आदि के कारण कुछ समानता रही है। इस समानता के कारण बाहर से आए हुए ये ही लोग थे जो हिमालय में प्रचलित भाषा को साथ लेकर गए। इस सत्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि पहाड़ी और राजस्थानी में कुछ समानताएँ हैं।[3]

गढ़वाली भाषा के कतिपय लक्षणों के आधार पर माना जाता है कि इसका संबंध शौरसेनी अपभ्रंश से है। गढ़वाली भाषाविद् डॉ. गोविंद चातक भी इस पर सहमति प्रकट करते हैं। उनके अनुसार मध्य पहाड़ी का अगर किसी से सीधा संबंध प्रकट होता है तो वह शौरसेनी अप्रभंश से। वस्तुतः इसी शौरसेनी अपभ्रंश का कोई रूप पहाड़ों में प्रचलित रहा होगा, जिससे मध्य पहाड़ी का आविर्भाव हुआ होगा।[4]

गढ़वाली में अपभ्रंश के बहुत तत्व विद्यमान हैं। इस भाषा की बड़ी विशेषता है कि यह उकार बहुला है और अपभ्रंश को उकार बहुला भाषा ही माना गया है। गढ़वाली में उकार बहुलता के उदाहरण हैं-छोट्टु (छोटा), बड्डु (बड़ा), गोरु (गोरा), तुमारु (तुम्हारा), हमारु (हमारा), चौड्डु (चौड़ा), घोड्डु (घोड़ा), भैंसु (भैंस), सांगड्डु (संकरा) इत्यादि।

अब बात हिंदी और मध्य पहाड़ी की करें तो वाक्य रचना, क्रिया, शब्द-संपदा इत्यादि के मामले में दोनों में पर्याप्त समानताएँ हैं। पाँच उपभाषाओं और 18 बोलियों में विभाजित हिंदी की एक उपभाषा पहाड़ी है। इसके अंतर्गत एक पश्चिमी पहाड़ी तथा दूसरी मध्यवर्ती पहाड़ी है। कुमाउँनी और गढ़वाली इसी के अंतर्गत आती हैं।

इसके अतिरिक्त पश्चिमी हिंदी के अंतर्गत खड़ी बोली या कौरवी, ब्रजभाषा, हरियाणवी, बुंदेली तथा कन्नौजी हैं। पूर्वी हिंदी के तहत अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी हैं, राजस्थानी के अंतर्गत पश्चिमी राजस्थानी (मारवाड़ी), पूर्वी राजस्थानी (जयपुरी), उत्तरी राजस्थानी (मेवाती) तथा दक्षिणी राजस्थानी (मालवी) आती हैं और इसी प्रकार बिहारी के अंतर्गत भोजपुरी, मगही और मैथिली आती हैं।[5]

यह बात ध्यातव्य है कि गढ़वाली हिंदी के बहुत निकट है, किंतु दोनों में पारस्परिक निर्भरता नहीं है। हिंदी के समान गढ़वाली का एक गुण सुदृढ़ शब्द स्वीकार्य शक्ति है। हिंदी की ही तरह उसने अंग्रेजी, फारसी, तत्सम इत्यादि शब्दों को बड़ी मात्रा में स्वीकार कर अपना क्षेत्र विस्तृत किया है। परसर्ग, क्रिया, सहायक क्रिया, विशेषण, संज्ञा, सर्वनामों का स्वरूप इसमें हिंदी के निकट ही है। उदाहरणार्थ-राम ने महेश को गरीबों के लिए दस बोरी चावल दिए। वे चावल महेश ने गाड़ी से श्रीनगर पहुँचाए। उनमें से पाँच बोरी चावल खराब निकले। उन्हें उसने पशुशाला में रख दिया। सभी चावल राम के पिता जी के थे। (रामन् महेश मुं गरीबुक तैं दस बोरि चौंळ दिनिन। वु चौंळ महेशन् गाड़ मा सिरिनगर पौंछैंन। वूं मगै पाँच बोरि चौंळ खराब निकळिन। सि वैन गोठ मा रखि दिनिन। सब्बि चौंळ राम का पिता जी का छा।)

गढ़वाली के सामासिक रूप हिंदी के ही समान हैं। कुछ रूप तो हिंदी के बहुत ही निकट हैं, इसलिए वे रूप गढ़वाली के न होकर हिंदी के ही प्रतीत होते हैं।

समास का सामान्य अर्थ है-छोटा करना। अर्थात् एक से अधिक शब्दों को निकट लाकर एक नए शब्द

की अभिसृष्टि करना, किंतु उस नए शब्द से अर्थ परिवर्तन न हो।

समास वह शब्द रचना है, जिसमें अर्थ की दृष्टि से परस्पर स्वतंत्र संबंध रखने वाले दो या दो से अधिक शब्द मिलकर किसी अन्य स्वतंत्र सार्थक शब्द की रचना करते हैं।[6]

समास पद्धति में संयोजक तत्व (विभक्ति आदि) को हटा दिया जाता है, जिससे एक-से-अधिक शब्द आपस में मिलकर एक शब्द की रचना करते हैं। शब्दों के जुड़ने की यह क्रिया समास कहलाती है और इस प्रकार बने शब्द सामासिक शब्द कहलाते हैं।[7]

हिंदी ने समास की यह परंपरा विशुद्ध रूप से संस्कृत से ग्रहण की है और संभवतः गढ़वाली में भी यह संस्कृत से ही आई है।

समास पद्धति, संस्कृत की विशेषता है। वह श्लिष्ट-प्रश्लिष्ट के मध्य की भाषा थी, इसलिए उसमें शब्दों को परस्पर जोड़ने की सुविधा थी। हिंदी अश्लिष्ट की ओर उन्मुख है। अतः उसमें शब्द जुड़ने की बजाय अलग-अलग होते हैं इसलिए हिंदी में समास पद्धति का ह्रास हो चला है।[8]

दो शब्दों के मिलने से बने समास पद को समस्त पद कहते हैं और इन्हें पुनः अलग-अलग करके लिखा जाए तो वह क्रिया विग्रह कहलाती है। समस्त पद का पहला शब्द पूर्व पद और दूसरा शब्द उत्तर पद कहलाता है।

हिंदी व्याकरण के आधार पर देखें तो समास मुख्यतः चार प्रकार के होते हैं। पहला है-अव्ययीभाव। इस समास में पूर्व पद प्रधान होता है। हिंदी में बेधड़क, हर रोज, सपरिवार, सस्नेह, अनजाने, बार-बार, निडर इत्यादि इस समास के उदाहरण है। गढ़वाली में अण और अ उपसर्ग से ऐसे कई समास बनते हैं-अणमुक्तु, असग्वर्या, अजाणकु, अल्वणु, असुगी, इखारि-इखारि, निद्यो, निह्वण्यां, निपूतू, निरबंग्स, निर्मैत्या।

दूसरा समास तत्पुरुष कहलाता है। इसमें कारक चिह्नों-को, से, के द्वारा, के लिए, का, में, पर का लोप होता है। इस समास में उत्तर खंड प्रधान होता है। हिंदी में शरणागत, कार्यव्यय, गोशाला, सर्वश्रेष्ठ इस समास के उदाहरण हैं। गढ़वाली में इसी प्रकार अल्वाडु, ग्यंवाडु, सट्याडु, जोबनमातु, देसनिकाळु, देबजात्रा, मनमिलो।

तीसरा समास द्वंद्व समास है। इसके दोनों खंड समान होते हैं। द्वंद्व का तात्पर्य जोड़े से है। शब्दों में जोड़ों को अलग करने पर उनके मध्य अथवा, या, और लगता है। इसमें भी इतरेतर द्वंद्व में और का लोप होता है। जैसे माता-पिता, भाई-बहन, पति-पत्नी, स्त्री-पुरुष, बेटा-बेटी। गढ़वाली में यह समास इसी रूप में प्रचलित है। केवल संज्ञा रूप अलग हैं-ब्वे-बुबा, भै-बैंणा, पति-पत्नी/द्वी झणा), जनानि-बैख (बैरबान-मनस्यारु), नौनु-नौनि।

वैकल्पिक द्वंद्व में या तथा अथवा का लोप होता है। जैसे इधर-उधर, जीवन-मृत्यु, अच्छा-बुरा, ऊपर-नीचे, आगे-पीछे, इधर-उधर, आना-जाना। गढ़वाली में इसका यही रूप है- इथैं-उथैं (इना-उना), ज्यूणु-मरणु, भलु-बुरु, ऐंच-नीस, अगाड़ि-पिछाड़ि, यख-वख, औंणु-जाणु।

द्वंद्व समास के ही अंतर्गत इसके तीसरे भेद समाहार द्वंद्व में शब्दों के ऐसे जोड़े भी निर्मित होते हैं, जिनसे दो पदों के अर्थ के अलावा भी अर्थ प्रकट होते हैं। जैसे नमक-तेल(खाद्य सामग्री), उठना-बैठना (व्यवहार या बर्ताव), (खाना-कमाना) जीवनचर्या या (जीविकोपार्जन), धन-संपदा (संपूर्ण संपत्ति), दीन-ईमान (नैतिकता), चाल-चलन (चरित्र), आज-कल (वर्तमान), खेती-बाड़ी (किसानी), हिसाब-किताब (भुगतान) इत्यादि। गढ़वाली में इस समास के उदाहरण ये हैं-ल्वण-त्यल, उठणु-बैठणु, खाणु-कमौंणु, धन-दौलत, चाल-चलण, लत्ता-कपड़ा, चलौंण्या-पठौंण्या (सभी कार्य करने वाला), राजी-कुसी (कुशल पूर्वक), धौन-चैन या चैन-पशु (पशु संपदा) इत्यादि।

चौथा समास बहुव्रीहि है। इसकी विशेषता है कि इसमें दो शब्द मिलकर तीसरे का विशेषण बन जाते हैं। इसके दोनों में कोई भी खंड प्रधान नहीं होता है। इसके समस्त पद का विग्रह किया जाए तो उसमें वाला, वाली, जिस और जो का प्रयोग किया जाता है। जैसे- अष्टभुज, दशानन, श्वेतांबर, चौपाया, तिरंगा, निशाचर, मंदबुद्धि इत्यादि।

गढ़वाली में इस समास के उदाहरण इस प्रकार हैं- चारांख्यां (चार आँखों वाला), अफखौ (अपने आप खाने वाला), फक्वा (अपने किए कार्य का बखान करने वाला), उचकंदुड्या (ऊँचा सुनने वाला), अबोल्या

(कहना न मानने वाला), दोपाया (दो हैं पैर जिसके), चौपाया (चार हैं पैर जिसके), भलुखाण्या (अच्छा खाने वाला) इत्यादि।

सारांशत: कहा जा सकता है कि गढ़वाली कई भारतीय भाषाओं का समन्वित रूप है। इसमें मराठी, गुजराती, पंजाबी, बांग्ला, राजस्थानी आदि भारतीय आर्य भाषाओं के लक्षण विद्यमान हैं। संस्कृत तो इसकी आत्मा में रची-बसी प्रतीत होती है गढ़वाली भाषा के इस मिश्रित और बहुलक्षणीय स्वरूप के पीछे अनेक संस्कृतियों का हाथ है। हिमालय क्षेत्र में सदियों पूर्व आर्यों का आगमन हुआ। साथ ही कोल, किरात, भील, तंगण, खस, यक्ष, नाग, किन्नर, गंधर्व ने यहाँ निवास किया। इन सभी की भाषाओं के शब्दों से गढ़वाली की संरचना प्रभावित हुई। शब्द-संपदा की दृष्टि से गढ़वाली बहुत समृद्ध है। इसमें कुछ शब्द ऐसे हैं, जिनके लिए हिंदी में भी शब्द नहीं मिल पाते। गंध और ध्वनियों के लिए इस भाषा में शायद सर्वाधिक शब्द हैं। गढ़वाली भाषा एक प्रकार से एक ऐसा महासमुद्र है, जिसमें लाखों छोटी-बड़ी नदियाँ समाहित हैं। जागरों, पवाड़ों, लोकगीतों और लोककथाओं का इस भाषा के संरक्षण और प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान है। इन विधाओं में गढ़वाली का आम बोलचाल से थोड़ा अलग स्वरूप मिलता है। मुख्यत: उत्तराखंड के उत्तरकाशी, टिहरी, रुद्रप्रयाग, चमोली, पौड़ी, देहरादून में गढ़वाली बोली जाती है। इसके अतिरिक्त गढ़वाल से दिल्ली, चंडीगढ़, मुंबई जैसे भारत के अनेक शहरों तथा विदेश में पलायन कर गए गढ़वाल के लोग वहाँ गढ़वाली बोलते हैं। इस प्रकार इस भाषा को बोलने वालों की संख्या लगभग 50 लाख है। अब एक बड़ा प्रश्न यह है कि उत्तराखंड से पलायन का दुष्प्रभाव इस भाषा पर भी पड़ने लगा है। गांवों में अब बहुत कम लोग बचे हैं। शिक्षा, नौकरी और सुविधाओं के लिए अनेक लोग और बच्चे शहरों के लिए पलायन कर गए और कर रहे हैं। ये लोग शादी-समारोह, देवी-देवता की पूजा या किसी अपने की मृत्यु पर ही गढ़वाल जाते हैं। यह चिंतनीय विषय है कि ऐसी स्थिति में गढ़वाली भाषा को बोलने वालों की संख्या बढ़ने के बजाय कम होती जाएगी।

संदर्भ सूची :

1. डॉ. वीरेंद्र सिंह बर्त्वाल, गढ़वाली भाषा: प्रकृति और समृद्धि, पृ.-13
2. डॉ. गोविंद चातक, भारतीय लोकसंस्कृति का संदर्भ: मध्य हिमालय, पृ.-43
3. डॉ. गोविंद चातक, भारतीय लोकसंस्कृति का संदर्भ: मध्य हिमालय, पृ.-46
4. डॉ. गोविंद चातक, मध्य पहाड़ी की भाषिक परंपरा और हिंदी, पृ.-19-20
5. हिंदी साहित्य का इतिहास (संपादक-डॉ. नगेंद्र, डॉ. हरदयाल), पृ.-07
6. राष्ट्री (भाग-3), राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान (मानित विश्वविद्यालय), नयी दिल्ली, पृ. -48
7. डॉ. राजमणि शर्मा, हिंदी भाषा: इतिहास और स्वरूप, पृ.-220
8. डॉ. राजमणि शर्मा, हिंदी भाषा: इतिहास और स्वरूप, पृ.-220

– मकान नंबर-एच. 301, नेहरू कॉलोनी, धर्मपुर, देहरादून, उत्तराखंड-248001

❑❑❑

आज के संदर्भ में कामायनी

बबीता रानी श्रीवास्तव

जयशंकर प्रसाद जी जितने महान कवि थे उतने ही महान द्रष्टा भी। जीवन की मूल समस्याओं के चिंतन और मनन में उनकी दृष्टि जितनी गहराई में जा सकी उतनी गहराई में आधुनिक युग के किसी और कवि की नहीं।

कवि प्रतिभा के अन्य गुणों से युक्त होने पर भी कवि को महाकवि तब तक नहीं कहा जा सकता जब तक वह द्रष्टा नहीं है। वह जब तक द्रष्टा नहीं है तब तक वह स्रष्टा नहीं बन सकता। कबीर, जायसी, तुलसी, सूर आदि संत कवि महाकवि कहलाए क्योंकि उन्होंने अपने युग में व्याप्त वेदना और निराशा के क्षयरोग को पहचाना तथा पहचानकर अपना-अपना उपचार प्रस्तुत किया। वह उपचार ही उनका युग संदेश है जो युग संदेश होते हुए भी उन्हीं परिस्थितियों में युग-युग का संदेश बन सकता है।

जयशंकर प्रसाद का आविर्भाव एक ऐसे युग में हुआ था जब मानव जाति के इतिहास में एक महान परिवर्तन हो रहा था। वे स्वयं अपने देश के राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक गौरव की भावना से ओत-प्रोत थे और भारतीय संस्कृति की विशाल पृष्ठभूमि में उन्होंने मानव जीवन की समस्याएँ सुलझाने का पुनीत प्रयास किया। प्रसाद जी ने कामायनी के कथानक या वस्तु संघटन में जिस प्रकार पश्चिम की नई संपत्ति के साथ भारतीय दर्शनों की प्राचीन निधि का उपयोग किया है उसी के अनुरूप 'कामायनी' में नारी चरित्र भी हैं - एक श्रद्धा -'भारतीय भावना और दर्शन की प्रतिनिधि' और दूसरी 'इड़ा'- नए वैज्ञानिक विकास का प्रतीक। इन दोनों का संतुलन और समन्वय नवीन भारतीय संस्कृति को 'कामायनी' के कवि की नई देन है।

प्रसाद जी का साहित्य संयम, मर्यादा, त्याग, कर्तव्यपालन, निष्काम - कर्म, सर्वभूतहितरता बुद्धि, विविधता में एकता, संघर्षों के बीच कल्याण भावना, समन्वय, करुणा आदि की उदात्त भावनाओं से पूर्ण है। उनकी दृष्टि में मनुष्य पहले है बाद में कुछ और। संघर्षों के बीच भी मनुष्य सर्वोपरि है। समाज में जो कुछ है मनुष्य के लिए है, विश्व मानव के लिए है। यह कहना अनुचित न होगा कि 'प्रेमपथिक' से लेकर 'कामायनी' तक उनका यही दृष्टिकोण व्याप्त है। उसे चाहे 'आनंदाबुधि का अवगाहन' या 'सौंदर्य प्रेमनिधि में मिलना' या 'विश्वात्मा का सुंदर रूप' या 'आनंदवाद' या 'समरसता का सिद्धांत' या 'करुणा या बालुका पूर्ण करारों के बीच एक निर्मल स्रोतस्विनी का प्रवाहित होना' कहा जाए। प्रेम और सौंदर्य की मादकता में विश्व-मानव ढूँढना उनका अंतिम लक्ष्य था। उनका सर्वाधिक महत्वपूर्ण और बहुचर्चित काव्य ग्रंथ 'कामायनी' उनकी भारतीय संस्कृति एवं दर्शन के प्रति गहन आस्था का प्रतीक है। उसी को लक्ष्य करते हुए उन्होंने कहा है-

चेतना का साक्षी मानव
हो निर्विकार हँसता सा;
मानस के मधुर मिलन में
गहरे-गहरे धँसता सा।

सब भेद भाव भुलवाकर
दुख-सुख को दृश्य बनाता;
मानव कह रे! "यह मैं हूँ"
यह विश्व नीड़ बन जाता !

कामायनी की रचना द्वारा उन्होंने इसी अध्यात्म विशिष्ट संस्कृति का प्रतिपादन किया। इसलिए कामायनी ने हिंदी के तथा भारत के अन्य विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया तो कोई आश्चर्य नहीं।

आज नरसंहारक अस्त्र-शस्त्रों के फलस्वरूप उत्पन्न मृत्यु के महानाश की मंडराती छाया के अंतर्गत जीवन व्यतीत कर मनुष्य के लिए कामायनी की अधिकाधिक सार्थकता है।

श्रद्धा सर्ग तक के मनु एक नष्ट प्राय: राष्ट्र के भग्नावशेष का प्रतिनिधित्व करते हैं जो अपने स्वर्ण अतीत के विनाश की चिंता में मग्न हैं, विवश तथा निरुपाय हैं। मनु के इस व्यक्तित्व की समीक्षा आधुनिक युग की पीठिका पर की जाए तो उनकी चिंता और निराशा साम्राज्यवाद से आक्रांत भारतीय समाज की चिंता और निराशा है, जिसका अनुभव तत्कालीन अन्य कवि भी कर रहे थे ।

गजानन माधव मुक्तिबोध के अनुसार अहंकार, विलासिता, आत्ममोह, निर्बंध उच्छृंखलता, व्यक्तिवादी साहस, व्यक्तिवादी निराशा, पाखंड और ऐसा आत्मग्रस्त, निविड़ आत्मविश्लेषण जो पराजय से प्रसूत होकर पराजयों की ओर ले जाता है। मनु की ये विशेषता है।

आज के संदर्भ में मनु की प्रकृति ठीक उस पूंजीवादी व्यक्तिवाद की प्रकृति है जिसने कभी जनतंत्रात्मकता का बहाना भी नहीं किया, केवल अपने मानसिक खेद, अंतर्विप्लव और निराशा से छुटकारा पाने तथा स्वस्थ, शांत अनुभव करने के लिए श्रद्धा और इड़ा के समान अच्छी साथिनों का सहारा लेता है जो उसके सौभाग्य से उसे प्राप्त हुई। आचार्य रामचंद्र शुक्ल भी मनु को मानव मात्र का, मन का, मनन का प्रतिनिधि बतलाते हैं।

प्रसाद जी कामायनी को प्राचीन इतिहास के रूप में उपस्थित न कर वर्तमान पूंजीवादी समाज के विकास का छोटा सा इतिहास प्रस्तुत कर रहे हैं, जिसमें उस समाज की प्रमुख समस्या -'अहं','व्यक्ति ईगो' को काव्य क्षेत्र में, उसके नग्न रूप में उपस्थित किया गया है।

मनु के मुख्यत: दो स्वरूप हैं- एक तो वह जिसका संबंध कर्म से है, समाज से है, सभ्यता के विकास से है और दूसरा वह जिसका संबंध हृदय की इच्छाओं तथा वासनाओं से है।

श्रद्धा की अवतारणा हेतु मूलक है। श्रद्धा मनु को पुरातन के मैले कुचैले वस्त्रों को उतार कर वास्तविक जीवन निर्माण की ओर उन्मुख करती है -

एक तुम यह विस्तृत भूखंड
प्रकृति वैभव से भरा अमंद
कर्म का भोग, भोग का कर्म
यही जड़ का चेतन आनंद

प्रसाद जी ने आधुनिक वास्तविकता के जीवन तथ्यों को उभारा और उन्हें इतने सशक्त रूप से प्रस्तुत किया कि वे बरबस हमारा ध्यान उन सच्चाइयों की तरफ खींच लेते हैं जो आज हमारे वर्तमान समाज में विद्यमान हैं।

कामायनी का प्रणयन करते समय प्रसाद जी के अंतर्मन में यह विचार अवश्य रहा होगा कि वे एक उदात्त और व्यापक जीवन दृष्टि इस काव्य के माध्यम से प्रस्तुत करें जो संघर्ष, स्वार्थ, प्रतारणा और संकीर्णता के युग में भूले भटके मानव को आलोक पथ दिखा सके। यदि व्यक्तिनिष्ठ भावना के आधार पर कोरा अध्यात्म पथ ही कवि को प्रशस्त करना होता तो वह युग चेतना की भूमिका उपस्थित न करके केवल पुरातन इतिवृत्त के आधार पर भारतीय दर्शनों की दृष्टि तक ही अपने को सीमित बनाए रखता। किंतु कवि के सामने विचरण करने के लिए व्यापक क्षितिज था।

आज का मानव - प्रसाद जी के देश का ही नहीं अपितु मानव मात्र-भी उस दिन के मनु के समान कामी, लोलुप एवं उछृंखल है। उसने श्रद्धा जैसी कोमल हृदयस्थ सुकोमल वृत्ति को बिसार रखा है एवं बुद्धिवाद के पाश में जकड़ता जा रहा है। इसका फल आज भी वही दिखाई पड़ रहा है जो सारस्वत में था - कलह संघर्ष, सुख शांति का विनाश, पग-पग पर हार। जब तक वह श्रद्धा विहीन रहेगा, जगत युद्ध विभीषिकाओं से सदैव संतप्त रहेगा।

इड़ा (बुद्धि) के संसर्ग से मानव ने सारस्वत नगर में नव-नवीन अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण किया, प्रकृति से शक्ति छीन ली पर उसका कल क्या हुआ? आज के बुद्धिवादी युग में भी प्रतिदिन शस्त्रों का आविष्कार होता जा रहा है और नित्य प्रति मानवता के कफन में एक कील ठुकती जा रही है। रहस्य सर्ग की निम्नलिखित पंक्तियाँ आज भी उतनी ही सत्य हैं जितनी मानवता के प्रथम चरण में थीं -

ज्ञान दूर, कुछ क्रिया भिन्न है
इच्छा क्यों पूरी हो मन की।
एक दूसरे से न मिल सके
यह विडंबना है जीवन की।

डॉ. नगेंद्र के अनुसार कामायनी का कार्य है भाव वृत्ति, कर्म वृत्ति तथा ज्ञान वृत्ति के सामंजस्य द्वारा समरसता और उसके फलस्वरूप आनंद की सिद्धि। कामायनी में पुरुष अहं, बुद्धि और मन की क्रमशः तमोगुणी, सतोगुणी और रजोगुणी प्रवृत्तियाँ हैं जो क्रिया, ज्ञान और इच्छा नामक तीनों शक्तियों से संबंधित हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मानव मन की इन तीन वृत्तियों में समरसता स्थापित होने पर वह पूर्णता की स्थिति में पहुँचकर अखंड आनंद की प्राप्ति उसी प्रकार करता है जिस प्रकार एक योगी समाधि की अवस्था में ब्रह्म की अनुभूति करता है।

कवि ने इस कार्य की सिद्धि के लिए त्रिलोकी के प्रतीक की उद्भावना कर अत्यंत कौशलपूर्वक उसे दिगंत विस्तार प्रदान किया है। आध्यात्मिक जीवन की सबसे बड़ी दुर्घटना है इच्छा, क्रिया और ज्ञान की विशृंखला। मानव चेतना के इतिहास में जब-जब इन तीनों में असामंजस्य हुआ है, जीवन, विकास अवरुद्ध हुआ है। संसार में अराजकता और अशांति फैल गई है। जीवन का अभिशाप यह है कि हमारे धर्म और संस्कृति की दिशा एक है, राजनीति की दूसरी और विज्ञान की तीसरी - क्रमशः भाव, क्रिया और ज्ञान के ये प्रतिरूप एक दूसरे से असंबद्ध हैं। इसका परिणाम है वर्तमान अशांति। मानवता के प्रति अटूट श्रद्धा रखते हुए जीवन की इन तीन प्रवृत्तियों में एकात्म स्थापित करना। ज्यों ही मानव कल्याण को लक्ष्य बनाकर हमारी संस्कृति, राजनीति और विज्ञान एकान्वित हो जाएँगे त्यों ही इस युग की विषम समस्याओं का समाधान हो जाएगा।

इस प्रकार कामायनी में वर्तमान के आधार फलक पर प्रसाद ने मानव जीवन की उस मूल समस्या का चिरंतन समाधान प्रस्तुत किया है जो सामयिक होकर भी शाश्वत है। इस महाकाव्य का कार्य सर्वथा उदात्त है। ऐसी गरिमा और ऐसा विरत आयाम और किस महाकाव्य के कार्य में है?

कामायनी के आनंद का स्वरूप जगत के भौतिक आनंद से भिन्न है। संसार में जो माधुर्य एवं क्षणिक अनुभूति का भाव है, वह तो वस्तुतः आनंद की छाया मात्र है। इस आनंद के प्राप्त होने पर वासना का आकर्षण और अतृप्ति समाप्त हो जाती है। उसका स्वरूप सात्विक है। इस आनंद की उपलब्धि होने पर मानव अभेद की स्थिति का अनुभव करता है। विश्व के वाह्य द्वंद्व जैसे- सुख-दुख और जड़-चेतन स्थितियाँ समरसता के कारण समाप्त हो जाती हैं। जगत के संपूर्ण दुखों की आत्यंतिक निवृत्ति हो जाती है।

प्रसाद जी ने आनंदवाद की स्थापना सृष्टि के भौतिक संघर्ष से मुक्ति प्राप्त करने के लिए की है। क्योंकि जगत की विडंबनाओं में फँसा हुआ मनुष्य जीवन के वास्तविक सुख को तब तक प्राप्त नहीं कर सकता जब तक वह आनंद के आध्यात्मिक स्वरूप को पहचान न ले।

इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि व्यक्ति पलायनवादी और निवृत्ति मार्गी हो जाए। आचार्य नंददुलारे बाजपेयी अपने 'आधुनिक काव्य' में लिखते हैं कि "प्रसाद का आनंदवाद सर्ववाद के सिद्धांत पर स्थित है ...सर्ववाद का लक्ष्य निवृत्ति द्वारा उतना सिद्ध नहीं होता जितना विश्व को कर्मस्थल मानने से सिद्ध होता है। यह कोरा कर्म नहीं समन्वयात्मक कर्म है।"

संसार मंगल और श्रेयमंडित है। उसे तिरस्कृत करना उचित नहीं। जिसे जगत की ज्वालाओं का मूल और अभिशाप समझा जाता है, वह ईश्वर के वरदान का रहस्य भी है। विश्वभूमा का मधुमय दान है।

प्रसाद जी के हृदय में जीवन के प्रति आस्था ही थी और वह आस्था ही श्रद्धा का रूप धारण करके हमारे समक्ष उपस्थित हुई है। श्रद्धा सर्ग में श्रद्धा मनु का वार्तालाप पराजित मनोवृत्ति के कुहासे का भेदन कर डालता है। उसका उपदेश प्रसाद के कोमल हृदय द्वारा राष्ट्र को दिया गया युग संदेश है। जिस प्रकार किसी

घातक रोग से पीड़ित रोगी को किसी कोमल वाणी, दुलार वात्सल्य और सहानुभूति की अपेक्षा होती है उसी प्रकार निराश हृदय को जीवन क्षेत्र में पुनः प्रेरित करने के लिए कांता सम्मित कोमल वाणी की अपेक्षा थी। इसलिए कवि ने मनु की निराशा और ग्लानि को दूर करने के लिए श्रद्धा का सृजन किया है किसी देव या ऋषि का नहीं।

प्रसाद जी ने कामायनी में घटनाओं और पात्रों की मनोवैज्ञानिकता पर विशेष बल दिया है। यदि वे वेदों, पुराणों एवं इतिहास में आए हुए मनु के इतिवृत्त को उसी क्रम में रख देते तो महाकाव्य एकदेशीय तथा एककालीन हो जाता। किंतु घटनाओं एवं पात्रों को मनोविज्ञान की सरिता में निमज्जित करके उन्होंने सार्वभौमिकता, सार्वकालीनता एवं सनातन सत्य ला दिया है।

प्रसाद जी की प्रदीर्घ साधना का फल है 'कामायनी'। उसमें उनका जीवन चिंतन निखर उठा है। एक शाश्वत कृति वह होती है जो प्रत्येक युग से सामंजस्य स्थापित करती है। 'कामायनी' इस रूप में खरी उतरती है।

– सहायक निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली-110066

❑❑❑

तकनीकी शिक्षा में भाषा की भूमिका

डॉ. जय कौशल

जब भी हम शिक्षा की बात करते हैं, इस शिक्षा के साथ हमारे सामने दो-तीन शब्द और आ खड़े होते हैं, वे हैं- शिक्षण अधिगम यानी अनुशासन विशेष या ज्ञान विशेष की लर्निंग, सीखना-समझना। अधिगम को शिक्षा मनोविज्ञान का दिल कहा गया है क्योंकि शिक्षा का सर्व प्रथम उद्देश्य ही सीखना है। हम सभी जानते हैं, मनुष्य का जीवन जन्म से लेकर मृत्यु तक सीखना ही है। घर, स्कूल एवं अपने आसपास के वातावरण से मनुष्य कुछ ना कुछ सीखता ही रहता है और अपना सर्वपक्षीय विकास करता है। इन दोनों के बीच में जो शब्द या पद खड़ा है, वो है- शिक्षण माध्यम। यानी किसी भी प्रकार की शिक्षा के लिए, शिक्षण-अधिगम के लिए माध्यम सबसे जरूरी उपकरण है। और माध्यम क्या होता है, जिसमें हम संप्रेषण करते हैं यानी भाषा। किसी भी अनुशासन की शिक्षा की पूरी प्रक्रिया में हमारे सामने भाषा ही वह जरूरी टूल है, जिसके आधार पर यह पूरी व्यवस्था खड़ी है। हम किस भाषा में विद्यार्थियों का शिक्षण कर रहे हैं, इससे तय होगा कि उस समाज, उस देश के लोगों का सर्वपक्षीय विकास किस रूप में हो रहा है। हममें से कुछ लोग अक्सर यह तर्क देते हैं कि विज्ञान और तकनीकी तो पढ़े ही अंग्रेजी में जाते हैं, भारतीय भाषाओं में वह क्षमता कहाँ। इसका नुकसान यह होता है कि हम सब न केवल अपनी भाषाओं को हेय समझने लगते हैं, वरन् विज्ञान एवं तकनीकी को कठिन मानने लगते हैं और दो स्तरों पर जूझते हैं, पहले तो शिक्षण माध्यम यानी भाषा से जूझते हैं, दूसरे विज्ञान और तकनीकी की अवधारणाओं या सिद्धांतों से जूझते हैं। भाषा से जूझते-जूझते 'कांसेप्ट' उड़ जाता है, या तो इतना दुरूह हो जाता है कि समझ में नहीं आ पाता, फलतः हम विज्ञान और तकनीक में पिछड़ते हैं और हम पिछड़ते हैं तो अंततः देश पिछड़ता है।

भारत सरकार की एक प्रमुख पत्रिका योजना (सितंबर 2009, पृष्ठ संख्या 39) में प्रकाशित एक रिपोर्ट का कहना है कि, "नेशनल यूनिवर्सिटी फॉर एजुकेशन प्लानिंग एंड एडमिनिस्ट्रेशन (एन. यू. ई. पी. ए.) के अनुसार अब अधिकाधिक भारतीय अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों में पढ़ाना पसंद करते हैं। वर्ष 2003-06 की अवधि के दौरान शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेजी भाषा का स्थान तीसरा हो गया है। इस अवधि में राष्ट्रीय स्तर पर अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों में नामांकन संख्या में 74% की वृद्धि दर्ज की गई है, अर्थात् वर्ष 2003 में यह संख्या 54.7 लाख थी, जो वर्ष 2006 में बढ़कर 95.1 लाख हो गई। अधिकांश दक्षिण भारतीय राज्यों में अंग्रेजी की वृद्धि दर अधिक है, जो इन तीन वर्षों में हुई वृद्धि का लगभग 60% है। पूर्वोत्तर राज्यों में भी अंग्रेजी माध्यम में नामांकन सबसे अधिक अर्थात् 90% हैं।"

इसके लिए जरूरी है कि शिक्षा का माध्यम अपनी भारतीय भाषाएँ हों। मूल लेखन अपनी भाषाओं में हो। लेकिन उनमें जो तकनीकी पारिभाषिक शब्द, प्रयोजनमूलक हिंदी में कहूँ तो प्रयुक्ति हैं, उनमें एकरूपता

होनी चाहिए। उदाहरण के लिए हिंदी और मराठी में कुछ शब्द देखें, अटम को हिंदी में परमाणु और मराठी में अणु कहते हैं, मॉलिक्यूल को हिंदी में अणु तो मराठी में रेणु कहते हैं। उत्तर-प्रदेश के लोग अपने सहोदर को भाई कहते हैं जहाँ भाई के प्रति प्रेम भाव अर्पित किया जाता है वहीं महाराष्ट्र के मुंबई जैसे शहर में इसी शब्द का अनर्थ होकर इसके विपरीत भाई गुंडे एवं मवालियों के लिए प्रयुक्त होता है। इसमें एकरूपता जरूरी है, वरना भारतीय भाषाओं में आपस में ही उलझन शुरू हो जाएगी। हमें अटपटेपन से बचना होगा और ये भी सावधानी रखनी होगी कि जो अनुवाद करें, वह इस टारगेट टेक्स्ट यानी जिस भाषा में हम अनुवाद कर रहें हों, उसके अनुकूल हो। शब्द कोई भी क्लिष्ट या कठिन नहीं होता, बस उसे लगातार उपयोग में लाने और मूल भाषा के अर्थ से बनाने और समझाने की जरूरत है। मुझे दुख होता है जब देखता हूँ कि विज्ञान-सम्मत लिखने के फेर में कुछ साहित्यकार साहित्य के मर्म को ही भुला देते हैं। ऐसे में यदि उनका विज्ञान-बोध भी आधा-अधूरा हो तो विज्ञान लेखन भी कथा या गल्प की श्रेणी में आ जाएगा। बे-सिर-पैर की कल्पना बन जाती है। कुछ कथित विज्ञान कथाओं में दिखाया जाता है कि नायक या प्रतिनायक के हाथों में ऐसी टार्च है जिससे नीली रोशनी निकलती है। वह रोशनी धातु की मोटी पर्त को भी पिघला देती है। 'नीली रोशनी' संबोधन 'पराबैंगनी तरंगों' की तर्ज पर गढ़ा गया है। वे अतिलघु तरंगदैर्ध्य की अदृश्य किरणें होती हैं, जिन्हें स्पेक्ट्रम पैमाने पर नीले अथवा बैंगनी रंग से निचली ओर दर्शाया जाता है। दृश्य बैंगनी प्रकाश की किरणों के तरंगदैर्ध्य से भी अतिलघु होने के उन्हें 'अल्ट्रावायलेट' कहा जाता है। इस तथ्य से अनजान हमारे विज्ञान लेखक धड़ल्ले से नीली रोशनी शब्द का प्रयोग भेदक किरणों के लिए करते हैं। मेरी दृष्टि में नीली किरणें फेकने वाली टार्च और जादू के बटुए या जादुई छड़ी में उस समय तक कोई अंतर नहीं है, जब तक विज्ञान लेखक अपनी रचना में वर्णित वैज्ञानिक सत्य की ओर स्पष्ट संकेत नहीं करता। आप कहेंगे कि इससे रचना बोझिल हो जाएगी, पठनीयता बाधित होगी, तो मैं कहना चाहूँगा कि पठनीयता और विज्ञान की कसौटी दोनों का निर्वाह करना ही विज्ञान लेखक की सबसे बड़ी चुनौती होती है। संस्कृत और भारतीय भाषाओं में ऐसे बहुत सारे शब्द हैं, जिनका उपयोग इस रूप में किया जा सकता है। पारिभाषिक शब्दों का निर्माण सृजन, ग्रहण, संचयन एवं अनुकूलन जैसी चार प्रक्रियाओं से गुजर कर हुआ है। डॉ. रघुवीर ने प्रत्येक अंग्रेजी शब्द के लिए संस्कृत व्याकरण के अनुसार शब्द गढ़े। उन्होंने अरबी, फारसी, देशज शब्दों के स्थान पर संस्कृत का आधार लेकर नए शब्दों का निर्माण किया। संस्कृत में अति प्राचीन काल से पारिभाषिक शब्दों के निर्माण और उपयोग का प्रचलन रहा है। शब्दों से नए शब्द बनाने आसान और तर्कसंगत होंगे, जैसे 'कोशिका' से कोशिकीय, कोशिकाद्रव्य, बहुकोशीय, एककोशीय, कोशिकाक्षय आदि। कोशिका को समझने से बाकी अन्य को समझना आसान हो जाता है। एक चीज का ख्याल रखना है, हमें सही शब्द लिखने भी चाहिए- एक शब्द है 'अनुदैर्ध्य'- अंग्रेजी के 'लांगिच्युडिनल' शब्द का अनुवाद है। सही अनुवाद है- दीर्घ से दैर्घ्य और फिर अनुदैर्घ्य। हिंदी क्षेत्र में अधिकतर छात्र इसे अनुदैर्ध्य पढ़ते हैं। 'घ' और 'ध' से पूरी दुनिया बदल जाती है। ऐसे शब्द का क्या मतलब, जिसे छात्र सही पढ़ तक न पाएँ!

तकनीकी क्षेत्र में हिंदी के प्रयोग के लिए अनुवाद के साथ-साथ मौलिक रूप से तकनीकी पुस्तकें हिंदी में लिखी जाए तो ज्यादा उपयोगी साबित होंगी। गुणाकर मुळे जैसे नाम इसके बड़े उदाहरण हैं। देश में मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने तकनीकी शिक्षण के लिए राष्ट्रीय तकनीकी शिक्षक प्रशिक्षण एवं अनुसंधान केंद्रों की स्थापना की है। वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग है। इन केंद्रों के माध्यम से तकनीकी शिक्षा में हिंदी के प्रयोग के लिए कार्य योजना बनाई जा सकती हैं। इस कार्य योजना के तहत भारतीय भाषाओं में शब्दकोश तैयार करने, पाठ्यक्रम तैयार करने और विद्यार्थियों के लिए पठन सामग्री का कार्य बढ़ेगा।

अगर हम अपनी भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाएँ, एकरूपी तकनीकी शब्दावली के साथ मूल भाषाओं में विज्ञान और तकनीकी विषयों की पाठ्य-पुस्तकें लिखें, अंग्रेजी व अन्य विदेशी भाषाओं के आविष्कारों और वैज्ञानिक सिद्धांतों और अनुप्रयोगों का मूल भाषाओं के अर्थ को ध्यान में रखते हुए अनुवाद कर अपनाएँ,

अपनी भाषाओं में वैज्ञानिक चिंतन को बढ़ावा दें तो निश्चित रूप से शिक्षण और अधिगम सहज और बोधगम्य हो जाएगा।

प्रख्यात वैज्ञानिक डॉ. आत्माराम के शब्दों में निहित शिवम् संदेश माननीय है- हिंदी में लिखते रहें, तकनीकी शब्दों का निर्माण और उनका प्रयोग होता जाएगा। हिंदी विज्ञान लेखन में तकनीकी शब्दों को आड़े नहीं आना चाहिए। कहा भी गया है-

देश की धमनी और शिराएँ भारतीय भाषाएँ हैं।
अनुदिन पुष्पित और पल्लवित शुभ नूतन आशाएँ हैं।
अपनी बोली-अपनी भाषा में फैलेगा ज्ञान-प्रकाश।
विज्ञान और प्रौद्योगिकी सरल बन, छू लेंगे मन का आकाश।

– सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, त्रिपुरा विश्वविद्यालय, अगरतला, त्रिपुरा

❑❑❑

संपर्क भाषा हिंदी बनाम राजभाषा हिंदी

रमेश चंद्र

किसी देश की भौगोलिक परिस्थितियों को देखते हुए संपर्क भाषा और राजभाषा के एक अथवा अलग-अलग रूप हो सकते हैं। भारत जैसे विशाल देश में अनेकता के अनेक तत्व होते हुए भी यहाँ संपर्क भाषा और राजभाषा के रूप में अधिकतर हिंदी का ही प्रयोग होता है। "संपर्क भाषा देश के व्यक्तियों के मध्य परस्पर अभिव्यक्ति का स्वैच्छिक माध्यम होती है, जबकि राजभाषा सरकार और जनता के मध्य अभिव्यक्ति का औपचारिक रूप से अंगीकृत माध्यम होती है।" इससे यह बात स्पष्ट होती है कि संपर्क भाषा को देश की जनता का संबल प्राप्त होता है, जबकि राजभाषा को सरकारी संरक्षण प्राप्त होता है। इससे हम यह नहीं मान सकते कि संपर्क भाषा हिंदी राजभाषा हिंदी की तुलना में कमजोर है। भाषा की प्रकृति पर विचार करें तो यह बात हमारे सामने आएगी कि वही भाषा देश की अभिव्यक्ति का माध्यम होती है, जिसे वह देश स्वैच्छिक रूप से स्वीकार करे और जो उसके व्यवहार में आए। व्यवहार में आने वाली भाषा ही जीवंत होती है। परंतु आज के युग में भाषा का केवल वाचिक रूप भी होना आवश्यक है। दोनों प्रकार की भाषाओं में इन परस्पर विरोधी पहलुओं को देखते हुए इनकी सफलता या असफलता का विश्लेषण बहुत ही सूक्ष्म रूप से अपेक्षित है और एक संतुलित वैचारिक मंथन के बिना किसी निर्णय पर पहुँचना ग्रहणीय नहीं।

ऐसे मंथन के समय हम देख सकते हैं कि संपर्क भाषा केवल संपर्क के प्रयोजन को हल करती है, वह केवल तात्क्षणिक होती है और तत्क्षण उद्‌भूत होती है। भिन्न-भिन्न प्रयोजनों के लिए उसका रूप भिन्न हो सकता हैं वह कई भाषाओं का मिश्रण भी हो सकती है। दो या अधिक व्यक्ति जब अचानक या किसी एक ही कारण से मिलते हैं, तो उनके बीच संपर्क भाषा का जो रूप अभिव्यक्ति का बेहतर माध्यम बन सकता है, उसी को अपनाया जाता है। ऐसे रूप के अंगीकरण का निर्णय तत्क्षण होता है और वह केवल उन व्यक्तियों के बिछुड़ने तक ही कायम रहता है। उन दोनों के अलग होते ही अन्य व्यक्तियों के साथ अन्य प्रकार की संपर्क भाषा प्रयोग की जाती है। हिंदी के जिस रूप का प्रयोग करता है, उसी रूप का प्रयोग वह सिक्किम या फ्रांस के व्यक्ति के साथ नहीं कर सकता। इस प्रकार संपर्क भाषा केवल अनौपचारिक होती है और उसके प्रयोग का कोई रूप निश्चित नहीं होता। दूसरी ओर कोई भाषा राजभाषा तब बनती है जब वह एक लंबे प्रयोग, प्रचार और प्रसार के बाद मानकीकरण को प्राप्त हो चुकी होती है और उसका रूप निश्चित हो चुका होता है। उसका वह रूप सदा सर्वदा के लिए समान रहता है। इस प्रकार राजभाषा एक दीर्घ प्रक्रिया का परिणाम होती है और औपचारिक रूप से स्वीकृत भाषा होती है। संपर्क भाषा में केवल शब्दों से भी काम चल सकता है, उसके लिए व्याकरण-सम्मत होना आवश्यक नहीं, क्योंकि वह केवल वाचिक अभिव्यक्ति का माध्यम होती है और उसके प्रयोग के समय इशारों, आंगिक चेष्टाओं आदि का भी सहारा लिया जाता है, परंतु राजभाषा अपने आप में एक पूर्ण भाषा होती है, वह किसी भी प्रकार की अभिव्यक्ति में पूर्ण रूप से सक्षम होती है। वह इशारों, आंगिक

चेष्टाओं आदि की मोहताज नहीं होती। वह लिखित और वाचिक दोनों प्रकार की अभिव्यक्तियों का माध्यम समान सुगमता से बन सकती है। वह कई-कई भाषाओं का मिश्रण भी नहीं होती, बल्कि उसका अपना एक स्थायी रूप होता है। वह संपर्क भाषा की तरह व्यक्ति-व्यक्ति पर निर्भर नहीं करती। संपर्क भाषा हिंदी अभिव्यक्ति का वैयक्तिक प्रयास है, जबकि राजभाषा हिंदी सामाजिक, राजनैतिक, प्रशासनिक और हर प्रकार के क्षेत्रों के प्रयास का परिणाम है और उसे सबका संरक्षण प्राप्त है। कोई भाषा राजभाषा तभी बनती है, जब वह किसी देश के सर्वाधिक क्षेत्र में बोली, समझी, लिखी और पढ़ी जानी लगे, जब वह हर दृष्टि से मानक स्वरूप प्राप्त कर ले तथा वह संचारगत, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक और प्रौद्योगिक सभी प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति भली-भाँति करने में सक्षम हो जाए। इस प्रकार हिंदी के राजभाषा बनने से इसका दर्जा सबसे बड़ा है, वह दोनों के बीच एक कड़ी का काम करती है। देश के हर क्षेत्र में इसके प्रयोग को प्रमुखता है। यह एक अंगीकृत और संरक्षित भाषा है। सरकार तथा जनता इसी के विकास का प्रसार करते हैं। यही अंतरराष्ट्रीय संबंधों का सशक्त माध्यम बन सकती है, जबकि संपर्क भाषा हिंदी यह काम नहीं कर सकती। यदि हम हिंदी के राजभाषा के रूप में चयन के कारणों और सहायक तत्वों पर नजर डालें तो सबसे पहले यह स्पष्ट रूप से देखने में आता है कि राजभाषा हिंदी संस्कृत से उपजी हुई देश की पुरानी भाषाओं में से एक है। इस कारण इसकी दीर्घ साहित्यिक परंपरा, विशाल साहित्य और शब्द-भंडार है। साथ ही इसकी शब्द-सृजन क्षमता, शब्द-ग्रहणशीलता और प्रयोग क्षेत्र भी व्यापक हैं। यह सहज और सरल है तथा विकासशील है।

राजभाषा के रूप में हिंदी ने देश को अत्यधिक योगदान दिया है। यह योगदान हम सबके सामने भी है। दूसरी ओर संपर्क भाषा हिंदी को कोई संरक्षण प्राप्त नहीं। उसका प्रयोग तो होता है, परंतु वह प्रचार और प्रसारपरक नहीं है, न ही कभी कोई उसके किसी रूप का प्रचार करता है, जिसके कारण उसका प्रसार नहीं होता। इस पहलू पर यदि राजभाषा हिंदी को परखें तो उसका नियोजित रूप से प्रयोग, प्रचार और प्रसार होता है। संपर्क भाषा हिंदी प्रयुक्तिपरक नहीं है अर्थात् इसमें किसी प्रयुक्ति विशेष की आवश्यकताओं के अनुसार अलग और विशेषीकृत शब्दावली नहीं है, जबकि राजभाषा हिंदी पूरी तरह प्रयुक्तिपरक है। इसका हर प्रयुक्ति के लिए भिन्न परंतु मानक रूप निर्धारित है और इसके उस प्रयोग के व्यवहार तथा अर्थ- बोध में कोई अवरोध पैदा नहीं होता। इस कारण से संपर्क भाषा हिंदी विकास की कोई दिशा निश्चित नहीं करती, परंतु राजभाषा हिंदी ने अपने माध्यम से देश को विकास के नए सोपानों तक पहुँचने में सहायता की है। यहाँ हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि किसी भी देश का किसी भी तरह का कोई विकास समुचित रूप से उन्नत भाषा के बिना नहीं हो सकता, क्योंकि भाषा उस विकास के लिए अनुसंधान, प्रयोग और प्रसार का माध्यम होती है, उसके बिना विकास की कोई कल्पना नहीं की जा सकती। प्रागैतिहासिक काल से अब तब जो भी विकास हुआ है, वह भाषा के कारण ही संभव हो सका है। यह स्मरण कराने की आवश्यकता नहीं है कि प्रागैतिहासिक काल में जब कोई समुचित रूप से उन्नत भाषा नहीं थी तब देश का समुचित विकास भी नहीं हुआ था। इसलिए राजभाषा हिंदी देश के विकास का हेतु और माध्यम दोनो है। संपर्क भाषा हिंदी को कभी लिखित रूप नहीं दिया जाता, इस प्रकार उसके और फलस्वरूप उसके माध्यम से देश के विकास की कोई सुनियोजित प्रक्रिया विकसित नहीं हो सकती। राजभाषा हिंदी के लिए विश्व की सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि देवनागरी का प्रयोग किए जाने के बावजूद संपर्क भाषा हिंदी के लिए उसका कोई लाभ नहीं उठाया जाता। इस प्रकार उसका प्रयोग और महत्व तात्क्षणिक बनकर रह जाता है।

भाषा समाज और संस्कृति का अभिन्न अंग होती है, परंतु संपर्क भाषा हिंदी का किसी समाज विशेष में प्रयोग नहीं होता। उसका प्रयोग दो समाजों के व्यक्तियों के मध्य ही होता है। दूसरी ओर राजभाषा हिंदी हमारे सभी समाजों का अभिन्न अंग बनी हुई है।

यदि भाषा की ग्रहणीयता के तत्वों की दृष्टि से संपर्क भाषा हिंदी और राजभाषा हिंदी को परखें, तो इस बात से सब सहमत होंगे कि आधुनिक युग में किसी भी भाषा की ग्रहणीयता वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखी जाती है। भाषा की ग्रहणीयता में अन्य तत्वों के साथ-साथ उसकी राष्ट्रीय गरिमा के लिए उपयुक्तता, संचार व्यवस्था के

लिए उपयुक्तता, अन्य भाषाओं से पूर्वापर संबंध, तकनीकी कार्यों के लिए उपयुक्तता, विकास के लिए उपयुक्तता, अंतरराष्ट्रीय महत्व, उसकी लिपि, शब्द- ग्रहणशीलता, राजभाषा के रूप में उसके इतिहास आदि शामिल हैं। ये सभी तत्व उसके प्रौद्योगिकी की भाषा के रूप में अंगीकरण के लिए आवश्यक होने की ओर ही संकेत करते हैं। इसलिए पहले चर्चित तत्वों तथा इन तत्वों के संकेत को देखते हुए यह स्पष्ट है कि प्रौद्योगिक विकास के अनुकूल राजभाषा हिंदी ही है।

अंत में मेरी यह धारणा बनती है कि हमें स्वयं हिंदी की ही संपर्क भाषा और राजभाषा के रूप में सफलता की तुलना नहीं करनी चाहिए, क्योंकि हिंदी के प्रयोग और प्रसार का यह बहुत संवेदनशील समय है और ऐसे समय में देश को दोनों की ही आवश्यकता है। वस्तुतः संपर्क भाषा हिंदी और राजभाषा हिंदी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, क्योंकि एक उसका वाचिक रूप है और दूसरा लिखित। ये दोनों रूप एक-दूसरे के पूरक है। और कोई भी भाषा इन दोनों रूपों के बिना कभी पूर्ण नहीं होती। संपर्क भाषा के रूप में जहाँ हिंदी देश के लोगों को स्वैच्छिक रूप से परस्पर जोड़कर राष्ट्रीयता के मूल को सींचती है और उसे दृढ़ करती है, वहीं राजभाषा के रूप में वह सरकार और जनता के मध्य संबंध स्थापित करने, देश के विकास में सहायक बनने और अंतरराष्ट्रीय पहचान बनाने में सहायक होती है। इसलिए हमें दोनों का महत्व समान रूप से स्वीकारना चाहिए।

– 46/22, गांधी नगर, पिक इंडिया के पीछे, गली नं. 12, पटौदी रोड, गुरुग्राम-122001

❑❑❑

उच्छृंखल प्रयोगों से मानकी स्वरूप खोती हिंदी

रामभवन सिंह ठाकुर विद्यावाचस्पति

मानव को अपने मनोभावों को व्यक्त करने के लिए जिस सहज, सरल माध्यम की आवश्यकता होती है, उसे भाषा की संज्ञा प्रदान की जाती है। प्रत्येक व्यक्ति अपने भावों को व्यक्त करने हेतु किसी न किसी भाषा का सहारा लेता है। भाषा के न रहने पर न तो किसी सामाजिक परिवेश की कल्पना की जा सकती है और न सामाजिक एवं राष्ट्रीय विकास की। साहित्य, विज्ञान, कला, दर्शन आदि सभी का मूलभूत आधार भाषा ही है।

आज की तेज रफ्तार पकड़ती दुनिया में आधुनिक संचार माध्यमों के द्वारा संसार के भिन्न-भिन्न भू-भागों में रह रहे व्यक्तियों के मध्य की दूरियाँ दिन-प्रतिदिन घटती जा रही हैं। परस्पर संवादों में वैविध्यपूर्ण प्रयोग, बहुलता की आवृतियाँ बढ़ी हैं। प्रायः कंप्यूटर चैटिंग अथवा मोबाइल पर एस. एम. एस. करते समय प्रयोक्ता संकेताक्षरों के प्रयोग से सजग नहीं रहते हैं। शैक्षिक कार्यों में भी छात्रगणों के मध्य ऐसे मनमाने प्रयोगों का प्रचलन बढ़ा है, ऐसे उच्छृंखल प्रयोगों से भाषा के मानक रूप को ठेस पहुँचती है। इस प्रवृत्ति से हमें बचना होगा। इस समस्या से हिंदी ही नहीं, संसार की अनेक भाषाएँ जूझ रही हैं। अनेक देशों की सरकारों ने इस समस्या से निपटने के प्रयास प्रारंभ कर दिए है। हमें भी हमारी राष्ट्रभाषा, राजभाषा, मातृभाषा हिंदी के मानकी स्वरूप पर ध्यान देना चाहिए और उसके सुधार के प्रयास करना चाहिए।

आज मीडिया, मोबाइल, टी. वी. जिस प्रकार भाषा का स्वरूप बिगाड़ रहे हैं, यह एक विचारणीय समस्या है, जिस पर गंभीरता से विचार करना जरूरी है। कुछ लोगों का कहना है कि हिंदी का मानक रूप भावनात्मक अधिक, वास्तविक कम है। हिंदी ध्वन्यात्मक भाषा है। हिंदी की वर्णमाला स्वर, व्यंजन तथा बारहखड़ी को याद करने के बाद हिंदी के कठिन से कठिन शब्द को भी आसानी से लिखा-पढ़ा जा सकता है। हिंदी में हम जैसा बोलते हैं, वैसा ही लिखते हैं।

हिंदी का आधुनिक स्वरूप भी, जिसे उसका मानकरूप कहा जाता है, लगभग एक हजार वर्षों की प्रक्रिया का परिणाम है। डॉ. विश्वनाथ प्रसाद का कहना है- "विकास के साथ-साथ भाषा में व्यापकता एवं एकरूपता बनी रहती है।"

मानक हिंदी को सर्वमान्य रूप से शिक्षित, शिष्ट-समुदाय द्वारा प्रयोग में लाया जाता है। यही साहित्य, शिक्षा, ज्ञान-विज्ञान, कला और संस्कृति की विभिन्न विधाओं में अभिव्यक्ति आदान-प्रदान तथा संप्रेषण का माध्यम है। ये सब इसके बहिरंग आयाम हैं। अंतरंग आयाम तो मानक हिंदी की एकरूपता है, जो ध्वनि शब्द और वाक्य स्तर पर कुछ विशेष और सर्वत्र सामान्यतः ग्रहीत हैं तथा व्याकरणबद्धता के कारण सहजता, सुबोधता लिए हुए हैं। मानक भाषा के लिए आवश्यक गुण हैं -

(1) बोधगम्यता - समझ में आना।
(2) केंद्रोन्मुखी प्रवृत्ति - अन्य बोली - भाषाओं के साथ एकरूपता बनाए रखना।
(3) प्रयोगशीलता - प्रयोक्ताओं की संख्या पर्याप्त हो।

(4) जातीय समानता - एक-दूसरे के निकट आने में सहायक हो।

(5) व्याकरणिक समता - व्याकरण के द्वारा ही हम भाषा की शुद्धता निर्धारित कर सकते हैं।

(6) एकरूपता - मानक भाषा में एकरूपता नितांत आवश्यक है।

(7) जीवंतता - जो भाषा गतिशील है, वही जीवंत है। जीवंत भाषा का ही सदैव विकास होता रहता है। जो भाषा रूढ़ हो जाती है, वह मृत प्रायः हो जाती है, संस्कृत, लैटिन, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश भाषाएँ सामान्य प्रयोग में न होने से जीवंत नहीं मानी जाती हैं।

अतः स्पष्ट रूप से मानकभाषा एक विशेषीकृत रूप है। हिंदी भाषा के इसी मानक रूप में साहित्य, विज्ञान, तकनीकी एवं मानविकी संदर्भ- कृतियाँ निर्मित हो रही हैं। देश की राष्ट्रभाषा के रूप में यही स्वरूप दृष्टिगत हो रहा है।

हिंदी की यह भूमिका व्यावहारिक, प्रयोजनमुखी चेतना से जुड़ी हुई है। प्रयोजन मूलक बोली-भाषा नदी के उस प्रवाहमान जल-सी होती है, जो अपना मार्ग स्वयं बनाती हुई निरंतर गतिशील बनी रहती है, परंतु यह सब भाषा के प्रयोगकर्ताओं पर निर्भर करता है।

बड़े खेद की बात है कि हिंदी का सामान्य विद्यार्थी आज भाषा की शुद्धता पर ध्यान नहीं देता है और अध्यापक भी इसकी चिंता नहीं करते हैं। उच्च शिक्षा अध्ययन करने वाले विद्यार्थी एक पन्ना भी शुद्ध हिंदी नहीं लिख पाते हैं। हिंदी के विद्यार्थी की अपेक्षा अंग्रेजी का विद्यार्थी अधिक सावधान रहता है, क्योंकि वह जानता है कि अंग्रेजी कठिन है, सीखने और अभ्यास करने से ही आएगी, किंतु भारत के बहुत बड़े भू-भाग के हिंदी भाषी विद्यार्थी समझते है कि हिंदी तो हमारी मातृभाषा है, हम इसे वर्षों से बोलते चले आ रहें हैं, इसलिए हमें कुछ सीखना ही नहीं है। जिनकी मातृभाषा हिंदी नहीं है, वे कुछ अधिक सावधान रहते हैं, किंतु वे अपनी-अपनी मातृभाषा के प्रयोगों से पिंड नहीं छुड़ा पाते हैं। हमें अपने मन से यह मिथ्या धारणा हटा देनी होगी कि हिंदी हमारी मातृभाषा हैं, हमें इसमें कोई दिक्कत नहीं है।

प्रिय बंधुओं! हिंदी तो सामान्य है, यह कोई क्षेत्रीय बोली नहीं है। यह विद्वानों की भाषा है, शिक्षित वर्ग की भाषा है। प्रायः देखा जाता है कि- पंजाब के लोग अपना पंजाबीपन, बंगाल के बंगालीपन, बिहार के बिहारीपन, गुजरात के गुजरातीपन और दूसरे लोग अपने-अपने व्यवहार हिंदी में ले आते हैं। ऐसा स्वाभाविक है, किंतु वांछनीय नहीं है। इस तरह प्रादेशिकता के प्रभाव से हिंदी का कोई आदर्शनिष्ठ मान्य रूप नहीं रह जाएगा, तब यह सामान्य भाषा भी नहीं बन पाएगी।

भाषा से ही आदमी की शिक्षा, सभ्यता और कुलीनता का परिचय मिलता है। खेद तो इस बात का है कि हिंदी के विद्यार्थयों के पास न तो अच्छा-सा शब्द कोश रहता है, और न व्याकरण-ग्रंथ। वह न शब्द भंडार बढ़ाने की चिंता करता है और न अपने शब्दों के शुद्ध प्रयोग पर विशेष ध्यान देता है। उसे न अच्छे वक्ताओं के उच्चारण के अनुकरण की आदत है और न विशिष्ट लेखकों की कृतियों को पढ़कर अपनी भाषा के सामान्य और मानक रूप की अभिरूचि है। आजकल पाठकों की भी कमी है। स्मरण रहे कि शुद्ध भाषा के लिए शुद्ध दर्शन, शुद्ध श्रवण होगा तो शुद्ध उच्चारण और शुद्ध लेखन अपने-आप आने लगेगा। भाषा सुधार के लिए इन्हीं सब बातों पर गहन मंथन करने एवं सुधार के उपाय करने की आवश्यकता है।

हिंदी भाषा की शुद्धता शाब्दिक रूप से उच्चारण एवं वर्तनी की शुद्धता पर निर्भर करती है।

(1) स्वर या मात्रा की अशुद्धियाँ-

अशुद्ध		शुद्ध
अगामी	-	आगामी
अहार	-	आहार
विरहणी	-	विरहिणी
पहिला	-	पहला
वापिस	-	वापस
दिवाली	-	दीवाली
महिना	-	महीना
साधू	-	साधु
वधु	-	वधू
गुरू	-	गुरु
रुप	-	रूप
प्रथक	-	पृथक

पैत्रिक	–	पैतृक
श्रृंगार	–	शृंगार
इतिहासिक	–	ऐतिहासिक
लिखायी	–	लिखाई
नयी	–	नई
स्थाई	–	स्थायी
त्यौहार	–	त्योहार

(2) अनुस्वार और अनुनासिक की अशुद्धियाँ-

जैसे - हंस - हँस

अंधेरा - अँधेरा

हिंदी में पंचमाक्षर (ङ् ञ् ण् न् म्) के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग भी शुद्ध माना जाता है।

जैसे-

कंठ, झंडा, दंड, डंडा, घंटा आदि।

कुछ शब्द ऐसे होते हैं, जिनमें अनुस्वार नहीं लग सकता।

जैसे - जन्म

तद्भव और विदेशी शब्दों में उच्चारण के अनुसार पंचमाक्षर का प्रयोग करना पड़ता है। जैसे-

चिह्न, शङ्ख, कुण्डली, सम्बन्ध आदि।

(3) व्यंजन की अशुद्धियाँ-

(क) ख, छ, ठ, फ, और घ, झ, ढ, ध, भ (महाप्राण) ध्वनियों को कई प्रदेशों के विद्यार्थी ठीक तरह से नहीं बोल पाते-

जैसे-

अशुद्ध		शुद्ध
खीजना	–	खीझना
भूक	–	भूख
धंदा	–	धंधा
धोका	–	धोखा

(ख) स, श, ष के भेद को न समझने पर भी अशुद्धियाँ होती हैं।

जैसे

अशुद्ध		शुद्ध
प्रसंशा	–	प्रशंसा
भाशा	–	भाषा
श्रोत	–	स्रोत
विषेश	–	विशेष

(ग) कुछ शब्दों के अंत में हलंत होना चाहिए-

जैसे - जगत्, महान्, श्रीमान्, भगवान् आदि

टीप : जहाँ हल व्यंजन का स्थान पूर्ण व्यंजन ले रहा हो, वहाँ व्यंजन को हलंत न बनाया जाए। जैसे- पंचम, नवम, पतित, शत-शत, पृथकं, सम्यक आदि।

टीप- हलंत के कारण अर्थ भेद हो जाता है-

जैसे :

जगत् (संसार) - जगत (कुँआ का चौतरा)

सन् (साल) - सन (पटुआ)

(घ) र के साथ संयोग -

जैसे -

अशुद्ध		शुद्ध
नमरता	–	नम्रता
पतर	–	पत्र
परणाम	–	प्रणाम
राष्ट्र	–	राष्ट्र
परिर्वतन	–	परिवर्तन
आर्शीवाद	–	आशीर्वाद

(ङ) शुद्ध उच्चारण करने से और शब्द की बनावट को समझने से पता चलता है कि द्वित्व (अर्ध वर्ण) कहाँ होना चाहिए और कहाँ नहीं। जैसे-

अशुद्ध		शुद्ध
उलंघन	–	उल्लंघन
उलास	–	उल्लास
महत्व	–	महत्व
उलेख	–	उल्लेख
उदंड	–	उद्दंड

(च) संस्कृत और हिंदी में महाप्राण ध्वनियों का द्वित्व अल्प-प्राण और महाप्राण के योग से लिखा जाता है।

जैसे-

मक्खन, अच्छा, इच्छा, मट्ठा, ऋद्धि-सिद्धि आदि।

(छ) संयुक्ताक्षरों की अशुद्धियाँ-

जैसे -

अशुद्ध		शुद्ध
श्रृद्धा	–	श्रृद्धा
श्रृंगार	–	शृंगार
तिरविध	–	त्रिविध
ग्यात	–	ज्ञात

छुद्र	–	क्षुद्र
डेढ	–	डेढ़
विध्या	–	विद्या
ब्रम्ह	–	ब्रह्म

(4) विसर्ग की अशुद्धियाँ –

जैसे –

अशुद्ध		शुद्ध
दुख	–	दु:ख
दुसह	–	दु:सह
निस्वार्थ	–	नि:स्वार्थ

(5) संधि संबंधी भूलें–

जैसे –

अशुद्ध		शुद्ध
उपरोक्त	–	उपर्युक्त
तदोपरान्त	–	तदुपरांत
सन्मुख	–	सम्मुख
दुस्कर	–	दुष्कर
उज्वल	–	उज्ज्वल
जगत्गुरू	–	जगद्गुरु
सतगुरू	–	सद्गुरु
अध:गति	–	अधोगति

(6) समास संबंधी भूलें–

जैसे –

अशुद्ध		शुद्ध
यथाविध	–	यथाविधि
उन्नतशील	–	उन्नतिशील
दृढ़व्रती	–	दृढ़वत
राज्यनैतिक	–	राजनीतिक

(7) कुछ शब्दों के उच्चारण मिलते–जुलते या समान होने पर वर्तनी का अंतर होने पर अर्थ भेद हो जाता है। जैसे –

अशुद्ध		शुद्ध
इस्त्री (प्रेस)	–	स्त्री (महिला)
जरा (बुढ़ापा)	–	ज़रा (थोड़ा सा)
कृती (रचनाकार)	–	कृति (रचना)
आदि (प्रारंभ)	–	आदी (अभ्यस्त)
दिया (सौंपा)	–	दीया (दीपक)
छात्र (विद्यार्थी)	–	क्षात्र (क्षत्रिय संबंधी)

(8) शब्द निर्माण की अशुद्धियाँ–

(i) संज्ञा में एक ही जगह दो प्रत्यय लगा देने से–

जैसे–

अज्ञानता (अज्ञान) – धैर्यता (धीरता)

उत्कर्षता (उत्कर्ष) – भीरूताई (भीरूता)

(ii) विशेषण से संज्ञा बनाने में –

जैसे–

उपयोगता (उपयोगिता) – महानता (महत्ता)

नियमित्ता (नियमितता) – व्यस्ता (व्यस्तता)

(iii) विशेषण बनाने में –

जैसे –

– सदृश्य (सदृश)

स्वस्थ्य (स्वस्थ) – भाग्यमान (भाग्यवान)

(iv) संज्ञा से क्रिया विशेषण बनाने में –

जैसे –

सकुशलपूर्वक (कुशलतापूर्वक) – सानंदपूर्वक (आनंदपूर्वक)

(v) स्त्रीलिंग बनाते समय –

जैसे – कवित्री (कवयित्री)

पड़ोसीन (पड़ोसन)

श्रीमति (श्रीमती)

(vi) बहुवचन बनाते समय –

जैसे –

दवाईयाँ (दवाईयाँ) – लड़कीयाँ (लड़कियाँ)

(9) वाक्य निर्माण की अशुद्धियाँ –

(i) विभक्तियों की अशुद्धियाँ: –

ने, को, से, के, लिए, का, के, की, रा, रे, री, में पर आदि।

जैसे – मैं भोजन किया और पाठशाला गया। (अशुद्ध)

मैंने भोजन किया और पाठशाला गया। (शुद्ध)

(ii) लिंग की अशुद्धियाँ– लिंग के आधार पर क्रिया के रूप में अंतर हो जाता है।

जैसे – राम ने मुझे एक पुस्तक दिया। (अशुद्ध)

राम ने मुझे एक पुस्तक दी (शुद्ध)

(iii) विशेषणों के लिंग की अशुद्धियाँ–

विशेषणों के लिंग विशेष्य के अनुसार होते हैं।

जैसे – गाय के दूध से अच्छी घी बनती है।

(अशुद्ध)

गाय के दूध से अच्छा घी बनता है। (शुद्ध)

(iv) सर्वनाम की रूप संबंधी अशुद्धियाँ-

जैसे - मैं निर्दोष हूँ, मेरे को मत मारो। (अशुद्ध)

मैं निर्दोष हूँ, मुझे मत मारो। (शुद्ध)

(v) वर्तनी संबंधी अशुद्धियाँ-

जैसे - यह अंगूर खट्टे हैं। (अशुद्ध)

ये अंगूर खट्टे हैं। (शुद्ध)

(vi) संयोजन शब्द की अशुद्धियाँ -

जैसे - राम और गोपाल तथा मोहन और सोहन खेल रहे हैं। (अशुद्ध)

राम-गोपाल तथा मोहन-सोहन खेल रहे हैं। (शुद्ध)

वर्तमान समय में विद्यार्थी के शिक्षा क्रम में व्याकरण का वह महत्व परिलक्षित नहीं होता है, जो पूर्व पीढ़ी तक था। मातृभाषा और जनभाषा की बात अलग है, परंतु साहित्यिक भाषा के पूर्ण ज्ञान के लिए व्यावहारिक व्याकरण की शिक्षा विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य होनी चाहिए। व्याकरण को भाषा की नियमावली कहा जा सकता है। नियमों के जानने से बिखरी हुई बातें व्यवस्थित हो जाती हैं और बहुत से अशुद्ध जाने-अनजाने प्रयोगों का अच्छा ज्ञान हो जाता है। इसलिए प्रत्येक विद्यार्थी के पास एक प्रामाणिक व्याकरण की पुस्तक एवं अच्छा शब्दकोश होना चाहिए। शब्द कैसे बनते हैं? संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया में लिंग, वचन, विभक्ति आदि भेद से क्या-क्या रूप बनते हैं? क्रिया के काल, भाव, वाच्य आदि क्या हैं, इत्यादि बातों की जानकारी सबके लिए आवश्यक है।

भाषा की सबसे महत्वपूर्ण इकाई है वाक्य। वाक्य में शब्दों का एक-दूसरे से क्या संबंध होता है, इसको ध्यान में न रखने से प्रायः त्रुटियाँ हो जाया करती हैं। वाक्य का सबसे बड़ा प्रयोजन है, अपनी बात को अच्छी तरह समझा देना। आपका वाक्य अधूरा है एवं लिंग, वचन, पुरुष, काल, वाच्य, विभक्ति ठीक नहीं है अर्थात् व्याकरण के नियमों के अनुरूप गठित नहीं है, तो पढ़ने-सुनने वाला क्या से क्या अर्थ निकाल लेगा, कहा नहीं जा सकता है। व्याकरण की शिक्षा वास्तव में वाक्य-गठन की शिक्षा है।

भाषा की कठिनाई के दो प्रमुख कारण होते हैं-

(1) अप्रचलित शब्दों का प्रयोग।

(2) भाषा की अपनी प्रकृति के अनुरूप एवं सरल वाक्य रचनाओं वाली भाषा का प्रयोग न होना।

हमें वही शब्द सरल, सहज और बोधगम्य लगते हैं, जो हमारी ज़बान पर चढ़ जाते हैं। बाजार में भी उसी सिक्के का मूल्य होता है, जो बाजार में चलता हैं। अतः हमें सुधार को दृष्टिगत रखते हुए क्लिष्ट हिंदी, संस्कृत गर्भित हिंदी जबरन नहीं चलानी चाहिए। सामान्य आदमी जिन शब्दों का प्रयोग करते हैं, उनको हमें अपना लेना चाहिए, इससे हमारी हिंदी भाषा समृद्ध होगी। हिंदी के महान् साहित्यकार, उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद जी ने भी प्रसंगानुसार किसी भी शब्द का प्रयोग करने में परहेज नहीं किया है-

जैसे- अपील, अस्पताल, एक्टर, एजेंट, कलर, कैंप, कौंसिल, गजट, जेल, चैक आदि।

हिंदी वाक्य रचना भी दो प्रकार की होती है।

(1) सरल वाक्य रचना (2) जटिल वाक्य रचना यानी संयुक्त एवं मिश्रित वाक्य रचना, इससे भाषा क्लिष्ट लगने लगती है और अबोधगम्य हो जाती है। मुझे विश्वास है कि सरल, सहज, पठनीय, बोधगम्य भाषा शैली के विकास से हिंदी की लोकप्रियता में वृद्धि होगी। भाषा एक बहता नीर है। लोक व्यवहार में भाषा बदलती रहती है यही भाषा की प्रकृति है। कहा भी है-

बोली झरना नीर है, बहे सदा निर्बंध।
भाषा गहरी झील है, लगा व्याकरण बंध।।

– 'रामाश्रम' महाराज बाग, भैरोगंज, जिला- सिवनी (म. प्र.)-480661

❑❑❑

केंद्रीय सरकारी कार्यालयों में राजभाषा हिंदी का विकास : एक अध्ययन

कंचन बाला

राजभाषा का अर्थ है सरकारी कामकाज की भाषा। वह भाषा, जिसमें सरकारी कामकाज हो और जिसके प्रयोग के साथ शासन व्यवस्था लागू की जाए। हिंदी भाषा संस्कृत से जन्मी और पली, पाली से प्राकृत, प्राकृत से अपभ्रंश, अपभ्रंश से शौरसेनी और शौरसेनी से होते हुए खड़ी बोली तक पहुँची। भारत में इन्हीं भाषाओं के माध्यम से शासन व्यवस्था आगे बढ़ी। "12वीं सदी के बाद तुर्कों और अफगानों के आगमन से राजभाषा फारसी बनी, किंतु आंशिक रूप से तत्कालीन केंद्रीय भाषा पुरानी हिंदी को भी सहभाषा के रूप में स्वीकृति मिली थी, क्योंकि अधिकांश सरकारी कर्मचारी भारतीय थे और उन सभी के लिए फारसी का प्रयोग सरल नहीं था।"[1]

"मुगल शासन में हिंदी सहराजभाषा के रूप में थी। अकबर स्वयं हिंदी में लिखते थे। उनके दरबार में रहीम खानाखाना हिंदी के प्रसिद्ध कवि थे। हिंदी के सहराजभाषा होने की बात का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि शेरशाह सूरी से लेकर बाद तक सिक्कों पर प्राय: फारसी के साथ हिंदी का प्रयोग भी मिलता है।"[2]

"मुगलों के पतन के बाद फारसी का महत्व घटता गया। अत: 1837 में फारसी का स्थान तो अंग्रेजी ने ले लिया और स्थानीय भाषाओं को सह-राजभाषा बनाया गया।"[3]

"स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान यह बात स्पष्ट हो गई थी कि भारत के लिए किसी एक प्रतिनिधि या संपर्क भाषा की आवश्यकता है और वह भाषा अपेक्षाकृत अधिक लोगों के द्वारा बोली जाने के कारण हिंदी ही हो सकती है। ..... इन सबका परिणाम यह हुआ कि भारत के स्वतंत्र होने पर हिंदी को राजभाषा बनाया गया।"[4]

दिनांक 14 सितंबर, 1949 को संघ की राजभाषा के रूप में हिंदी को सर्वसम्मति से स्वीकारा गया। संविधान के अनुच्छेद 343(1) के अनुसार देवनागरी लिपि में लिखित हिंदी संघ की राजभाषा है। अनुच्छेद 343(2) के अनुसार संविधान लागू होने के समय से 15 वर्ष की अवधि तक पहले की भांति अंग्रेजी का प्रयोग जारी रखने की व्यवस्था की गई। राजभाषा अधिनियम, 1963 यथा संशोधित 1967 की धारा 3(3) के अनुसार संकल्पों, आदेशों, नियमों, अधिसूचनाओं, प्रशासनिक व अन्य प्रतिवेदनों, प्रेस विज्ञप्तियों के लिए द्विभाषी प्रावधान किया गया है, अर्थात् अंग्रेजी के साथ हिंदी के प्रयोग पर बल दिया गया है। केंद्रीय सरकारी कार्यालयों में राजभाषा हिंदी में कार्य करने पर बल दिया गया। अंग्रेजी में उपलब्ध सरकारी कामकाज के दस्तावेजों के हिंदीकरण का कार्य प्रारंभ हुआ।

"राजभाषा हिंदी ने कार्यालयी भाषा की भूमिका में एक ओर संविधान के प्रावधानों का पालन किया है, तो दूसरी ओर संसार में सबसे अधिक लोगों द्वारा व्यवहृत इस भाषा की कार्यालयी क्षमता को प्रतिष्ठित किया है। शब्दावली, अनुवाद, टंकण, आशुलिपि और कंप्यूटरीकरण से जुड़ी कोई भी समस्या अब चिंता का कारण नहीं रह गई है।"[5]

कार्यालयों में राजभाषा अनुपालन की स्थिति जानने के लिए राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार

द्वारा प्रत्येक कार्यालय को अपने हिंदी कार्य का त्रैमासिक एवं वार्षिक हिंदी प्रगति प्रतिवेदन क्षेत्रानुसार क्षेत्रीय कार्यान्वयन कार्यालयों को ऑनलाइन प्रस्तुत करने के निर्देश दिए गए हैं। प्रत्येक कार्यालय द्वारा उसके संबंधित मुख्यालय को त्रैमासिक एवं वार्षिक तथा संबंधित नगर की नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति को छमाही हिंदी प्रगति प्रतिवेदन भी भेजा जाता है।

केंद्रीय सरकार के कार्यालयों में राजभाषा अनुपालन की स्थिति जानने के लिए जोधपुर शहर के केंद्रीय सरकार के कार्यालयों में एक सर्वेक्षण किया गया। इस सर्वेक्षण में यह जानने का प्रयास किया गया कि कार्यालयों में हिंदी कार्य की क्या स्थिति है। इसके लिए त्रैमासिक, छमाही एवं वार्षिक हिंदी प्रगति प्रतिवेदनों को आधार बनाकर राजभाषा अनुपालन संबंधित एक प्रश्नावली तैयार की गई।

सर्वेक्षण के लिए जोधपुर स्थित कुल 54 केंद्रीय कार्यालयों की पहचान की गई और उन कार्यालयों से उपर्युक्त प्रश्नावली भरने का अनुरोध किया गया। इस सर्वेक्षण में 54 में से कुल 48 केंद्रीय कार्यालयों ने भाग लिया। शेष कार्यालयों ने रक्षा संबंधी गोपनीयता या अन्य कारणों से सर्वेक्षण में भाग नहीं लिया। सभी कार्यालयों को लिखित में स्पष्ट रूप से बताया गया था कि किसी भी कार्यालय के नाम का कहीं भी उल्लेख नहीं किया जाएगा। अतः इस शोध पत्र में किसी भी कार्यालय का नाम नहीं दर्शाया जा रहा है।

सर्वेक्षण में सम्मिलित 48 कार्यालयों में हिंदी कार्य की स्थिति जानने के लिए तैयार की गई प्रश्नावली में निम्नलिखित 12 प्रश्न पूछे गए –

1. हिंदी में प्राप्त सभी पत्रों का उत्तर हिंदी में दिया जा रहा है?

2. अंग्रेजी में प्राप्त पत्रों का भी उत्तर हिंदी में दिया जा रहा है?

3. कार्यालय द्वारा भेजे जाने वाले पत्र हिंदी में भेजे जाते हैं।

4. सभी अधिकारी/कर्मचारी हिंदी में टिप्पणियाँ लिखते हैं?

5. सभी कंप्यूटरों पर द्विभाषी रूप से कार्य करने की सुविधा उपलब्ध है?

6. राजभाषा नियम 1963 की धारा 3 (3) का अनुपालन शत प्रतिशत किया जा रहा है?

7. सभी नामपट्ट/ सूचनापट्ट/ साइनबोर्ड द्विभाषी हैं?

8. रबड़ की मोहरें/सीलें हिंदी या द्विभाषी रूप में उपलब्ध हैं?

9. क्या कार्यालय में प्रयोग में आने वाले सभी फार्म हिंदी/द्विभाषी हैं?

10. क्या प्रति तिमाही हिंदी कार्यशालाओं का आयोजन किया जाता है?

11. क्या फाइलों/रजिस्टर आदि के शीर्षक द्विभाषी हैं?

12. क्या फाइलों/रजिस्टरों में हिंदी में प्रविष्टियाँ की जा रही हैं? कार्यालयों द्वारा दिए गए उत्तरों के आधार पर अध्ययन से प्राप्त परिणाम के समेकित आंकडे नीचे दी गई तालिका–1 में दर्शाए गए हैं:

तालिका-1-कार्यालयों में हिंदी कार्य की स्थिति

क्रम सं.	प्रश्न	हाँ	नहीं	अधिकतर	यथासंभव प्रयास किया जा रहा है	उत्तर प्राप्त नहीं
प्रश्न 1	हिंदी में प्राप्त पत्रों का उत्तर हिंदी में	43	–	5	–	–
प्रश्न 2	अंग्रेजी में प्राप्त पत्रों का उत्तर भी हिंदी में	14	2	22	10	–
प्रश्न 3	कार्यालय द्वारा भेजे जाने वाले पत्र हिंदी में	20	2	17	8	1
प्रश्न 4	सभी टिप्पणियाँ हिंदी में	17	4	20	7	–
प्रश्न 5	धारा 3(3) का शत प्रतिशत अनुपालन	36	–	6	5	1
प्रश्न 6	सभी कंप्यूटरों पर द्विभाषी रूप में कार्य करने की सुविधा	42	1	5	–	–
प्रश्न 7	सभी नामपट्ट/सूचनापट्ट द्विभाषी	42	–	6	–	–
प्रश्न 8	सभी रबड़ की मोहरें/सीलें हिंदी या द्विभाषी	44	–	4	–	–
प्रश्न 9	सभी प्रपत्र/ फार्म हिंदी/द्विभाषी	33	1	14	–	–
प्रश्न 10	प्रति तिमाही हिंदी कार्यशालाओं का आयोजन	26	11	11	–	–
प्रश्न 11	सभी फाइलों/रजिस्टरों के शीर्षक द्विभाषी	35	3	10	–	–
प्रश्न 12	सभी फाइलों/रजिस्टरों में प्रविष्टियाँ हिंदी में	33	–	15	–	–

उपर्युक्त तालिका के सर्वेक्षण में सम्मिलित 48 कार्यालयों में हिंदी कार्य की स्थिति दर्शाती है। 89.58 प्रतिशत (43) कार्यालयों में हिंदी में प्राप्त सभी पत्रों का उत्तर हिंदी में दिया जाता है; 10.42 प्रतिशत (5) कार्यालयों में हिंदी में प्राप्त अधिकतर पत्रों का उत्तर हिंदी में दिया जाता है।

48 कार्यालयों में से 29.16 प्रतिशत (14) कार्यालयों में अंग्रेजी में प्राप्त पत्रों का भी उत्तर हिंदी में दिया जाता है, 45.84 प्रतिशत (22) कार्यालयों में अधिकतर अंग्रेजी में प्राप्त पत्रों का उत्तर हिंदी में दिया जाता है, 20.83 प्रतिशत (10) कार्यालयों में अंग्रेजी पत्रों का उत्तर हिंदी में दिया जाने का यथासंभव प्रयास किया जाता है।

सर्वेक्षण में सम्मिलित 48 कार्यालयों में से 41.67 प्रतिशत (20) कार्यालयों में पत्र हिंदी में भेजे जाते हैं; 35.41 प्रतिशत (17) कार्यालयों में अधिकतर पत्र हिंदी में भेजे जाते हैं और 16.66 प्रतिशत (8) कार्यालयों में पत्र हिंदी में भेजने का यथासंभव प्रयास किया जाता है।

जोधपुर शहर के सर्वेक्षण में सम्मिलित 48 कार्यालयों में से 35.41 प्रतिशत (17) कार्यालयों के अधिकारी/कर्मचारी हिंदी में टिप्पणियाँ लिखते हैं; 41.67 प्रतिशत (20) कार्यालयों के अधिकतर अधिकारी/

कर्मचारी हिंदी में टिप्पणियाँ लिखते हैं और 14.58 प्रतिशत (7) अधिकारी/कर्मचारी हिंदी में टिप्पणियाँ लिखने का प्रयास करते हैं।

राजभाषा अनुपालन के संदर्भ में "राजभाषा अधिनियम, 1976 की धारा 3 की उपधारा (3) में निर्दिष्ट सभी दस्तावेजों के लिए हिंदी और अंग्रेजी दोनों का प्रयोग किया जाएगा और ऐसे दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्तियों का यह उत्तरदायित्व होगा कि वे यह सुनिश्चित करें कि ऐसे दस्तावेज हिंदी और अंग्रेजी दोनों ही में तैयार किए जाएँ, निष्पादित किए जाएँ और जारी किए जाएँ।"[6]

जोधपुर शहर के सर्वेक्षण में सम्मिलित 48 कार्यालयों में इसके अनुपालन के संबंध में पूछे गए प्रश्न के उत्तर में 75 प्रतिशत (36) कार्यालयों में राजभाषा नियम 1963 की धारा 3(3) का अनुपालन शत प्रतिशत किया जा रहा है; 12.5 प्रतिशत (6) कार्यालयों में अधिकतर इस नियम का अनुपालन किया जाता है और 10.41 प्रतिशत (5) कार्यालयों में नियम का अनुपालन का यथासंभव प्रयास किया जाता है।

कंप्यूटरों पर द्विभाषी रूप से कार्य की सुविधा की उपलब्धता के बारे में पूछे गए प्रश्न के उत्तर में 48 कार्यालयों में से 87.5 प्रतिशत (42) कार्यालयों में यह सुविधा उपलब्ध है और 10.42 प्रतिशत (5) कार्यालयों के अधिकतर कंप्यूटरों पर द्विभाषी रूप से कार्य करने की सुविधा उपलब्ध है।

48 कार्यालयों में से 87.5 प्रतिशत (42) कार्यालयों में सभी नामपट्ट/सूचनापट्ट/साइनबोर्ड द्विभाषी हैं और 12.5 प्रतिशत (6) कार्यालयों में अधिकतर नामपट्ट/सूचनापट्ट/साइनबोर्ड द्विभाषी हैं।

इसी प्रकार 48 कार्यालयों में से 91.67 प्रतिशत (44) कार्यालयों में रबड़ की सभी मोहरें/सीलें हिंदी या द्विभाषी हैं और 8.33 प्रतिशत (4) कार्यालयों में रबड़ की अधिकतर मोहरें/सीलें हिंदी या द्विभाषी हैं।

कार्यालय में प्रयोग में आने वाले सभी प्रपत्र/फार्म सर्वेक्षण में सम्मिलित 48 कार्यालयों में से 68.75 प्रतिशत (33) कार्यालयों में हिंदी/द्विभाषी हैं और 29. 16 प्रतिशत (14) कार्यालयों में अधिकतर प्रपत्र/ फार्म हिंदी/ द्विभाषी हैं।

राजभाषा विभाग द्वारा वर्ष 2018-19 के लिए जारी वार्षिक कार्यक्रम के अनुसार "विभिन्न कार्यालयों में हिंदी में कार्य करने में आ रही कठिनाइयों को दूर करने के लिए कार्यशालाएँ आयोजित करने के निर्देश दिए गए हैं, जिसका मुख्य उद्देश्य हिंदी भाषा का ज्ञान रखने वाले कार्मिकों की हिंदी में काम करने की झिझक को दूर करना है।"[7]

कार्यशाला आयोजन के संदर्भ में सर्वेक्षण में सम्मिलित 48 कार्यालयों में से 54.16 प्रतिशत (26) कार्यालयों ने बताया कि उनके कार्यालय में प्रति तिमाही हिंदी कार्यशालाओं का आयोजन किया जाता है; 22.92 प्रतिशत (11) कार्यालयों में अधिकतर हिंदी कार्यशालाओं का आयोजन किया जाता है और 22.92 प्रतिशत (11) कार्यालयों में हिंदी कार्यशालाओं का आयोजन नहीं किया जाता।

48 कार्यालयों में से 72.91 प्रतिशत (35) कार्यालयों ने उत्तर दिया है कि उनके कार्यालय की फाइलों/रजिस्टर आदि के शीर्षक द्विभाषी हैं और 20.83 प्रतिशत (10) कार्यालयों के अधिकतर फाइलों/रजिस्टर आदि के शीर्षक द्विभाषी हैं।

48 कार्यालयों में से 68.75 प्रतिशत (33) कार्यालयों की फाइलों/रजिस्टर में हिंदी प्रविष्टियाँ की जाती हैं और 31.25 प्रतिशत (15) कार्यालयों की फाइलों/रजिस्टर में प्रविष्टियाँ अधिकतर हिंदी में की जाती हैं।

निष्कर्ष : इस अध्ययन में यह पाया गया कि केंद्रीय कार्यालयों में लगभग 80 से 85 प्रतिशत कार्य हिंदी में किया जा रहा है। आशा की जा सकती है कि भविष्य में हिंदी में और अधिक कार्य किया जाएगा। हिंदी में बढ़ते कार्य से हिंदी की प्रतिष्ठा बढ़ेगी और एक दिन हिंदी राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो सकेगी। इस सर्वेक्षण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि केंद्रीय कार्यालयों में हिंदी के प्रति सजगता है। केंद्रीय कार्यालय राजभाषा विभाग भारत सरकार के नियमों का यथासंभव पालन कर रहे हैं। आज हिंदी की स्थिति देश में ही नहीं अपितु विश्व स्तर पर बेहतर प्रतीत होती है। केंद्रीय सरकार के कार्यालयों में अधिक से अधिक कार्य हिंदी में किया जा रहा है। भारत सरकार के निर्देशानुसार केंद्रीय कार्यालयों में हिंदी का बढ़ता कार्य हिंदी की प्रतिष्ठा को और बढ़ाकर विश्व स्तर पर ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा और एक दिन ऐसा भी आएगा जब हिंदी राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित होगी।

संदर्भ सूची -

1. राजभाषा हिंदी - भोलानाथ तिवारी, 'राजभाषा हिंदी: परंपरा और विकास', संस्करण 2001, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 66

2. वही - पृष्ठ संख्या 67

3. वही - पृष्ठ संख्या 68

4. वही - पृष्ठ संख्या 68

5. कार्यालयी हिंदी - बालेंदू शेखर तिवारी एवं अभिषेक अवतंस, प्रथम संस्करण 2006, क्लासिकल पब्लिशिंग कंपनी, प्रस्तावना

6. राजभाषा वेबसाइट - http://www.rajbhasha.nic.in/hi/ol_rules_1976

7. राजभाषा वेबसाइट बिंदु संख्या - 33 http://www.rajbhasha.nic.in/sites/default/files/ap20182019_3.pdf

- द्वारा श्री कोजाराम टाडा, ए-32, कृष्णा नगर, नई पाली रोड, बासनी कृषि मंडी पोस्ट आफिस, जोधपुर-342005

❑❑❑

राष्ट्रभाषा हिंदी और महात्मा गांधी

डॉ. ओम प्रकाश पांडेय

हिंदी हमारी राष्ट्रीय पहचान की भाषा है। यह हमारी राजभाषा तो है ही, हमारी सामासिक, सामाजिक-सांस्कृतिक विरासत की वाहक भी है। हिंदी राष्ट्रीय पहचान और एक राष्ट्र के रूप में प्रगति और संकल्प की भाषा है। यह न तो किसी प्रांत की भाषा है, न समुदाय की, न ही यह सरकारी काम-काज की। यह कश्मीर से कन्याकुमारी तथा कच्छ से कामरूप तक, हमारी भाषाओं में सांस्कृतिक विरासत और परंपराओं की विविधता में एकता को सहेजती है। हिंदी इस देश का परिचय है, राष्ट्रवाणी है तथा हमारे जन-जन की आवाज है। भारत में हिंदी मजबूत कड़ी के रूप में सदियों से चली आ रही है। राष्ट्र और राष्ट्रीय एकता के लिए राष्ट्रभाषा अत्यंत आवश्यक है। राष्ट्रभाषा ही देश का स्वाभिमान आत्मविश्वास प्रकट करती है। हिंदी देश की एकता व अखंडता का उद्घोष करती है। राष्ट्रभाषा के बिना देश की अस्मिता कुंठित हो जाती है। राष्ट्र गूंगा सिद्ध होता है। इसी दृष्टि से राष्ट्रभाषा हिंदी जहाँ अस्मिता को अभिव्यक्त करती है वहाँ राष्ट्र को एक सूत्र में बांधे रखती है।

आमतौर पर यह धारणा है कि कांग्रेस का आंदोलन जैसे-जैसे बढ़ता गया कांग्रेस के नेताओं ने हिंदी को इस देश की राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया। शुरू में लोकमान्य तिलक ने हिंदी को इस देश की राष्ट्रभाषा के रूप में अपनाने के संकेत दिए और बाद में महात्मा गांधी ने हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करते हुए देश के स्वतंत्रता संग्राम के लिए इसकी शक्ति, महत्व तथा अनिवार्यता को समझा। अतः हिंदी के प्रचार-प्रसार में पूरा जीवन लगा दिया। राष्ट्रभाषा के प्रति गांधी जी के मन में सम्मान और स्वीकृति का भाव निरंतर तथा आजीवन बना रहा। गांधी जी ने राष्ट्रभाषा हिंदी के लिए जो संघर्ष किया। साथ ही जो विचार विनिमय राष्ट्र के महानायकों के साथ किया एवं सम्मेलनों में राष्ट्रभाषा हिंदी पर व्याख्यान दिए, वे राष्ट्र की धरोहर हैं। वस्तुतः भाषा-संस्कृति एवं मातृ-भूमि के समवेत भाव को राष्ट्र कहते हैं। हिंदी के निर्माताओं में उसके प्रचार-प्रसार में, सेवा में तथा हिंदी के महत्व को दर्शाने में महात्मा गांधी का नाम शामिल है। गांधी जी के हिंदी-प्रेम में व्यापकता तथा गहराई थी। उनकी मान्यता थी कि किसी भी देश की सभ्यता-संस्कृति, इतिहास का सम्यक् ज्ञान देश की राष्ट्रभाषा में ही संभव है। भारत के स्वतंत्रता आंदोलन की बागडोर जब महात्मा गांधी जी के हाथों आई तो उन्होंने हिंदी प्रचार का कार्य प्रारंभ कर दिया। राष्ट्रभाषा हिंदी का कार्य हाथ में लेने से पूर्व 1917 में भड़ौच में हुई द्वितीय गुजरात शिक्षा परिषद के सभापति पद से भाषण देते हुए गांधी जी ने हिंदी को हर प्रकार से राष्ट्रभाषा के उपयुक्त समझा। भारत की राष्ट्रीयता और भावनात्मक एकता में राष्ट्रभाषा का समन्वित योगदान परंपरा से चला आ रहा था। इस दृष्टि से भी गांधी जी ने हिंदी को वरीयता दी। उनके इस प्रेम के कारण नागरी प्रचारिणी सभा और हिंदी साहित्य सम्मेलन का ध्यान इस ओर गया। स्वतंत्रता संग्राम, देश की आजादी, साहित्यिक-सांस्कृतिक तथा

राष्ट्रीय समन्वय के रूप में हिंदी को अपनाने उसका पुरजोर प्रचार-प्रसार करने के वे प्रबल पक्षधर थे। हिंदी के लिए गांधी जी की सेवाओं का ऐतिहासिक महत्व है। राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार में महात्मा गांधी का सर्वश्रेष्ठ योगदान है। अफ्रीका में ही प्रवास के समय उन्होंने हिंदी के महत्व को समझ लिया था। हिंदी ही वह भाषा है जिसका सहारा ले महात्मा गांधी ने हमारे इतने विविधरंगी राष्ट्र को एकता के सूत्र में बांधकर रखा। सुभाषचंद्र बोस, बालगंगाधर तिलक आदि अनेक नेताओं ने इसी ओजस्वी भाषा में धुँआधार भाषणबाजी कर इतने बड़े देश को एकमाला पहना भारत के लोगों को स्वतंत्रता का स्वाद चखने को उकसाया। यही वह भाषा है जिसकी सहायता से गुजरातवासी महात्मा गांधी ने देश की स्वतंत्रता की लड़ाई को क्षेत्रीय आंदोलन के स्थान पर एक राष्ट्रीय आंदोलन का रूप प्रदान किया। उन्होंने राष्ट्रीय विकास के कार्यक्रम की चौदह सूत्रीय योजना में हिंदी प्रचार का समावेश कर इस महत्वपूर्ण कार्य को अपनी योजना का आवश्यक अंग बना दिया। हिंदी राष्ट्र-निर्माण की भाषा है और हम इसके कार्यकर्ता है। यह राष्ट्र और राष्ट्रीयता की शक्ति है इस पर हमें गर्व और अभिमान है। गांधी जी ने हिंदी साहित्य सम्मेलन के इंदौर अधिवेशन में एक प्रस्ताव पारित करके न केवल हिंदी को राष्ट्रभाषा के स्थान पर स्थापित किया, अपितु उसके प्रचार का भी श्री गणेश करते हुए अपने पुत्र देवदास गांधी को प्रचार हेतु दक्षिण भेज दिया और उन्होंने तमिलनाडु के उस समय के लोकप्रिय नेता राजगोपालचारी के मार्गदर्शन में 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा' की स्थापना की। दक्षिण के प्रांतों में हिंदी के प्रचार को गति दी। यह सभा दक्षिण के सभी प्रांतों में परीक्षाएँ चलाती रही, उसके द्वारा व्यापक पैमाने पर हिंदी का प्रचार भी हुआ।

राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी के विकास में महात्मा गांधी का योगदान अभूतपूर्व रहा। ऐसा नहीं है कि भारत आकर ही महात्मा गांधी राष्ट्रभाषा आंदोलन से जुड़े हों उनको यह विदित था कि हिंदी की प्रकृति प्रारंभ से ही सार्वदेशिक रही है। भारत के सुदूर अंचलों से आने वाले साधु-संतों की भाषा यही सार्वदेशिकता लिए हुए थी। यही कारण है कि भारत के सभी तीर्थ स्थानों की भाषा आज तक यही बनी हुई है। भारतीय भाषाओं के प्रति, विशेषत: हिंदी के प्रति उनका लगाव भारत आने के पहले द. अफ्रीका के प्रवासकाल के दौरान ही था द. अफ्रीका के पत्र -इंडियन ओपीनियन' (1906) में उन्होंने अपनी बात स्पष्ट करते हुए हिंदी को मीठी, नम्र और ओजस्वी भाषा स्वीकार किया" (हिंदी विकास और संभावनाएँ, लेखक- डॉ. कैलाश चंद भाटिया, पृ. 54)। गांधी जी के अनुयायी व हिंदी के लिए समर्पित काका कालेलकर ने 'हिंदी के लिए गांधी जी के प्रयत्न' शीर्षक आलेख में राष्ट्रभाषा आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में उनके योगदान को स्पष्ट किया है। भारत आते ही जिन अनेक आंदोलनों का गांधी जी ने नेतृत्व किया उनमें से हिंदी आंदोलन प्रमुख ही नहीं शीर्ष पर रहा। 1909 में 'हिंद स्वराज' में उन्होंने कहा कि "हर पढ़े-लिखे हिंदुस्तानी को अपनी भाषा और हिंदी का ज्ञान होना चाहिए।" यहाँ तक कि उन्होंने स्पष्ट घोषणा भी कर दी कि अंग्रेजी में राष्ट्रभाषा बनने के लिए आवश्यक गुण विद्यमान नहीं है जबकि हिंदी में राष्ट्रभाषा बनने के सारे गुण मौजूद हैं अत: राष्ट्रभाषा हिंदी ही होनी चाहिए। गांधी जी हिंदी सेवियों, हिंदी समर्थकों में शीर्ष पर आसीन हैं। स्वतंत्रता आंदोलनों के समय भारत के विविध क्षेत्रों के स्वतंत्रता सेनानियों, महापुरुषों तथा नेताओं ने जैसे कि बंगाल के केशव चंद्रसेन, बंकिमचंद्र चटर्जी, रवींद्रनाथ टैगोर, सुभाषचंद्र बोस गुजरात के महात्मा गांधी तथा दयानंद सरस्वती, महाराष्ट्र के लोकमान्य तिलक, दक्षिण के अनंतशयनये इत्यादि ने एक ही भाषा (हिंदी) से संपूर्ण भारत देश को एक धागे से बांधने की आवश्यकता पर बल दिया। यही कारण है कि संपूर्ण भारत में एक ही राष्ट्रभाषा होने की आवश्यकता महसूस की गई। देश के स्वतंत्रता आंदोलन को वेग देने के उद्देश्य से सभी भारतवासियों में एकता की भावना जाग्रत करने हेतु हिंदी के नागरी स्वरूप पर बल दिया गया। यह उल्लेखनीय है कि गांधी जी ने सन् 1900 से ही इस प्रश्न पर गहराई से विचार करना शुरू कर दिया था। 'हिंद स्वराज' पुस्तक में जिसे 1908 में लंदन से साउथ अफ्रीका वापस आते हुए लिखा था। उन्होंने भारतवासियों को चेतावनी दी थी कि "यदि अंग्रेजी भाषा का बोल-बाला इसी तरह बना रहा तो आने वाली पीढ़ियाँ एक दिन हमें कोसेंगी।"

अक्तूबर 1917 हिंदी आंदोलन के इतिहास में महत्वपूर्ण है। भड़ौच के द्वितीय गुजरात शिक्षा सम्मेलन (20-10-1917) के अध्यक्ष पद से दिए अभिभाषण में तथा 15 अक्तूबर, 1917 को बिहार छात्र सम्मेलन भागलपुर में अध्यक्ष पद से हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने, स्वीकार करने तथा उसकी शक्ति और महत्व तथा अनिवार्यता पर हिंदी की वकालत करते हुए बड़े विस्तार से प्रकाश डाला था। प्रताप के 28 मई, 1917 के अंक में लिखते हैं- "हिंदी ही हिंदूस्तान के शिक्षित समुदाय की सामान्य भाषा हो सकती है, यह बात निर्विवाद सिद्ध है, यह कैसे हो, केवल यही विचार करना है।" मोतीहारी में 03-07-1917 को अपने भाषण में व्यक्त करते हैं- "हिंदी जल्दी से जल्दी अंग्रेजी का स्थान ले ले यह एक स्वयं सिद्ध उद्देश्य जान पड़ता है। हिंदी शिक्षित वर्गों के बीच समान माध्यम नहीं, बल्कि जनसाधारण के हृदय तक पहुँचने का द्वार बन सकती है। इस दिशा में देश की कोई भाषा उसकी समानता नहीं कर सकती और अंग्रेजी तो कदापि नहीं कर सकती।" 20-10-1917 को भड़ौच में अपने भाषण के समापन में कहते हैं- "इस तरह हिंदी भाषा बन चुकी है। हमने वर्षों पहले उसका राष्ट्रभाषा के रूप में उपयोग किया है।"

गांधी जी ने कहा था- "बहुत पहले ही मुझे इस बात का विश्वास हो गया था और मेरा विश्वास तब से अनुभव द्वारा पुष्ट हुआ है कि यदि कोई भारतीय भाषा कभी भारत की राष्ट्रभाषा बन सकती है और यदि भारत को एक राष्ट्र बनाना है तो किसी न किसी भाषा को राष्ट्रभाषा बनाना ही चाहिए तो वह भाषा केवल हिंदी है और मैं हमेशा इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहा हूँ।" अमृत बाजार पत्रिका जनवरी-1918 में गांधी जी व्यक्त करते हैं- "देश सेवा करने के लिए उत्सुक सब हैं, परंतु राष्ट्रसेवा तब तक संभव नहीं है जब तक कोई राष्ट्रभाषा न हो।" आगे जीवन पर्यंत वह हिंदी को राष्ट्रभाषा का स्वरूप प्रदान करने का प्रयास करते रहे। हिंदी साहित्य सम्मेलन के इंदौर अधिवेशन में सभापति पद से दिया गया भाषण (29-03-1918) ऐतिहासिक महत्व रखता है। वे कहते हैं- "हमारे लिए अपने अंग्रेज मित्रों के निमित्त भी अंग्रेजी में बोलना आवश्यक नहीं होना चाहिए। राष्ट्रभाषा का प्रयोग न करना ठीक नहीं है।" (कलकत्ता दिस.- 1917)। इंदौर के ऐतिहासिक सम्मेलन के समापन भाषण के अंत में कहते हैं- "मेरा नम्र लेकिन दृढ़ अभिप्राय है कि जब तक हम भाषा को राष्ट्रीय और अपनी-अपनी प्रांतीय भाषाओं को उनका योग्य स्थान नहीं देंगे तब तक स्वराज्य की सब बातें निरर्थक हैं।" 28-03-1919 को तूतीकोरिन में एक भाषण में कहा था- "जब आप भारत की राष्ट्रभाषा अर्थात् हिंदी सीख लेंगे तो आपके सामने हिंदी में भाषण करने में मुझे बहुत खुशी होगी। जब तक आप हिंदी नहीं सीखते तब तक आप शेष भारत से अपने को बिल्कुल अलग रखेंगे।" 29-03-1919 को मदुरई में अपने भाषण में कहा- "हिंदी और केवल हिंदी ही भारत की राष्ट्रभाषा बन सकती है। संसार की सारी भाषाओं की तुलना में हिंदी को सीखना सबसे सरल है।" राष्ट्रीय भाषा की आवश्यकता और उसका स्वरूप तथा अंग्रेजी भाषा के प्रभुत्व से भारत तथा यहाँ की जनता का कितना अहित हो रहा है, गांधी इसे भरपूर समझते थे। वे मानते थे हमारी पराधीनता का सबसे अपमानजनक, सबसे व्यापक, सबसे कठोर अंग अंग्रेजी का प्रभुत्व है। हिंदी साहित्य सम्मेलन के आठवें अधिवेशन के सभापति पद से सन् 1918 में गांधी जी ने घोषित किया था- "जब तक हम हिंदी भाषा को राष्ट्रीय और अपनी-अपनी प्रांतीय भाषाओं को उनका योग्य स्थान नहीं देंगे, तब तक स्वराज्य की बातें निरर्थक हैं।" (राष्ट्रभाषा हिंदुस्तानी : गांधी जी, पृ. 15, अहमदाबाद, 1959) गांधी जी मानते थे कि राष्ट्रीय और प्रांतीय भाषाओं को उनका स्थान जब तक नहीं मिल सकता तब तक अंग्रेजी भाषा का प्रभुत्व इसी तरह बना रहेगा। गांधी जी मानते थें कि- "कुछ सौ अमलदारों या हाकिमों की सुविधा के लिए करोड़ों लोगों को एक परदेशी भाषा सीखनी पड़ती है, यह बेहूदेपन की हद है।" (राष्ट्रभाषा हिंदुस्तानी, पृ. 19)।

23-01-1921 (कलकत्ता) "करोड़ों भारतीयों के दिल में बैठने का एक मात्र साधन हिंदी ही है, बाईस करोड़ भारतीय हिंदुस्तानी जानते हैं, उन्हें और कोई भाषा नहीं आती, अगर आप बाईस करोड़ भारतीयों के दिलों में बैठ जाना चाहते हैं तो आप के लिए हिंदुस्तानी ही

एकमात्र भाषा है।" गांधी जी तानाशाही के विरोधी थे, पर हिंदी के लिए मातृभाषा की तैयारी के लिए वह भी बनने को तैयार रहे। हिंदी नवजीवन, 02-09-1921 के अंक में लिखते हैं- "अगर मेरे हाथों में तानाशाही सत्ता हो तो मैं आज से विदेशी माध्यम के जरिए दी जाने वाली हमारे लड़कों और लड़कियों की शिक्षा बंद कर दूँ और सारे शिक्षकों और प्रोफेसरों से यह माध्यम तुरंत बदलवा दूँ या उन्हें बर्खास्त करा दूँ।" गांधी जी हिंदीतर भाषियों को अपना उदाहरण देकर समझाते थे कि गलती से नहीं डरना चाहिए चाहे जैसे हिंदी बोलो पर बोलो हिंदी ही। गुजराती नवजीवन- 01-06-1924 ई. में लिखते हैं- "यदि हिंदी बोलने में भूलें हों तो भी उनकी कतई चिंता नहीं करनी चाहिए। भूल करते-करते भूलों को सुधारने का अभ्यास हो जाएगा। भूलों की चिंता न करने की सलाह आलसी लोगों के लिए नहीं, वरन् मुझ जैसे भाषा सीखने के इच्छुक अध्यवसायी सेवकों के लिए हैं।" काका कालेकर उनकी हिंदी सेवा पर टिप्पणी करते हुए (गांधी हिंदी दर्शन, पृ.- 300) पर लिखते है।- "गांधी जी ने दक्षिण के चार प्रांत- आंध्र, तमिलनाडु, केरल और कर्नाटक को हिंदी के अनुकूल बनाया था। बाद में बाकी प्रांत असम, बंगाल, उड़ीसा, महाराष्ट्र, गुजरात तथा सिंध में हिंदी का प्रचार चलाकर राष्ट्रभाषा प्रचार समितियों का गठन कर वहाँ के लोगों को भी हिंदी के अनुकूल बनाया। राजगोपालचारी, रवींद्रनाथ, जवाहरलाल नेहरू, डॉ. अंसारी, डॉ. जाकिर हुसैन, हकीम अजमलखाँ, सुभाषबाबू, सत्यमूर्ति जैसे प्रभावशाली नेताओं को हिंदी के अनुकूल बनाना मामूली करामाते नहीं थी। गांधी जी ने अपनी समन्वयकारी नीति से उन सब लोगों का विरोध बिल्कुल नरम किया था। बहुतों को अपनी ओर खींच भी लिया था।" यह सर्वविदित है कि गांधी जी ने अपने पुत्र देवदास गांधी को मद्रास भेजा था, जिनके साथ दक्षिण के कुछ हिंदी प्रचारक पं. हरिहर शर्मा, शिवदास शर्मा आदि रहे। स्वामी सत्यदेव परिव्राजक ने लोगों को हिंदी सिखाने के लिए हिंदी की पहली पुस्तक लिखी। हरिहर शर्मा दक्षिण हिंदी प्रचार सभा के प्रथम महामंत्री थे। सर्चलाइट 29-01-1927 के अंक में लिखते हैं- "आपकी अपनी भाषा राष्ट्रभाषा है, जो हिंदी है। आप अंतर प्रांतीय मामलों में आसानी से उसका प्रयोग कर सकते हैं। भले ही वह टूटी-फूटी हो।- 'यंग इंडिया' के 31-01-1929 अंक में लिखते हैं- "यह बात अब सभी को स्पष्टता समझ लेनी चाहिए कि हिंदी को प्रादेशिक भाषाओं का कतई स्थान नहीं लेना है, उसे तो अंतर प्रांतीय विचार विनिमय का माध्यम बनना है और सभी अखिल भारतीय संगठनों की अधिकृत भाषा का ही स्थान लेना है। कहने की जरूरत नहीं कि हिंदी की उर्दू शैली उससे जुड़ी हुई है।" हरिजन सेवक 10-04-1937 में गांधी जी लिखते हैं- "अंग्रेजी को प्रांतीय भाषाओं का या हिंदी का स्थान नहीं देना चाहिए। अगर अंग्रेजी ने यहाँ के लोगों की भाषाओं को निकाल न दिया होता तो प्रांतीय भाषाएँ आज आश्चर्यजनक रूप से समृद्ध होती। हिंदी पर जोर इसलिए देता हूँ कि राष्ट्रीय एकता हासिल करने का यह एक बहुत जबरदस्त साधन है और जितना दृढ़ इसका आधार होगा, उतनी ही प्रशस्त हमारी एकता होगी।" 20-04-1935 के एक भाषण में वे कहते हैं- "हिंदी को हम राष्ट्रभाषा मानते हैं। वह राष्ट्रीय भाषा होने के लायक है। वही भाषा राष्ट्रीय बन सकती है, जिसे बहुसंख्यक लोग जानते-बालते हों और जो सीखने में सुगम हो। ऐसी भाषा हिंदी ही है। यह मैं शुरू से ही बताता आ रहा हूँ। यदि हिंदुस्तान को सचमुच राष्ट्र बनाना है, तो चाहे कोई माने न माने, राष्ट्रभाषा हिंदी ही बन सकती है, क्योंकि जो स्थान हिंदी को प्राप्त है, वह किसी दूसरी भाषा को कभी नहीं मिल सकता।- हरिजन सेवक- 15-03-1942 के अंक में कहते हैं- "प्रथम स्थान तो प्रत्येक की अपनी मातृभाषा का है, सच्ची प्रेरणा और प्रगति मातृभाषा से ही मिल सकती है और हो सकती है। मातृभाषा के साथ में राष्ट्रभाषा का ज्ञान भी होना चाहिए।" गांधी जी हिंदीतर भाषियों को अपना उदाहरण देकर समझाते थे कि गलती से डरना नहीं चाहिए। चाहे जैसे हिंदी बोलो हिंदी ही बोलो।" अखिल भारतीय भाषा सम्मेलन लखनऊ में 29 दिसंबर, 1916 को स्पष्ट शब्दों में कहा था- "राष्ट्रभाषा का यदि प्रचार करना है, तो उसके लिए भगीरथ-प्रयत्न करना होगा। आप लोग लाट साहब को या सरकार के दरबार में जो प्रार्थना पत्र भेजते हैं तो किस भाषा में लिखकर भेजते हैं? यदि अपनी भाषा में नहीं भेजते हैं, तो हिंदी

भाषा में लिखकर भेजें। मैं कहता हूँ कि आप अपनी भाषा में बोले, अपनी भाषा में लिखें। उनको गरज होगी, तो हमारी बात सुनेंगे। मैं अपनी बात अपनी भाषा में कहूँगा। जिसको गरज होगी, वह सुनेगा।"

महात्मा गांधी का स्वतंत्रता -दिवस 15 अगस्त, 1947 बी.बी.सी. लंदन को दिया गया संदेश था- "दुनिया से कह दो गांधी अंग्रेजी नहीं जानता।" गांधी जी ने कहा था "आज की पहली और सबसे बड़ी सेवा यह है कि हम अपनी देशी भाषाओं की ओर मुड़े और हिंदी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करें।" इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि भारत के तत्कालीन राजनैतिक नेताओं में गांधी जी ही पहले व्यक्ति थे जिन्होंने भारत की राष्ट्र भाषा के प्रश्न पर विशुद्ध यर्थाथवादी, व्यावहारिक दृष्टिकोण से अपने विचार व्यक्त किए थे। उन्हीं के सद्प्रयासों से कांग्रेस के अधिवेशन में पहले-पहल अंग्रेजी के स्थान पर हिंदी जिसे गांधी जी उस समय हिंदुस्तानी कहते थे, का व्यवहार हुआ। यह कम महत्वपूर्ण बात नहीं थी। श्रीमती एनीबेसेंट द्वारा कांग्रेस अधिनियम में अधिवेशनों में हिंदुस्तानी के प्रयोग के विरोध का गांधी जी ने जो करारा उत्तर दिया था वह आज भी भारत के अंग्रेजी भक्त नेताओं, बुद्धिजीवियों तथा नौकरशाहों के लिए चुनौती है, एक प्रश्न है उन्होने कहा था- "सन् 1915 से मैं एक के सिवा कांग्रेस की सभी बैठकों में शामिल हुआ हूँ। मैंने सैकड़ों प्रतिनिधियों, हजारों प्रेक्षकों से इसकी चर्चा की है, लोकमान्य तिलक और एनीबेसेंट सहित सभी लोक-सेवकों की अपेक्षा मैं शायद सारे देश में ज्यादा घूमा-फिरा हूँ और पढ़े-लिखे व अनपढ़ों को मिलाकर सबसे ज्यादा लोगों से मिला हूँ। और मैं सोच समझकर इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि राष्ट्र का कारोबार चलाने के लिए या विचार विनियम के लिए हिंदुस्तानी को छोड़कर दूसरी कोई भाषा शायद ही राष्ट्रीय माध्यम बन सके। साथ ही व्यापक अनुभव के आधार पर मेरी यह पक्की राय बनी है कि पिछले दो सालों को छोड़कर बाकी सब सालों में कांग्रेस का करीब-करीब सारा ही काम अंग्रेजी में चलाने से राष्ट्र को नुकसान उठाना पड़ा है।" भारत में अंग्रेजी के प्रभुत्व को समाप्त करने के लिए सन् 1908 में गांधी जी ने अपने देशवासियों के विचारार्थ जो योजना रखी थी वह स्वतंत्र भारत की भाषा संबंधी गुत्थी सुलझाने के लिए संभवत: सर्वाधिक व्यावहारिक योजना है। दक्षिण के प्रांतों को छोड़कर गैर हिंदी भाषी प्रांतों तथा पूर्वोत्तर के प्रांतों में हिंदी के प्रचार को गति देने के लिए हिंदी साहित्य सम्मेलन के तत्वावधान में सन् 1936 में महात्मा गांधी के मार्ग दर्शन में राष्ट्रभाषा प्रचार समितियों का गठन किया गया। उसी समय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की वर्धा में स्थापना की गई और तब से आज तक वर्धा समिति हिंदी के प्रचार-प्रसार में जुटी हुई है। गांधी ने पूरे भारतवर्ष में हिंदी को राष्ट्रभाषा तथा उसे लोकप्रिय बनाने का ऐतिहासिक कार्य किया। सभी सुशिक्षित तथा देशभक्त नेताओं तथा भारतवासियों ने गांधी जी के विचारों को स्वीकार किया और कई संस्थाओं तथा उनके माध्यम से हजारों प्रचारकों ने हिंदी के प्रचार में अपना संपूर्ण जीवन ही लगा दिया। हिंदी का प्रचार गांधी जी के राष्ट्रीय आंदोलन का एक प्रमुख अंग बन गया।

हमारी संस्कृति, इतिहास तथा राष्ट्र की एकता के दर्पण में हिंदी का विशेष महत्व रहा है। हिंदी में सम्मोहन की वह शक्ति है जिसके द्वारा संपूर्ण भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है। इस सूत्र मंत्र को महात्मा गांधी ने अपने जीवन में उतारा और हिंदी की व्यापकता को प्रत्येक क्षेत्र में समझकर इसके प्रभाव को पूर्णत: मनोयोग से तथा इसकी अनिवार्यता तथा महत्व को समझाते हुए इसे राष्ट्रीय आंदोलन में मुख्य भाषा राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी की लोकप्रियता को बुलंद किया। उनका मानना था कि हिंदी में वह ताकत है तथा सामर्थ्य है जिसके द्वारा सामान्यजन तक पहुँचा जा सकता है। हमारे देश के संविधान तथा गांधी का दुर्भाग्य है कि गांधी जी की भाषा नीति को भारत के सांस्कृतिक समाज का सरोकार समझने के बदले एक राजनैतिक द्वेष का प्रयोजन समझा गया जिसका परिणाम हम भोग रहे हैं। वास्तव में हिंदी के विकास, समृद्धि के साथ ही हमारे देश की जीत है, विकास है, एकता है। हिंदी की जीत हिंदुस्तान की जीत होगी। गांधी जी सदैव हिंदी भाषा से प्यार एवं स्नेह की बात को महत्व देते रहे। वे मानते थे कि भाषा को बनाना, बढ़ाना प्रत्येक व्यक्ति का नैतिक दायित्व है जो राष्ट्र की गरिमा, एकता तथा अखंडता को बढ़ावा देती है। गांधी जी का कहना था-

"हम समाज की पहली तथा सबसे बड़ी सेवा यह कर सकते हैं कि हम अपनी देशी भाषाओं को पुनः अपनाएँ, राष्ट्रभाषा के स्वाभाविक पद पर फिर से प्रतिष्ठित करें और अपने समस्त प्रांतीय कार्यों को अपनी-अपनी प्रांतीय भाषाओं में तथा राष्ट्रीय कार्यों को हिंदी में करना शुरू करें। जब तक हमारे स्कूल तथा कॉलेज हमें देशी भाषाओं के माध्यम से शिक्षा नहीं देने लगते तब तक हमें चैन से नहीं बैठना चाहिए। हम समाज की सबसे बड़ी सेवा यह कर सकते हैं कि अंग्रेजी भाषा की ज्ञान प्राप्ति को हम जो झूठा महत्व देना सीख गए हैं उससे अपने को तथा समाज को मुक्त करें।" गांधी जी आजीवन हिंदी की सेवा, प्रचार-प्रसार तथा उसे उचित राष्ट्रभाषा का सम्मान दिलाने में प्राणप्रण से आजीवन लगे रहे। हिंदी और गांधी एक दूसरे के पर्याय बन गए। भारत में इतना बड़ा हिंदी सेवी, राष्ट्रभाषा प्रेमी आज तक पैदा नहीं हुआ।

– गेट बाजर, (एन. जे. पी.) पो. भक्तिनगर, सिलीगुड़ी-734007 (पं. बंगाल)

❑❑❑

स्वतंत्र भारत में आज हिंदी

प्रो. प्रदीप के. शर्मा

भारत एक बहुभाषा-भाषी देश है। इस भाषाई बहुलता के कारण यहाँ एक कहावत है - "चार कोस पर बदले पानी आठ कोस पर बानी।" कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक तथा गुजरात से लेकर नागालैंड तक अनेक भाषाएँ, उपभाषाएँ और बोलियाँ प्रचलित हैं। उनमें विभिन्नता होते हुए भी एकता के दर्शन होते हैं। महात्मा गांधी स्वतंत्रता संग्राम के सिलसिले में जब बहुभाषा-भाषी भारतीय जनता को स्वतंत्रता का संदेश दे रहे थे तब उन्हें लगा कि अगर भारतीयों के कंठों से एक ही भाषा निकले तो वह देश की एकता के लिए सुगम बनेगी। इसीलिए उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम के दौरान भाषा को भी एक माध्यम के रूप में चुना था और वह था 'हिंदी भाषा'।

आज विश्व के जिस भू-भाग को 'इंडिया - दैट इज भारत' कहा जाता है, लिखित इतिहास के किसी भी समय वह किसी एक प्रशासन के अंतर्गत नहीं था, सिवाय अंग्रेजी शासन के समय के। इस अंग्रेजी शासन के समय भी बहुत सारे देशी राज्य अपना-अपना शासन चलाया करते थे, यद्यपि ये राज्य भी केवल कहने के लिए स्वशासी थे, अंगेजी शासन जब चाहे तब उनमें उलट-फेर कर सकता था। अंगेजों ने अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए जिस विशाल भारत का गठन किया था, भारत छोड़ते-छोड़ते उसके भी दो टुकड़े कर दिए। अंग्रेजों के ठीक पहले भारत में मुगलों का शासन था। किंतु उनका भी शासन पूरे भारत पर नहीं था।

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग भाषागत तथा शासकों के वंशगत शासन चलते आए थे। पाटलिपुत्र केंद्रित, प्राग्ज्योतिष केंद्रित, दिल्ली केंद्रित, कान्यकुब्ज केंद्रित, लखनऊ केंद्रित - सभी शासन खंडित भारत पर ही हुआ करते थे। अलग-अलग समय के इन शासकों ने एक ही केंद्रीय शक्ति द्वारा भारत पर शासन चलाने के लिए भरसक प्रयत्न किया था। अशोक, कनिष्क, चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त, हर्षवर्धन, पृथ्वीराज, अकबर, औरंगजेब - सभी ने प्रयत्न किया, किंतु कोई भी सफल न हो सका था। अंग्रेजों ने ही सर्वप्रथम संपूर्ण भारत में एक ऐसी शासन-व्यवस्था की नींव डाली, जिसके अंतर्गत ई. सन् 1947 के अगस्त की 14 तारीख के दिन एक अखंड भारत के रूप में आसमुद्र भू-भाग था।

भारतवर्ष के नाम से एक समन्वित देश की अवधारणा बहुत ही प्राचीन है। मानसिक रूप से यह अवधारणा जितनी प्रबल थी, भावभक्ति रूप से उतनी सबल नहीं थी। भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में भाषा और जाति के आधार पर शासन की अनेक इकाइयाँ थी। इनमें से कुछ पूर्ण स्वतंत्र थी और कुछ किसी बड़ी इकाई के अधीन। ये इकाइयाँ कहीं भाषागत थीं और कहीं जातिगत। शासकों की इन इकाइयों के शासन-कार्य के लिए राजभाषा भी जरूरी होती थी। सभी शासक प्रजा की भाषा वाले नहीं भी होते थे। जहाँ राजा और प्रजा एक ही भाषा को बोलने वाले थे, वहाँ राजभाषा उन्ही की भाषा होती थी, जैसे मराठा राजा और प्रजा की राजभाषा मराठी ही होती थी। जहाँ शासक और प्रजा अलग-अलग भाषाएँ बोलते थे, वहाँ या तो प्रजा की भाषा ही राजभाषा होती थी या राजा की। जैसे असम में आहोम शासकों ने असमिया भाषा को राजभाषा बनाया न

की आहोम-ताई भाषा को। अन्यथा राजा की भाषा ही राजभाषा बन गई होती। जैसे - भारत में अंग्रेजी शासन में अंगेजी भाषा जो अंग्रेजों की थी, राजभाषा बन गई थी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के 72 वर्ष पूरे होने के बाद भी भारत में आज भी अंग्रेजी सरकारी भाषा के रूप में बनी हुई है। 72 वर्ष की अवधि काफी लंबी अवधि है। जैसे-जैसे समय बीतता जा रहा है, देश की राजभाषा संबंधी धारणा भी पुरानी होती जा रही है, उस पर जंग लग गई है। अब जंग उतारे कौन? और इधर देश की राजभाषा का खिताब दो भाषाओं को दिया गया है- हिंदी और अंग्रेजी को। संविधान में दी गई अवधि भुला दी गई है। अब राजभाषा के रूप में हिंदी का नाम कोई नहीं लेता है। जबकि जनता को संबोधित करने की भाषा - केवल संबोधन के लिए है। इसकी तुलना में राज्यिक भाषाओं की स्थिति भी अच्छी नहीं है। वही सौतेला व्यवहार।

भारत में आज न अंग्रेज शासक है और न अंग्रेज लोग हैं। किंतु अंग्रेजीयत पूर्ण रूप से बरकरार है। अंग्रेजी भाषा को भारत से निष्कासित करने के लिए न मानसिकता ही बनाई गई है और न भारतीय भाषाओं को उसकी स्थान-पूर्ति के लिए आवश्यकता के अनुसार पोषण ही किया गया है। देश व समाज के धारक ऐसा समझते हैं कि अंग्रेजी के बिना भारत में उनका जीना दूभर हो जाएगा, उनकी वाचलता खंडित हो जाएगी और राजनैतिक तथा सामाजिक नेतृत्व उनके हाथ से सदा के लिए छिन जाएगा।

विश्व की सबसे प्राचीन समृद्ध भाषा संस्कृत आज भी अपने देश में जीवित है। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं को जब नई शब्दावली की आवश्यकता होती है तभी उसका दरवाजा खटखटाया जाता है। हम विदेशी-भाषा के शब्द अपनाने के विरुद्ध नहीं है, किंतु अपनाया जाए तो कितना अपनाया जाए? विदेशी भाषा के प्रत्येक शब्द को अपनाने पर अपनी भाषा का शब्द भंडार तो उधार के शब्दों से ही भर जाएगा। दूसरी और विदेशी भाषाएँ बने-बनाए सभी शब्दों को अपनाने पर अपनी भाषा प्रक्रिया के अनुसार नए शब्द गढ़ने में बाधित हो जाएगी, जो एक जीवित भाषा के लिए घातक सिद्ध होगा। तथाकथित विश्व वैज्ञानिक शब्दावली कौन-सी है? क्या एक ही शब्दावली अंग्रेजी, फ्रांसीसी, रूसी, चीनी, जापानी भाषाओं में अपनाई गई है? नहीं। साहित्य में केवल अंग्रेजी भाषा ही विश्व में एक मात्र समृद्ध भाषा नहीं है, उपर्युक्त भाषाओं ने अपनी शब्दावली के माध्यम से विज्ञान के क्षेत्र में खोज की है और प्रगति भी की है। अतः भारत की विज्ञान, तकनीकी विज्ञान और मानव-विज्ञान के लिए सभी आवश्यक शब्दों का निर्माण कर सकता है। इस स्रोत भाषा के लिए अपने देश में आस्था और विश्वास नहीं है। दरअसल भारत के लोग कष्ट नहीं चाहते, बनी बनाई सामग्री उन्हें चाहिए। परदेश में जो हो रहा है, अपने देश में भी हो। मृग कस्तूरी के लिए पागल हो जाता है, उसे क्या मालूम कि कस्तूरी उसके शरीर में ही छिपी हुई है। हमारे देश में आज यही स्थिति है। क्या विदेशी बुद्धिजीवियों का हमारे बुद्धिजीवियों पर किसी प्रकार दबाव है? या उनकी तुलना में हम अपने को हीन समझते हैं?

बुद्धि के विकास के क्षेत्र में आज अपने देश में एक विचित्र स्थिति है। भारतीय संविधान में उल्लिखित सभी भाषाएँ अपने-अपने क्षेत्र में तो कहने के लिए रानी है। ज्ञान, विज्ञान, राजनीति, अर्थनीति आदि सभी मानव-विज्ञान, विज्ञान और तकनीकी विज्ञानों के क्षेत्र में अपना-अपना जौहर दिखाना चाहती हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सभी भाषाएँ सामर्थ्य के अनुसार विकास और समृद्धि के कार्य में जुट गई हैं। हिंदी को संविधान में देश की सरकारी भाषा के रूप में स्वीकृति दिए जाने के बाद केंद्रीय सरकार का यह कर्तव्य बन गया है कि वह देश के सामाजिक विकास और समृद्धि के लिए हिंदी की अभिवृद्धि के लिए काम तो करे ही, साथ ही सभी स्वीकृत भाषाओं की अभिवृद्धि के लिए भी प्रयास करे।

किंतु संविधान सभा की यह संस्तुति भारत में अब तक रानी के रूप में राज करने वाली अंग्रेजी भाषा को रास न आई। देश के हर कोने में बसे, उसके माध्यम से अब तक मधु चूसने वाले भक्त दिन में ही आकाश में तारे गिनने लगे। हिंदी के साथ भारत की सभी आधुनिक भाषाओं ने जन-जीवन के समस्त क्षेत्रों में पहली बार अपने देशी अंग्रेजी तथाकथित बुद्धिजीवी, शिक्षित लोगों ने हो - हल्ला मचाया कि ऐसा करने से देश शताब्दियों पीछे चला जाएगा, वह अंधेरे में दब

जाएगा जहाँ से उसका लौटना बड़ा कठिन होगा। अत: अंग्रेजी भाषा पिछले कई सौ वर्षों से जो 'अनमोल' सेवा दे रही है, उसे बरकरार रखा जाए।

संविधान ने देश की सरकारी भाषा के रूप में हिंदी भाषा को ही एकमात्र भाषा के रूप में प्रस्तावित किया था और स्वीकारा था। फलस्वरूप भारतीय भाषाओं के विरोधियों ने देश की अन्य आधुनिक भाषाओं को हिंदी के विरुद्ध उकसाया और वे सफल भी हो गए। संविधान सभा ने यदि 'हिंदी को मुख्य भाषा के रूप में रखकर बाकी समस्त भाषाओं को बराबर का दर्जा दिया होता - केंद्र और राज्यों को किसी भी भाषा को पारस्परिक आदान-प्रदान का माध्यम चुनने का अधिकर होता तो मैं समझता हूँ कि केंद्र की प्रशासनिक भाषा की समस्या कब की सुलझ जाती और आपस का अविश्वास और भेद-भाव समाप्त हो जाता। विश्व में ऐसे कई देश हैं, जहाँ एकाधिक भाषाएँ एक साथ सामूहिक तथा सरकारी भाषा है। कनाडा, श्रीलंका, स्विट्जरलेंड आदि देश उदाहरण के रूप में रखे जा सकते हैं। नैतिकता का नारा देने वाला भारत क्यों नहीं ऐसा कर पाता?

भारतीय चिंतन भी इस समय चूक गया लगता हैं। कहाँ हमारा नारा था 'वसुधैव कुटुंबकम' और कहाँ भाषा को लेकर अपने ही देश में आपस में झगड़ा। वसुधा को छोड़िए - एक ही राज्य में अलग-अलग राज्यों के कई दावेदार।

स्वतंत्र भारत की राजभाषा के रूप में हिंदी को एकमात्र भाषा के रूप में स्वीकार किया गया है। इसके पीछे-तर्क नहीं थे, ऐसी बात नहीं। यों भारत में हिंदी सदियों से आम-भाषा, जन-भाषा रही है। उसके स्वरूप में भले ही समय-समय पर कुछ भिन्नताएँ रही हों। ये भिन्नताएँ सभी भाषाओं में अपने विकास-काल में देखी जाती हैं, विकास की यह परंपरा ही है। जिस भाषा के साथ भारत की जनता सदियों से आम-भाषा के रूप में व्यवहार करती आई है, उसे आसानी से स्वतंत्र भारत की आम-भाषा के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए था। केवल मुट्ठी भर सफेदपोश तथा कथित मध्यम वर्गीय लोग अपने अंग्रेजी ज्ञान के अहंकार से जन-भाषा को स्वीकार करना नहीं चाहते। किंतु यही लोग राज स्तर पर राज्य भाषा को स्वीकार करते हैं, स्वीकार कर लेने के लिए बाध्य हैं। उनको यह बात क्यों नहीं समझ में आती है कि राज्यों में राज्यिक भाषाओं के माध्यम से जब काम-काज चल सकता है तब केंद्र में हिंदी से क्यों नहीं? इसलिए कि एक अतिरिक्त भाषा उसे सीखनी पड़ेगी? जहाँ सामान्य जनता उसे सीख सकती है, वह क्यों नहीं सीख सकते? भारत सरकार की पहल पर केंद्र ने त्रि-भाषा सूत्र निकाला था- हिंदी - राज्य भाषा - अंग्रेजी। इस सूत्र को समस्त राज्य सरकारों ने भी स्वीकारा था। किंतु इस सूत्र को भी इस वर्ग ने बेमौत मार डाला है। यह वर्ग राज्य में राज्यिक भाषा का प्रयोग करना भी मन से नहीं चाहता। आज भी धड़ल्ले से राज्यिक स्तर पर अंग्रेजी का प्रयोग किया जाता है।

भारत में कभी भी एक ही राजनैतिक शक्ति का संपूर्ण राष्ट्र पर शासन नहीं चला है। किंतु सारे भारत में एक ही वाणी का अनुशासन किसी-न-किसी रूप में अवश्य रहा है। हजारों वर्षों से इस देश में रहने वाले तीर्थयात्रा के लिए ही सही देश का परिभ्रमण करते रहे हैं। व्यापारी लोगों की भी यही भूमिका रही है। सभी तीर्थ-स्थान एक ही स्थान पर नहीं होते थे किंतु विभिन्न भारतीय भाषा-भाषी लोग आज भी उन स्थानों में आते जाते हैं। उन तीर्थस्थानों में एकत्रित लोग अवश्य ही आपस में भाव-विनियम पहले भी करते थे और आज भी करते हैं। भाव विनियम का माध्यम इशारा भी हो सकता है बोल कर भी किया जा सकता है। बोल कर भाव-विनियम करने के लिए किसी भाषा की आवश्यकता पड़ती ही हैं। अत: इस प्रकार के सामूहिक कार्य के लिए एक ही भाषा होनी चाहिए।

उत्तर भारत की भाषा-परंपरा का एक निश्चित स्वरूप हमारे सामने है। उसी परंपरा में आधुनिक आर्यभाषाएँ विभिन्न राज्यों में आज बोली जाती हैं। किंतु संपूर्ण भारत की सामूहिक भाषा-परंपरा का स्वरूप क्या था - विशेषकर दक्षिण भारत की द्रविड़ भाषाओं में से किस भाषा माध्यम से संपर्क बना था, वह स्पष्ट नहीं है। कहते हैं, भारत की द्रविड़ भाषाएँ आर्य भाषाओं से प्राचीन हैं। इस धारणा को मान लिया जाए तो हमारे मन में भारत की सामूहिक भाषा के संबंध में एक प्रश्न जागता है। महाभारत के अंतर्गत दक्षिणात्म अवश्य ही रहा होगा। दक्षिण के भू-भागों को लेकर ही महाभारत की कल्पना की गई होगी। रामायण में सिंहल द्वीप के बारे में जो उल्लेख है, आज का सिंहल द्वीप यदि वही

सिंहल द्वीप है तो दक्षिणात्म सारे भारत के लिए एक सामूहिक भाषा क्यों नहीं दे सका? दक्षिाणात्म यदि एक सामूहिक भाषा दे सका होता तो आज भारत की सामूहिक भाषा की बात को लेकर जो समस्या खड़ी हुई है, उसको सुलझाने में यथेष्ट सुविधा होती। कदाचित देश की सामूहिक भाषा की समस्या युगों पहले सुलझ जाती। क्या उन दिनों केवल उत्तर भारत के आर्यभाषी लोग ही दक्षिण भारत आते थे, दक्षिण भारत के द्रविड़ भाषी लोग उत्तर भारत नहीं जाते थे? मान लिया कि वे जाते थे। इस स्थिति में द्रविड़ भाषाओं का मेल-मिलाप आर्य भाषाओं से हो सकता था। आर्यभाषी लोगों ने दक्षिण भारत में संस्कृत भाषा का प्रसार इस तरह ही किया होगा। दक्षिण भारत में संस्कृत भाषा का अध्ययन-अध्यापन आज उत्तर भारत की तुलना में कम नहीं है बल्कि संस्कृत के बड़े-बड़े दिग्गज आज भी यहाँ विद्यमान है। संस्कृत ने दक्षिण की भाषाओं पर अपना प्रभाव छोड़ा और उन भाषाओं ने उससे बहुत-सी भाषिक सामग्रियों को ग्रहण किया। यही नहीं, संस्कृत को दक्षिण ने समृद्ध भी किया। द्रविड़ भाषाओं ने भाषिक आदान-प्रदान में अपेक्षित योगदान किया होता तो आज भारत की सामूहिक भाषा का स्वरूप कुछ और ही होता।

प्रश्न उठता है कि दक्षिण भारत की भाषाएँ उत्तर भारत में क्यों नहीं आईं और आईं तो उत्तर भारत की भाषाओं पर क्यों प्रभाव न छोड़ पाईं। वापस चले जाने के बाद उत्तर भारत से उन्होंने नाता ही तोड़ लिया था? उत्तर भारत में आज की दक्षिण भारत की भाषाओं ने (द्रविड़) मोर्चा संभाल लिया होता तो आपस में मेल-मिलाप, आदान-प्रदान होने का मौका मिल जाता और कदाचित वही पूरे भारत के लिए एक सामूहिक भाषा का स्वरूप बन जाता।

इसी परिपार्श्व में अपेक्षित विषय का प्रतिपादन होना चाहिए। यह कार्य पूरे देश में एक साथ और समन्वित रूप में आरंभ करना चाहिए। स्वतंत्रता के बहत्तर वर्ष बाद भी भारत की जनता को एक देशी भाषा सरकारी काम-काज चलाने के लिए नहीं मिल सकी है। कहते हैं कि मुस्तफा कमाल आतातुर्क ने एक ही रात में तुरस्क में तुर्की भाषा को सरकारी काम-काज की भाषा बनाया था। इसके पहले अरबी भाषा वहाँ की सरकारी भाषा थी, एक ही रात में इतना बड़ा काम नहीं हो सकता है। किंतु भावना का होना ही अत्यंत महत्वपूर्ण है। पिछले बहत्तर वर्ष से समस्त भारतीय अंग्रेजी की मानसिक गुलामी में जकड़े हुए हैं। इस जकड़न को तौड़ने के लिए हमें भावनात्मक, व्यावहारिक तथा आवश्यक मोर्चों पर लड़ना होगा और कार्य करना होगा। यह कार्य अकेले नहीं हो सकता। भारत की सभी भाषाओं को एक साथ जुटकर करना होगा।

इस कार्य को सफल बनाने के लिए आधुनिक चीन की तरह एक महान सांस्कृतिक क्रांति करनी होगी। भावुकता से नहीं, तर्क और युक्ति के साथ लड़ना होगा। विधि और संविधान के आधार पर कार्य करना होगा। सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात होगी कि देश के आवाम को साथ लेना होगा। संविधान की 343 वीं धारा में हिंदी को भारत संघ की सरकारी भाषा के रूप में स्वीकार किए जाने की बात लिपिबद्ध है। संविधान से अब तक यह धारा हटाई नहीं गई है। किंतु किस प्रकार से, कहाँ-कहाँ और कब से इसका प्रयोग हो इनके बारे में संविधान में कई बार संशोधन किए गए हैं। इस प्रकार हिंदी यूँ तो आज भी केंद्र शासन की भाषा है, किंतु वह राष्ट्र भाषा का स्थान नहीं ले पाई है।

देश में एक समय त्रिभाषा - नामक एक भाषा-नीति चलाई गई थी, हिंदी, राज्यिक भाषा और अंग्रेजी। न हिंदी केंद्र में चलती है और न राज्यों में राज्यिक भाषाएँ। दोनों स्थानों में बैसाखी का ही बोलबाला है। यों केंद्र में हिंदी प्रथम भाषा है अर्थात् सभी सरकारी कार्य मूलतः हिंदी में ही करने है और आवश्यकता के अनुसार साथ में अंग्रेजी में अनुवाद देना है। ज्यादातर अब केवल और केवल अंग्रेजी में ही काम-काज किए जाते हैं। एक समय त्रिभाषा सूत्र को जरा सुधारकर द्विभाषा कर देने का प्रस्ताव था। जो भी करें जब तक अंग्रेजी भाषा बरकरार रहेगी, तब तक भाषा का कोई सूत्र नहीं चलने वाला है। एक भाषा सूत्र (केवल अंग्रेजी) मजबूती से अपना कार्य करता जाएगा।

हिंदी के विकास के लिए संविधान की 351वीं धारा में यह निर्देश है- इस भाषा (हिंदी) की अपूर्व कल्पना-शक्ति, स्वरूप, शैली और अभिव्यक्ति को ठेस पहुँचाए बिना, हिंदुस्तानी और अन्य भारतीय भाषाओं में जिस किसी आवश्यक या अपेक्षित शब्दावली- मुख्यतः

संस्कृत से और अप्रधान रूप से अन्य भाषाओं से, जिन्हें अष्टम अनुसूची में दर्ज किया गया है, से शब्द लिए जा सकेंगे (मुक्त अनुवाद)। जब हिंदी में कार्य ही नहीं किया जाता है तो अपेक्षित, प्रयोजनीय आदि शब्दों का माने ही क्या है?

हिंदी के विकास में भारतीय भाषाओं की भूमिका के संबंध में विचार करते समय यह देखना होगा कि भारतीय भाषाओं को अपने-अपने क्षेत्र में अपनी भूमिका अदा करते समय कितनी गति मिलती है। यद्यपि राज्यिक भाषाओं का कार्य-क्षेत्र अलग और सीमित है, किंतु जहाँ तक कार्यों के प्रकार की बात है, उसमें कोई विशेष भिन्नता नहीं है। विदेश, रक्षा, तकनीकी शिक्षा, वैज्ञानिक खोज आदि विषय केंद्र के अधीन यद्यपि आते हैं, किंतु उनमें प्रयुक्त भाषा, शब्दावली तो, सार्वजनीन हैं। केंद्र और राज्यों में से वे समान रूप से प्रयोग में आती है। अतः ये शब्दावलियाँ समान रूप से सभी भाषाओं में प्रयुक्त होंगी।

विभिन्न प्रशासनिक विभागों के कार्य-संपादन के लिए मानक शब्दावली का प्रयोजन है ही। इन शब्दावलियों से हिंदी के शब्द भंडार में इजाफा तो होगा ही यह भाषा के विकास में योगदान भी देगी।

हिंदी यदि अपने संवैधानिक अधिकार को केवल अपने प्रयत्न से प्राप्त नहीं कर सकती है तो उसे राज्यिक भाषाओं को साथ लेकर संघर्ष करना होगा। आज के युग में कोई भी अधिकार मांगने पर नहीं मिलता, शक्ति से उसे खींचकर लाना होगा। अब और अधिक विलंब करना उचित नहीं है। सभी भारतीय भाषाओं को एक साथ मिलकर अभी तुरंत लड़ना होगा। अतः स्वयं, जनता को ही अपने नेतृत्व में यह लड़ाई लड़नी है। भारत की स्वतंत्रता की लड़ाई भारत की जनता ने लड़ी थी। 'भारत छोड़ो' की लड़ाई तो उसकी अपनी थी। गांधी जी और राष्ट्रीय नेताओं की गिरफ्तारी के बाद तो गांधी जी कह गए थे कि अब स्वतंत्रता की लड़ाई जनता को ही लड़नी है, उसका नेतृत्व भी जनता को अपने हाथों में ही लेना है।

हिंदी के विकास में संवैधानिक पक्ष आज तक सफल नहीं हुआ है। भाषा का विकास उसके अधिकाधिक व्यवहार पर निर्भर है। इस माहौल को बदलने के लिए मेरी दृष्टि में दो ही उपाय हैं। एक तो यह कि प्रशासन पर जन-पक्ष का अधिकार हो जिससे वह उसे मजबूर कर दे कि प्रशासन की भाषा जन-भाषा ही हो।

दूसरा उपय यह हो सकता है कि संसद और विधानसभा पर जन-पक्ष अधिकार जमा ले और जन-भाषा को केवल प्रस्ताव पारित करने तक ही सीमित न रखें, बल्कि तुरंत और तत्काल उसका कार्यान्वयन करें। अंतिम एक उपाय और हो सकता है- जन-पक्ष इस विषय पर विद्रोह कर दे और पूरे देश में गांधी जी द्वारा दिखाए गए उपायों से सत्ता-पक्ष को निष्क्रिय कर दे ताकि पूरा प्रशासन ही ठप पड़ जाए। इस प्रकार की किसी चरम कार्रवाई के बिना सत्ता-पक्ष हिलने वाला नहीं।

अंत में यही कहना चाहूँगा, देशवासियों ने देश-नेता, प्रशासन को बहत्तर वर्ष की लंबी अवधि का काफी समय जन भाषा को जन-जीवन में 'समुचित स्थान, दिलाने के लिए दे रखा था। वस्तुस्थिति को देखते हुए अब जनता का यह कर्तव्य होता है कि वह खुद इस कार्य में सक्रिय हो और समग्र देश में एक ऐसी जन-जागृति लाएँ कि जन-भाषा की बाधक शक्ति पराजित हो जाए। जनता के सामने इसके सिवा और कोई रास्ता नहीं है।

– उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, चेन्नई

❑❑❑

समाज, संस्कृति और भाषा: परस्पर संबंध और आधुनिक चुनौतियाँ

डॉ. रजनी 'प्रताप'

सृष्टि की विभिन्न रचनाओं में से अप्रतिम रचना मानव है। मानव ने सृष्टि के अन्य अनेक प्राणियों की अपेक्षा अधिक विकास किया है। वह अपनी चिंतनशीलता के कारण विकास के विविध सोपानों को पार कर चुका है और निरंतर पार कर रहा है। वह समूह में रहते हुए अपने विकास से संबद्ध अनेक कार्य करता है। समूह में रहना उसके विकास के लिए अनिवार्य है, क्योंकि सृष्टि की इस जटिल संरचना में एक अकेले व्यक्ति द्वारा निर्वाह कर पाना असंभव प्रतीत होता है। इसलिए उसके लिए समूह में रहना परमावश्यक है। वह जिस समूह में रहता है, वही उसका समाज है। परस्पर सामंजस्य बनाए रखने के लिए समाज द्वारा कुछ नियम, वर्जनाएँ अपेक्षाएँ, मानदंड आदि निर्धारित किए जाते हैं, जिससे समाज में प्रत्येक व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता के साथ-साथ सामाजिक विकास में भी योगदान देने के लिए प्रतिबद्ध होता है। यदि उसकी प्रतिबद्धता में किसी प्रकार की कोई शिथिलता आ जाती है, तो वह न केवल स्वयं ही समाज से कटता चला जाता है, अपितु समाज भी उसके प्रति उदासीन हो जाता है। इस प्रकार यह तो स्पष्ट है कि मानव और समाज परस्पर पूरक और आश्रित हैं, परंतु यह भी एक विदित तथ्य है कि बलपूर्वक थोपे गए या बिना किसी आधार पर निर्मित नियम और कानूनों का उल्लंघन करना मानव की नैसर्गिक वृत्ति है। इसलिए वास्तव में समाज द्वारा जो नियम और मानदंड निर्धारित किए जाते हैं, वह बलात् मानव पर थोपे नहीं जाते, अपितु मानव सहज ही उनका अनुसरण करना सीख लेता है। यह चमत्कृत कार्य संस्कृति करती है। संस्कृति ही वह आधार है, जो मानव की मानसिकता को निर्धारित करती है।

मानव समाज में रहते हुए अनेक क्रियाकलाप करता है। वह क्रियाकलाप धीरे-धीरे उसके समाज का अभिन्न अंग बन जाते हैं और जब समाज इन क्रियाकलापों से उन क्रियाकलापों को चुन लेता है जो मानव के विकास में सहायक सिद्ध होते हैं, तब वह संस्कारों का रूप धारण करते हैं। समष्टि रूप में यही संस्कार संस्कृति के द्योतक होते हैं। संस्कार का शाब्दिक अर्थ ही परिमार्जित करना है अर्थात् जो कुछ भी अशुद्ध, अशुभ और अहितकर है, उसका परिशोधन कर उसे समष्टि हित में प्रयोग करना। इस प्रकार संस्कार शब्द से निर्मित शब्द 'संस्कृति' इसी आशय में प्रयुक्त होता है। संस्कृति की अवधारणा में मानव की उन समस्त मान्यताओं को सम्मिलित किया जाता है, जो मानवीय सभ्यता का परिष्कार कर सके और उसे उत्थान की ओर ले जा सके। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इसी संदर्भ में कहा है कि "मानव की श्रेष्ठ साधनाएँ ही संस्कृति हैं।"[1] इसका आशय यही है कि संस्कृति में यह सभी कार्य-व्यवहार और परंपराएँ निहित हैं, जो मानव को विकास की ओर उन्मुख करती हैं। इसी के संदर्भ में यह तथ्य भी जुड़ा हुआ है कि चूँकि परंपराएँ परिवर्तित होती रहती हैं, इसलिए समयानुरूप संस्कृति के स्वरूप में भी परिवर्तन और परिवर्धन होता रहता है। परंतु यहाँ

यह रेखांकित करना भी अनिवार्य है कि यह परिवर्तन संस्कृति के बाह्य पक्ष में तो स्पष्ट दिखलाई देता है, किंतु संस्कृति का आंतरिक पक्ष सदैव समाज विशेष की संरचना के वैचारिक आधार पर ही निर्भर रहता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि "संस्कृति का आधार किसी समाज का मूल्य-बोध उसकी कसौटी उस समाज का आचरण है।"[2] इस कथन के आलोक में यह कहा जा सकता है कि वास्तव में संस्कृति का संबंध समाज विशेष के मानवीय-मूल्यों और समाज में उनके व्यवहृत प्रयोग से है।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि वास्तव में संस्कृति वह नियंता है, जो मानव-जाति को विकसित करने के दायित्व से परिचालित होती है। इस संदर्भ में संस्कृति की परिधि अत्यधिक विस्तृत हो जाती है। संस्कृति का संबंध केवल व्यक्ति या किसी समाज विशेष से नहीं रह जाता, अपितु वह समस्त मानवता की प्राण-धारा में संचरित होती है। इसी आधार पर वह विश्व के साथ संबंध स्थापित कर लेती है। इस तथ्य को आलोकित करते हुए निर्मल वर्मा कहते हैं कि "संस्कृति मनुष्य की आत्मचेतना का प्रदर्शन नहीं, उस सामूहिक मनीषा की उत्पत्ति है, जो व्यक्ति को एक स्तर पर दूसरे व्यक्ति से और दूसरे स्तर पर विश्व से जोड़ती है।"[3] अत: संस्कृति सामाजिक सामंजस्य और वैश्विक संबंध स्थापित करने का भी कार्य करती है। संस्कृति की कार्यशाला समाज है। अत: जिस प्रकार मानव और समाज का संबंध अविछिन्न है, उसी प्रकार समाज और संस्कृति के तंतु भी परस्पर गुंथे हुए हैं। इस आधार पर यह तथ्य ज्ञातव्य है कि मानव, समाज और संस्कृति परस्पर संबद्ध हैं।

मानव, समाज और संस्कृति के साथ एक अन्य अवधारणा भी अक्षुण्ण रूप से जुड़ी है, वो है भाषा। मानव अपनी मन: अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने के लिए भाषा को ही माध्यम बनाता है। भाषा से अभिव्यक्त किसी व्यक्ति के यही भाव जब समाज तक संप्रेषित होते हैं, तब उस व्यक्ति के व्यक्तित्व के लक्षण परिलक्षित होते हैं। उसके व्यक्तित्व से ही उसकी मानसिकता का आभास हो जाता है। यही मानसिकता समष्टि रूप में समाज की चिंतन पद्धति का आधार बन जाती है और अंतत: चिंतन के परिणामस्वरूप संस्कृति का स्वरूप निर्धारित होता है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि भाषा प्रत्यक्ष रूप से समाज और संस्कृति को प्रभावित करती है। इसी के साथ भाषा समाज और संस्कृति से प्रभावित भी होती है। अत: यह तो स्पष्ट है कि इनमें से किसी एक के परिवर्तित हो जाने से अन्य अवधारणाएँ स्वत: ही परिवर्तित हो जाती हैं।

आधुनिक युग, जिसे सूचना क्रांति का, विश्वग्राम का, विश्व-संस्कृति का युग माना जा रहा है, उसमें प्रत्येक समाज की संरचना में त्वरित परिवर्तन हो रहा है। भारत जैसे आध्यात्म प्रधान देश के संदर्भ में यदि बात की जाए तो इस परिवर्तन से एक नई स्थिति का प्रणयन हो रहा है। भारतीय समाज प्रारंभ से ही समष्टि हित से अनुप्रेरित रहा है। इसलिए भारतीय संस्कृति धर्म प्रधान संस्कृति रही है। धर्म प्रत्येक कार्य को उचित ढंग से करने की नियम-संहिता है। इसलिए मानव कल्याण के लिए धर्म को ही सर्वोपरि माना गया है। परंतु तकनीकी परिवर्तनों के परिणामस्वरूप मानव का ध्यान भौतिक विकास की ओर केंद्रित हुआ है। इसलिए आज प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को भौतिक रूप से संपन्न करने में जुटा हुआ है। भारतीय समाज में भी यह प्रवृत्ति मुखर हो रही है। भौतिक संपन्नता की लालसा का सबसे गहन प्रभाव भारतीय सांस्कृतिक धरोहर पर पड़ रहा है।

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक मानी जाती है। परंतु सूचना क्रांति और विश्व-संस्कृति की अवधारणा के कारण भारतीय संस्कृति जैसी समृद्ध संस्कृति का भी विश्व की असीम सीमाओं में विलय होता जा रहा है। निर्मल वर्मा ने भारतीय संस्कृति पर परत-दर-परत चढ़ते जाते आवरण के विषय में चिंता व्यक्त करते हुए कहा है कि "हमने चेतावनी को भूलकर एक ऐसे रास्ते को चुना, जिसका लक्ष्य तकनीकी विकास का एक ऐसा 'पैटर्न' था, जो हम अपनी जीवन-पद्धति पर आरोपित करना चाहते थे। यह हमारे लिए सभ्य, आधुनिक, प्रगतिशील बनने का 'शार्ट-कट' था। हमने इस बुनियादी सत्य को नजरअंदाज कर देना उचित समझा कि हमारी समाज-व्यवस्था शताब्दियों से अपनी जीवंत प्रेरणा विभिन्न बहुमुखी स्रोतों से प्राप्त करती रही है, उस पर एक किस्म का युनीफार्म

ढाँचा लादने का मतलब है, उन स्रोतों को ही नष्ट कर देना, जिनसे हमारी जीवन-धारा अपनी अस्मिता का 'जल' ग्रहण करती रही है।"[4] अत: स्पष्ट है कि यह दौर सांस्कृतिक उपनिवेशवाद का दौर है। विश्वग्राम में अपनी उपस्थिति दर्ज करवाने के लिए हम अपने सांस्कृतिक अस्तित्व को दाँव पर लगा रहे हैं। ऐसी स्थिति में प्रत्येक संस्कृति के लिए अपने अस्तित्व को बनाए रख पाना बहुत बड़ी चुनौती है। परंतु भारत जैसे समृद्ध देश के लिए इस चुनौती का सामना करना बहुत आवश्यक है। भारतीय मानव को अपनी पुरातन परंतु जीवंत परंपराओं का पुन: मूल्यांकन करने की आवश्यकता है।

वैश्वीकरण के युग में इस सांस्कृतिक संकट की घड़ी में अपनी परंपरा का मूल्यांकन करना एक तरह से खुद अपना मूल्यांकन करना है, अपनी अस्मिता की जड़ों को खोजना है। हम कौन हैं- यह एक दार्शनिक प्रश्न न रहकर खुद अपनी नियति से मुठभेड़ करने का तात्कालिक प्रश्न बन जाता है।"[5] स्पष्ट है कि सांस्कृतिक संकट की घड़ी में पुन: अपनी जड़ों को खोजने की आवश्यकता है।

औद्योगीकरण के कारण सांस्कृतिक विलय की प्रक्रिया अधिक तीव्र हुई है। स्वतंत्र व्यापार के नाम पर विकसित देश अल्पविकसित और अविकसित देशों में बाजार के रास्ते से प्रवेश करने लगे। "स्वतंत्र व्यापार के सिद्धांत का प्रतिपादन अठारहवीं शताब्दी से होने लगा, जब औद्योगिक क्रांति से ब्रिटेन और बाद में यूरोप के कुछ दूसरे देशों में नए तरह के उद्योगों पर आधारित पूंजीवाद का उदय हुआ।"[6] खुली अर्थव्यवस्था ने प्रत्येक क्षेत्र को बाजार के दायरे में ला खड़ा कर दिया है। बाजारवाद की इस शताब्दी में मानव केवल उपभोक्ता बनकर रह गया है। "राष्ट्रीय संस्कृति के केंद्र में नागरिक रहता था, पर इस संस्कृति के केंद्र में भूमंडलीय उपभोक्ता रहता है।"[7] अर्थात् आज बाजार के इस युग की पहली प्राथमिकता उपभोग है। इसी के परिणामस्वरूप पूरे विश्व पर विशेषत: एशियाई देशों पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों का आधिपत्य स्थापित हो गया है। इस पूरी प्रक्रिया से स्पष्ट होता है कि भूमंडलीकरण के केंद्र में आर्थिकता है, जो राजनैतिक लक्ष्यों से परिचालित है। "वैश्वीकरण को मुक्त बाज़ार व्यवस्था, उदार राजनैतिक ढाँचा तथा समरूप उपभोक्तावादी संस्कृति के हामी के रूप में समझा जा सकता है जो कि संपूर्ण विश्व को संचार के आधुनिकतम साधनों उपग्रहीय तकनीकी, यातायात के नवीनतम साधनों तथा टी.वी., इंटरनेट आदि की सहायता से 'वैश्विक ग्राम' में परिवर्तित कर रहा है।"[8] यह पूरी प्रक्रिया भूमंडलीकरण की जटिलता को उद्भासित करती है। विश्व-स्तर पर चर्चित इस भूमंडलीकरण ने पूरे वैश्विक समाज को प्रभावित किया है। यह भूमंडलीकरण बाजार और ब्रांड का भी दौर बन गया है।

ब्रांडवाद ने उपभोगवादिता की नई प्रवृत्ति को जन्म दिया है। ब्रांड के नाम पर आज मानव लाखों रुपए बिना सोच विचार के ही खर्च कर रहा है। वातानुकूलित मॉल्स में जाकर मानव भ्रमित और चकित सा हो जाता है और बहुत कुछ अनचाहा खरीद कर ले आता है। इस प्रकार बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ केवल बाजार में ही प्रवेश नहीं कर रही, अपितु हमारी संस्कृति में भी सेंध लगा रही हैं। इसलिए इस पूरी प्रक्रिया और जालसाजी को समझना बहुत आवश्यक है। आज हम बाजार की चकाचौंध में अपनी संस्कृति को भूलते जा रहे हैं। हम वहीं पहनना, वही खाना पसंद करते हैं, जो फैशन में है और यह फैशन बाजार के माध्यम से हमारी गलियों और घरों में प्रवेश कर जाता है। "21वीं शदी में भूमंडलीकरण, अमेरिकीकरण की जो आँधी चली उसका दूसरा पक्ष सांस्कृतिक है, जो किसी भी प्रकार आर्थिक पक्ष से कमतर नहीं है। इस सांस्कृतिक आक्रमण की आँधी आर्थिक से भी अधिक से अधिक तीव्र गति से आई जिसने हमारी जिसने हमारी सांस्कृतिक जड़ों को पूरी तरह हिला डाला। अब तक जितनी भी विदेशी संस्कृतियाँ, विभिन्न आक्रमणकारियों द्वारा भारत में लाई गईं या थोपी गईं, वे हमारे जीवन-परिवेश में पूरी तरह घुल-मिल गई थीं। .... किंतु इस संस्कृति ने हमारी निजता, सांस्कृतिक मूल्यों, सभ्यता के पारंपरिक स्वरूप में बदलाव लाने की चेष्टा नहीं की अपितु पुरातन सभ्यता और संस्कृति के सब कुछ को हटाकर अपना स्थान ग्रहण कर लिया।"[9] धीरे-धीरे इसी बाजारीकरण के द्वारा भारतीय संस्कृति का पाश्चात्यकरण होता जा रहा है। अपनी सांस्कृतिक मान्यताओं के बजाय अब हम

बाजार में प्रचलित मान्यताओं को अधिक महत्व देते हैं। इसलिए हम अपनी सांस्कृतिक विचारधारा से कटते जा रहे हैं।

बाजारीकरण की इस प्रक्रिया में भाषा भी बहुत अधिक क्षतिग्रस्त हो रही है। हमारी भाषा पर अब विदेशी भाषाओं का वर्चस्व स्थापित होता जा रहा है। प्राच्य प्रभावों के कारण भारत में भी लोक भाषाओं के समक्ष बहुत विकट संकट खड़ा हो रहा है। लोक भाषाओं से ही संस्कृति के मूल चिह्न पहचाने जाते हैं, क्योंकि "व्यक्ति लोक की कोख से जन्मता है लोक के बिना उसका अस्तित्व नहीं। उसका चिंतन लोक का चिंतन है। लोकचेतना ही लोक की समस्त इकाइयों को साधती है। इस लोकचेतना का जितना लोक के कार्यों पर नियंत्रण रहता है, लोक का जीवन उतना ही अधिक सफल होता है।"[10] परंतु आधुनिकता के दौर में सबसे अधिक खतरे में लोक संस्कृतियाँ हैं, जिसके कारण लोक भाषाएँ भी खतरे के दायरे में खड़ी हैं। उदाहरण के तौर पर पंजाबी भाषा का बहुत प्रसिद्ध लोकगीत है "काली तेरी गुत्त ते परांदा तेरा लाल नी" परंतु अब इस गीत के नए संस्करण में 'परांदा' की जगह 'पराडा' कर दिया गया है। यहाँ यह रेखांकित करना परमावश्यक है कि 'पराडा' एक नामी ब्रांड है। इस उदाहरण से यह स्पष्ट हो रहा है कि अतिभौतिकतावादी प्रवृत्ति हमारे लोकजीवन को भी अपने आवरण से आच्छादित कर रही है।

अत: हमारी भाषा तो बिगड़ ही रही है, भाषा के साथ-साथ हमारी सांस्कृतिक धरोहर भी अंधेरे गर्त में चली जा रही है। अभिजात्य भाषा के नाम पर विदेशी भाषाओं का प्रयोग ऊँचे सामाजिक स्तर पर द्योतक हो चला है। विश्व-संस्कृति की अवधारणा के चलते विश्व की सब भाषाएँ परस्पर निकट आ रही है, जिससे किसी एक भाषा विशेष का स्वरूप निर्धारित ही नहीं रहा। जैसे भारत में हिंगलिश का प्रचलन बढ़ रहा है। हिंदी और अंग्रेजी के इस मिश्रण से हिंदी भाषा का स्वरूप बदल रहा है। तकनीक और सूचना क्रांति ने इसमें भरपूर योगदान दिया है। आज जनसंचार माध्यमों पर ऐसी ही भाषा का प्रयोग हो रहा है। विज्ञापन जगत ने इसमें खूब योगदान दिया है। भारत में विदेशी कंपनियों के ब्रांड के विज्ञापन में लगभग प्रत्येक विज्ञापन में आधे से ज्यादा अंग्रेजी भाषा का प्रयोग होता है। यहाँ तक कि विज्ञापन की मुख्य पंक्ति में भी इस मिश्रित भाषा का प्रयोग मिलता है जैसे कि यह दिल मांगे मोर, पियो हेल्दी जियो हेल्दी आदि। इस प्रकार के कई उदाहरण उद्धृत किए जा सकते हैं।

हमारी भाषा की बिगड़ती स्थिति में मिश्रित भाषा का प्रचलन ही नहीं, बल्कि हिंदी भाषा का लिप्यंतरित रूप भी उत्तरदायी है। हिंदी के शब्दों को रोमन लिपि में अंकित कर देना बहुत आसान माना जा रहा है। जनसंचार के क्षेत्र में रोमन शब्दों में हिंदी के भावों को अभिव्यक्त करने की प्रक्रिया धड़ल्ले से आगे बढ़ रही है। व्यक्ति अपनी सुविधा और स्तर दोनों के संदर्भ में इस प्रकार की लिप्यंतरित भाषा का प्रयोग करना बहुत गर्व की बात समझता है। परंतु इससे भाषा और लिपि दोनों ही खतरे में हैं। नव पीढ़ी अपनी भाषा के साथ-साथ अपनी लिपि से भी विमुख होती जा रही है। हमारी नव पीढ़ी सबसे अधिक इस सांस्कृतिक उपनिवेशवाद की चपेट में है। नई पीढ़ी कई सामाजिक रिश्तों तक से अनभिज्ञ है। वह भी अंकल और आंटी के रिश्ते में ज्यादा सुविधा महसूस करती है। हमारे लोक जीवन से संबंधित कई शब्दों का स्थान विदेशी शब्दों ने ले लिया है, जिसके कारण नई पीढ़ी उन शब्दों और उनके महत्व से पूरी तरह अपरिचित है। जो पीढ़ी संस्कृति की वाहक है, वो पीढ़ी बाज़ार की चकाचौंध में उलझी हुई है। बर्गर और पिज़्ज़ा उनकी प्राथमिकता है और शिक्षा पूर्ण कर लेने के बाद किसी विदेशी कंपनी में नौकरी पा लेना या विदेश में जाकर बस जाना उनका उद्देश्य है। यह सांस्कृतिक विलय का नतीजा है, जिसे विश्वग्राम के नाम पर बहुत बढ़ा-चढ़ा कर पेश किया जा रहा है।

इस संपूर्ण विवरण से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि भारत जैसे प्रधान देश और आध्यात्म पर आधारित संस्कृति वाले देश में लोगों की विचारधारा और मानसिकता का आधार अन्य संस्कृतियों से भिन्न है, परंतु नए दौर में होने वाले परिवर्तनों ने उसके समक्ष कुछ चुनौतियाँ खड़ी कर दी हैं। स्वयं को भीड़ की गति के बराबर चलने का प्रमाण देने के लिए हमने अपनी स्वयं की

गति को कहीं खो दिया है। पाश्चात्य संस्कृति के आधुनिकीरण के कारण हमने अपनी स्वयं की पहचान को स्वयं से दूर कर दिया है। इसमें पाश्चात्य-संस्कृतियों का दोष नहीं है, अपितु हमारी स्वयं की प्रतिबद्धता में शिथिलता आ गई है। इसी शिथिलता के कारण हमारी सांस्कृतिक विरासत क्षीण होती जा रही है। इसी कारण हमारी भाषा का स्वरूप भी बदलता जा रहा है। बहुसंस्कृतियों के इस दौर में विश्व की सबसे प्राचीन भाषाओं में गिनी जाने वाली हमारी भाषा का अस्तित्व भी अन्य अनेक भाषाओं की भाँति खतरे में है। इसका सबसे बड़ा कारण है कि हम अपनी लोक विरासत को विस्मृत करते जा रहे हैं। लोक भाषाओं के विलुप्त होने के कारण ही विदेशी भाषाएँ हमारी आम बोलचाल का हिस्सा बनती जा रही हैं। विदेशी ढांचे के अनुरूप तैयार की गई शिक्षा नीति भी इसके लिए उत्तरदायी है। साधारण जनमानस, राजनैतिक व्यवस्था और आर्थिक नीतियाँ आदि सभी इस सांस्कृतिक विघटन में योगदान दे रही हैं। इसलिए आवश्यकता है कि सांस्कृतिक प्रतिबद्धता के प्रति चेतन हुआ जाए। अपनी सांस्कृतिक पहचान के बिना हम भीड़ में खोए हुए मुसाफिर की भाँति भटक सकते हैं। भारतीय संस्कृति और भारत की लोक भाषाएँ भारतीय समाज की विशिष्ट पहचान को बनाए रख सकती हैं। इसलिए इनके प्रति एक नए और सकारात्मक दृष्टिकोण का संचार करने की आवश्यकता है। विश्वग्राम और बहु-संस्कृति की अवधारणा की सार्थकता तभी सिद्ध हो सकेगी जब यह अवधारणा वास्तव में समस्त संस्कृतियों के उत्थान के भाव से प्रेरित हो, जैसा कि आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं, "जब हम मिलन के प्रश्न पर विचार करते हैं तो हमारा उद्देश्य ऐसे मिलन से है, जिससे समूची मनुष्यता कल्याण की ओर अग्रसर हो सके।"[11] ऐसे सांस्कृतिक मिलन से समस्त संस्कृतियों, भाषाओं और साहित्य का विकास होता है तभी वास्तव में बहु-संस्कृति की अवधारणा सार्थक सिद्ध हो पाएगी।

संदर्भ सूची :

1. आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, अशोक के फूल, (दिल्ली : लोकभारती प्रकाशन, ग्यारहवाँ संस्करण) पृ.-75
2. नंदकिशोर आचार्य, संस्कृति का व्याकरण, (बीकानेर : वाग्देवी प्रकाशन, 1997) पृ. -25
3. निर्मल वर्मा, पत्थर और बहता पानी, (बीकानेर: वाग्देवी प्रकाशन, 2000) पृ.-11
4. निर्मल वर्मा, अतीत : एक आत्म-मंथन, पृ.-23
5. निर्मल वर्मा, पत्थर और बहता पानी, (बीकानेर: वाग्देवी प्रकाशन, 2000) पृ.-10
6. सच्चिदानंद सिन्हा, भूमंडलीकरण की चुनौतियाँ, पृ- भूमिका से
7. अभय कुमार दुबे, भारत का भूमंडलीकरण, दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृ.-439
8. सुरेंद्र कटारिया तथा रवींद्र वर्मा (संपा.), वैश्वीकृत भारत : प्रभाव एवं बाधाएँ, दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस, पृ.-60
9. पुष्पल सिंह, 21वीं शती का हिंदी उपन्यास, पृ.-19
10. सुनीता तिवारी, समकालीन हिंदी निंबधों में लोक चेतना, हिंदी, अनुशीलन, सितंबर, 2008, पृ.-35
11. आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, अशोक के फूल, पृ.-65

– सहायक प्रवक्ता, हिंदी विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला (पंजाब)

❑❑❑

प्रोफेसर कट्टमणी से एक साक्षात्कार

डॉ. अनीता गांगुली

डॉ. अनीता- जब मुझे यह पता चला कि वी. सी. बनकर अमरकंटक विश्वविद्यालय जा रहे हैं तो मुझे बहुत प्रसन्नता का अनुभव हुआ। डॉ. साहब! मैं आपसे यह पूछना चाहती हूँ कि जब आप वी. सी. बनकर यहाँ आए तो आपने इस विश्वविद्यालय में क्या देखा? कैसा अनुभव हुआ?

प्रो. कट्टीमणी- धन्यवाद, खुश होने का अधिकार आपके पास है क्योंकि हम सभी हिंदी जगत के लोग हैं। हम सभी हिंदी भाषी और साहित्य के विद्यार्थी हैं। पढ़ना और पढ़ाना हम लोगों का काम है। आपको बहुत-बहुत धन्यवाद, आपने अपनी खुशी जाहिर की। दूसरी बात यह है कि मुझे यहाँ आने के बाद ऐसा लगता रहा कि क्यों मैं इतनी दूर जंगल में आ गया क्योंकि जहाँ से आया हूँ (कर्नाटक से) वहाँ मेरा वी.सी. बनना लगभग तय था। पता नहीं मेरी अंदरूनी बात थी जो कह रही थी जो पूरी तरह स्थापित विश्वविद्यालय है वहाँ जाकर मुझे क्या करना। वेतन देने से ज्यादा कुछ काम नहीं है। लगा कि जहाँ चैलेंजेस है, जहाँ कठिनाइयाँ है, जहाँ मैं कुछ करके दिखा सकता हूँ उस जगह मुझे जाना चाहिए। ऐसा मेरा दिल कहता था। यहाँ आने के बाद कुछ दिन या कहिए कुछ महीने यह अंतर्द्वंद्व या संघर्ष लगातार चलता रहा। मुझे क्या करना चाहिए? या फिर मुझे यहाँ से भाग जाना चाहिए। अंत में मेरे दिल ने कहा कि नहीं, मुझे यहाँ डटकर काम करना है। मैंने काम शुरू किया। यहाँ काम करने कराने के चैलेंजेस बहुत हैं। दूरियाँ बहुत हैं। भगवान की दया से जो सहयोगी हैं उनके सहयोग से मैं धीरे-धीरे इस पर काबू पाता गया। कुछ दिनों में मैं यहाँ की टोपोग्राफी, जनजातिय लोगों की विशेषताओं, कमजोरियों तथा यहाँ की जमीन की हकीकतों से वाकिफ होता गया। अपने आप को फैलाता गया। इसके बाद यदि आप समझते हैं कि मैं यहाँ सफल हूँ तो सफलता के पीछे सरकार का बहुत बड़ा वरदान है। हमारा विश्वविद्यालय जो चाहता है सरकार हमें देती रही है। इसलिए यहाँ तीन बरस से काम करते-करते मुझे कोई रंज नहीं, दुख नहीं। नो रिग्रेट, केवल खुशियाँ ही खुशियाँ हैं।

डॉ. अनीता- आपने इस विश्वविद्यालय के संदर्भ में क्या-क्या परिवर्तन किए?

प्रो. कट्टीमणी- परिवर्तन यह हुआ कि यह आदिवासी विश्वविद्यालय के नाम से है। देश के कई भाग, कई इलाके, कई जाति धर्म के लोग यहाँ नौकरी करने आए हैं और अच्छी तरह नौकरी कर रहे हैं। लेकिन मेरा हमेशा यह मानना है कि "इट इज ए स्टैवलिस एन एक्ट ऑफ पार्लियामेंट" में यह कहा गया है कि आदिवासी विश्वविद्यालय रहेगा और केंद्रीय विश्वविद्यालय रहेगा। आदिवासी विश्वविद्यालय बहुत बड़ा परिचय है। यहाँ जो भी रहेगा आदिवासी के अस्तित्व को दोहराएगा। यहाँ अंग्रेजी के प्रोफेसर हैं प्रो. कृष्ण सिंह जो मेरे सामने हैं उनसे मेरा आग्रह रहता है कि आप पाठ्यपुस्तक या पाठ्यक्रम में आदिवासी एलिमेंटस को जोड़िए। आदिवासी साहित्य को जोड़िए। आप हिंदी के हैं तो हिंदी में जोड़िए। आप वनस्पति विज्ञान के हैं तो आदिवासी वनस्पति को जोड़िए। आप दर्शन के हैं तो आदिवासी दर्शन को जोड़िए। इसमें मेरे सहयोगियों का

बहुत सहयोग है। उन लोगों ने अपने आप को बदल दिया तथा वास्तव में इसको आदिवासी विश्वविद्यालय बना दिया। फिर दूसरा करेक्टर यह है कि यह नेशनल विश्वविद्यालय है। केवल मध्य प्रदेश, यू. पी. या छत्तीसगढ़ का विश्वविद्यालय नहीं है। यहाँ केरल के लोग होने चाहिए। यहाँ तमिलनाडु के लोग होने चाहिए। ओडिशा और बंगाल के आदमी होने चाहिए। राँची और छत्तीसगढ़ के लोग होने चाहिए। हिमाचल, कश्मीर के लोग होने चाहिए। मैंने इस पर ध्यान दिया। इस बार यहाँ 22 राज्य प्रतिनिधित्व करते हैं। यहाँ नौकरी करने वाले ही अलग-अलग देश या अलग राज्य के नहीं हैं विभिन्न राज्यों के छात्र भी इधर आ गए। मैं अभी बहुत खुश हूँ क्योंकि वास्तव में हमारा विश्वविद्यालय आदिवासी विश्वविद्यालय तथा साथ ही केंद्रीय विश्वविद्यालय भी बन गया।

डॉ. अनीता- अच्छा मैं एक बात पूछना चाहती हूँ इस विश्वविद्यालय की भावी योजनाएँ क्या-क्या हैं?

प्रो. कट्टीमणी- भावी योजनाएँ बहुत हैं क्योंकि जैसा कि आप भी जानती हैं अंग्रेजी में एक कहावत है- 'स्काई इज दी लिमिट्स' परंतु हमारी कहावत है। 'स्काई इज नॉट लिमिट' आकाश के उस पार भी हमको विस्तरित होना है। देश के हर भाग, हर राज्य में हमारा एक सेंटर होना है, हमें एक सेंटर खोलना है। दुनिया में जितनी ज्ञान शाखाएँ हैं उन सबके विभाग खोलने हैं। मैं खुद आदिवासी हूँ यहाँ या कहीं भी अन्य विश्वविद्यालय में मैंने देखा हम डिग्री दे देते हैं। विश्वविद्यालय कभी यह नहीं सोचता कि इनको नौकरी मिलती है कि नहीं? हमारा विश्वविद्यालय यह चाहता है कि उनको नौकरी मिलनी चाहिए। डिग्री के साथ-साथ उनमें एक कौशल होना जरूरी है। इस के लिए एडज्वांनिग कोर्सेस, होने चाहिए। हिंदी का छात्र भी एम. ए. करके घर बैठे-बैठे कमा सकता है इंग्लिश के बच्चे कमा सकते हैं। बॉटनी के बच्चे नौकरी के पीछे नहीं पड़ेंगे। वे एक स्किल डवलॅप करेंगे। मेरा बहुत बड़ा सपना है कि हमारा विश्वविद्यालय स्किल का बहुत बड़ा विश्वविद्यालय बने। एक रोल मॉडल बने और इंदिरा गांधी राष्ट्रीय आदिवासी विश्वविद्यालय के बच्चे डिग्री करते-करते कुछ कमाना या कुछ करना शुरू कर दे, यही मेरा उद्देश्य है।

डॉ. अनीता- बहुत अच्छा। डॉ. साहब अब मैं थोड़ा पीछे जाना चाहती हूँ। मानू के आप अपने अनुभव बताइए।

प्रो. कट्टीमणी- यह मेरे लिए बहुत प्रिय प्रश्न है। मैं अक्सर अपने इस विश्वविद्यालय में कहता हूँ- 'मानू मेक मी वाइस चांसलर' जब मैंने वहाँ 2007 में कार्यभार संभाला तो यह यंग विश्वविद्यालय था। वहाँ कुछ प्रोफेसर थे लेकिन ये अलग-अलग कॉलेजों से प्रोफेसर बनकर आए थे। मैंने सीधे प्रोफेसर से प्रोफेसर के रूप में ज्वाइन किया। कर्नाटक विश्वविद्यालय का अनुभव मेरे पास था। इससे मैं छह महीने में इस विश्वविद्यालय में हावी हो गया और उस विश्वविद्यालय ने मुझे बहुत बड़ा काम दिया। मैंने दो वाइस चांसलर के साथ काम किया- प्रो. पठान और प्रो. मियाँ। प्रो. मिया ने मुझे इतना काम दिया कि मैं सुबह 9 बजे से रात 9 बजे तक काम करता था। कभी-कभी थककर चूर होकर मैं कहता था- रहम कजिए थोड़ा कम काम दीजिए तो वे बोलते थे अरे वी.सी. बनना है तो फोकट का समझे हो क्या? मैंने कभी कोई सपना नहीं देखा था लेकिन वे लोग बोलने लगे कि मैं वी.सी. बनूँगा। मुझे वी.सी. बनना चाहिए। उनकी बातों से मेरा विश्वास बढ़ने लगा। मैं सौचने लगा- वी. सी. बनने के लिए मुझे और अच्छा बनना है, और काम करना है, सब सीखना है। इस तरह मानू ने, हैदराबाद ने मुझे एक केंद्रीय विश्वविद्यालय का कुलपति बना दिया।

डॉ. अनीता- मैं यह जानना चाह रही हूँ कि आपने शैक्षिक जगत में कैसे और कब पदार्पण किया?

प्रो. कट्टीमणी- मेरी नियुक्ति कर्नाटक कॉलेज धारवाड़ में सन् 1982 में हुई और बाद में 2003 में मैं विश्वविद्यालय का प्रोफेसर बन गया। बस लोग कहने लगे कि यह आदमी कर्नाटक विश्वविद्यालय का वी. सी. बनेगा। कुछ ऐसा भी हुआ कि कुछ दोस्त भी हुए और कुछ शत्रु भी। बड़ी-बड़ी जिम्मेदारियाँ मैंने धारवाड़ में संभाली। एक जिम्मेदारी की बात मैं आपको बताना चाहूँगा कि वहाँ बहुत बड़ा फिजिकल एजुकेशन एंड स्पोर्टस डिपार्टमेंट है। वह फाइनल सर्टिफिकेट लेने मेरे पास आया। बोला, सर मैं आपके घर आना चाहता हूँ तो मैंने कहा मेरा घर तो यही है। आ जाइए। दूसरे दिन वह आया और बोला-सर, ये पैकेट है। मैंने पूछा इसमें क्या

है? तो बोला - सर यह मिठाई है तो मैंने कहा इसे खोलिए, खाइए। नहीं सर इसे मत खोलिए। नहीं, नहीं मैं मिठाई खोलूँगा। पैकेट खोला तो पैसे थे। मैंने उनसे पूछा कितने है? तो बोला पाँच लाख है। हम पाँच प्रतिशत देते हैं।

मैंने कहा- आप यहाँ रखिए। ऐसा कीजिए कि यह 5 प्रतिशत की छूट आप हमारे विश्वविद्यालय को दे दीजिए। आप अपने फाइनल बिल में से 5 लाख रुपए का एकाउंट कम कर दीजिए और उन्होंने ले लिया। उनकी इंसल्ट भी नहीं होने दिया मैंने। तुरंत जाकर मैंने वी. सी. साहब को बता दिया कि 'सर कॉन्ट्रेक्टर 5 प्रतिशत देना चाहते थे।' उन्होंने मजाक में कहा "ले लिए होते।" तुम तो स्कूटर पर चलते हो। मैंने कहा- सर मेरे पास कार भी है। कार मैं फैमिली के लिए रखता हूँ। वी. सी. ने मीडिया को बता दिया और वह पेपर में छप गया। इस तरह भगवान ने मुझे बड़े-बड़े क्रेडिट्स दिए और जब समाज ने कहा- यह अच्छा आदमी है गरीब परिवार से आए हैं। ये बड़े बनेंगे तो मुझे लगा। हाँ! मुझे और अच्छा बनना चाहिए। मुझे आगे जाना चाहिए। भगवान की कृपा है लोगों की दुआएँ हैं।

डॉ. अनीता- ये बहुत ही रोचक कथा है। हाँ, डॉ. साहब आपने आगे बहुत लिखा है। आपकी लेखनी किस दिशा में चली?

प्रो. कट्टीमणी- देखिए मैडम। कन्नड मेरी मातृभाषा है और आज भी मैं मानता हूँ कि कन्नड का लेखक हूँ। दो कविता संकलन मेरे छप चुके हैं और तीसरा कविता संकलन अभी छपने जा रहा है। यात्राओं के विवरण पर मैंने एक किताब लिखी है। तीन समीक्षाओं का संकलन तथा अनेक अनुवाद मैंने किए हैं। हिंदी से कन्नड में, कन्नड से हिंदी में, हिंदी से इंग्लिश में मैंने अनुवाद किए हैं। मैडम मैं बता दूँ कि मैंने जो काम किए हैं उससे ज्यादा पुरस्कार और सम्मान मुझे जीवन में मिला है। अभी-अभी एक पुरस्कार अभी आपके सामने है। वैसे इसे आप लोगों को दिखाने लाया हूँ। यह राष्ट्रीय पुरस्कार है। एक लाख रुपए का चेक है। मेरे नाम पर मेरे शिष्यों ने एक ट्रस्ट बनाया है। जितने भी पुरस्कार मिलते हैं मैं ट्रस्ट को देता हूँ और यह चेक भी मैं ट्रस्ट को दूँगा।

डॉ. अनीता- कहाँ पर बनाया है ये ट्रस्ट?

प्रो. कट्टीमणी- यह धारवाड़ में है। तीन बरस में एक बार 50 हजार का एक अवार्ड देते हैं। यह लिटरेचर अवार्ड हैं। नेशनल अवार्ड है। चंद्रशेखर कंभार जिनको ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला है। उन को हम लोगों ने पुरस्कार दिया है।

डॉ. अनीता- अच्छा! अच्छा यह गोल्ड मेडल कितने ग्राम का है।

प्रो. कट्टीमणी- ये सोना (बीस ग्राम) का गोल्ड है। यानि की दो तोला,

डॉ. अनीता- डॉ. साहब आपको बहुत-बहुत बधाई इतने बड़े पुरस्कार के लिए और आपको पुरस्कार मिलते ही रहें। मेरी यही इच्छा है कि आप आगे से आगे बढ़ते जाए, ऊपर जाएँ और हम सब खुश होते जाएँ।

प्रो. कट्टीमणी- धन्यवाद!

डॉ. अनीता- और, डॉ. साहब एक अंतिम प्रश्न पूछना चाहती हूँ कि विश्वविद्यालय प्रांगण में स्वच्छ भारत अभियान हर जगह नजर आ रहा है। इसके लिए आपने क्या-क्या प्रयास किए?

प्रो. कट्टीमणी- हमारे स्वच्छ भारत की प्रेरणा हमारे प्रधानमंत्री जी का है। मैं अक्सर गुस्से से अपने लोगों से कहता हूँ कि भारत को स्वच्छ मोदी जी ही नहीं रख सकते। मोदी जी ने प्रधान मंत्री होने के नाते एक मैसेज दिया। इस मैसेज को देशवासी होने के नाते हमें देखना है। अमल में लाना है। देखिए जहाँ-जहाँ मैंने काम किया स्वच्छता पर विशेष ध्यान दिया। उर्दू विश्वविद्यालय को एकदम स्वच्छ, साफ-सुथरा रखने में, कानून का पालन कराने में मूल प्रेरक हमारे प्रधानमंत्री जी है। सहयोगी अध्यापक और छात्र-छात्राओं का बहुत बड़ा योगदान है जिसके कारण हमारा कैंपस बहुत साफ-सुथरा है। इसे और भी साफ-सुथरा रखने का मेरा इरादा है और आप जानते हैं कि हम सब भारतवासी हैं। स्वच्छता भगवान का प्रतीक होता है। भगवान यदि है तो सब कुछ स्वच्छ है। जहाँ गंदा है वहाँ भगवान नहीं रहते। इसीलिए हमने कैंपस में भगवान को रखा है। हमें कैंपस में भगवान को रखना है तो स्वच्छता पालन करना जरूरी है।

डॉ. अनीता– और अभी हमने यहाँ तालाब देखा, आपके युनिवर्सिटी केंपस के अंदर और मुझे यह अच्छा लगा। मैं वहाँ दो दिन बैठी थी। मतलब कैसे आपने इसको बनवाया।

प्रो. कट्टीमणी– तालाब की एक स्टोरी है। यहाँ जो 14 जनवरी को मैंने ज्वाइन किया। उन गर्मियों के दिनों में पानी की समस्या आई। इधर मैंने जो नेट में रिकार्ड देखा कि यहाँ 60 इंच पानी गिरा था। 60 इंच पानी का मतलब चेरापूँजी की तरह। यहाँ जो डेमोग्राफी मैंने देखा तो यह पानी गिरता है और बह जाता है। रुकता नहीं। यह जमीन ही ऐसी है। कि हमने सोचा कैस वाटर हार्वेस्ट किया जाए? हमने काम शुरू किया जो बोरबेल फेल थे वहाँ हमने रिचार्ज प्वाइंट बनाया। अगली बरसात में जब पानी बरस रहा था बोरवेल रिजार्च हो गए। मैं रेनकोट पहनकर पूरा घूमा। मैंने देखा पानी कहाँ-कहाँ जाता है? कितना जाता है? मुझे पता चला कि यह पानी नदी की तरफ बहता है। मेरे मन में विचार आया कि इसको व्यर्थ होने के बदले हम इसे रोकेंगे। सरकार से मैंने पैसा माँगा तो सरकार ने धनराशि दी। अभी अंदाजा है कि 2 लाख लीटर पानी यहाँ जमा है। मतलब यह कि एक बरस यहाँ पानी नहीं भी गिरेगा तो इस पानी से हम रह सकते हैं। रास्ते में जो पानी जाता था इससे रास्ता खराब होता था। हमने छोटे-छोटे रिंग्स बनाए जहाँ पानी जाएगा। वहाँ सर्कुलेशन होगा जिससे रिचार्ज भी होगा और राड की रक्षा भी होगी। किसान का बेठा होने के नाते हम लोग जानते हैं कि कैसे पानी को रोका जा सकता है। हमारे विश्वविद्यालय ने यह सोचा कि रूफ टाप पर जितना पानी गिरेगा उसको हम अगले बरसात से जमा करेंगे। रीयूज करेंगे।

डॉ. अनीता– आप सोलर सिस्टम का भी काफी अच्छा उपयोग कर रहे हैं।

प्रो. कट्टीमणी– सोलर सिस्टम को भी हमारे दो छात्राओं ने तथा दूसरे मेस भवन में लगाया है वहाँ जो वाटर हीटर है वह सब सोलर से काम कर रहें हैं। जिससे बड़ी मात्रा में बिजली की बचत के साथ ही छात्रों को सर्दियों में गर्म पानी की सुविधा उपलब्ध हो रही है। तापमान कम होने के साथ ही गर्म पानी का उपयोग काफी बढ़ जाता है। वह सब अब काम सोलर से हो रहा है। हम बिजली का प्रयोग नहीं करते और हमारे पास जो सिवरेज ट्रीटमेंट प्लांट पहले बना था अब चार बन गए हैं। उस पानी को रीयूज करके हम प्लांट के लिए, पेड़ पौधों के लिए, पार्क के लिए उपयोग करते हैं।

डॉ. अनीता– आपने यहाँ तक काफी ग्रीनरी बनाए रखी है पपीता, सहजन और दूसरे पेड़ भी बहुत दिखाई दे रहें हैं। उनके बारे में बताइए यह आपकी सोच है या पहले से ही थे।

प्रो. कट्टीमणी– पहले से भी कुछ थे। पपीता और सहजन के बारे में मैंने सोचा कि बहुत जल्दी बढ़ने वाले पेड़ कौन से है। केवल पेड़ ही नहीं बल्कि उसका उपयोग भी होना चाहिए। ये पीके-2 नामक वेराइटी है जो तमिलनाडू की है डॉ. स्वामीनाथन एग्रीकल्चर रिसर्च इंस्टीट्यूट ने किया है। ये रोबोस्ट होता है और बहुत जल्दी होता है। लंबी-लंबी फलियाँ देता है वैसे दो-तीन किलो बीज मंगाकर हमने डाल दिया और वह बहुत जल्दी आया। इससे क्या हुआ हमारे अध्यापक उसके पत्ते खाते हैं उसकी फलियाँ खाते हैं। सहजन को मूँगा भी कहा जाता है। इसे ड्रम स्टिक भी कहते है। उसके बाद आंध्र प्रदेश से आठ दस पेड़ मंगवाकर लगाना शुरू किया। जो दस फीट के लंबे-लंबे होते है इंसमें कोई विशेषता नहीं। 'यू आर डूइंग योर ड्यूटी' हम अपना कर्तव्य कर रहे हैं।

डॉ. अनीता– अच्छा! अभी जो छह मंजिली इमारत देखी। वी. सी. हाउस के बगल में वह क्या है?

प्रो. कट्टीमणी– वह ट्रांजिक्ट हाउस है। मतलब कुछ दिनों के लिए देश-विदेश से विद्वान और शोधार्थी यहाँ आएँगे, रिसर्च करने, आदिवासी संस्कृति कला, खानपान, रीति-रिवाज देखने, आदिवासी संगीत सीखने यहाँ आएँगे तो एक महीना आप गेस्ट हाउस में नहीं रह सकते। एक दिन का होटल का खाना नहीं खा सकते। वहाँ चालीस है सिंगल फ्लैट बेड रूम और सभी सुविधाएँ है। वहाँ आप को कुछ भी नहीं करना है। सब कुछ रहेगा। अपने कपड़े लेकर आइए और रहिए। आप खाना पकाकर खा सकते हैं।

डॉ अनीता– मैडम, बहुत सुंदर योजना है। अभी आपसे बात करते समय आपने बताया था कि कुछ हर्बल... पार्क बनाना होगा, यह हर्बल पार्क क्या होता है।

प्रो. कट्टीमणी– हर्बल पार्क का अर्थ है परंपरागत, रूढ़िगत। आदिवासी जन–जीवन की तरह हर्बल पौधों के माध्यम से जो रोग निदान करते हैं उन पौधों को हम यहाँ लगाना चाहते हैं। इससे हमारे बच्चों को इसका फायदा होगा। इसका फायदा विश्वविद्यालय तथा आने वाली पीढ़ी को भी मिलेगा। यह भारत सरकार की सोच है। मैं जो भी कर रहा हूँ ये भारत सरकार की सुविधा से। भारत सरकार की नीतियों में यह लिखा हुआ है। बस मैं उसको लागू कर रहा हूँ अमल में ला रहा हूँ।

डॉ. अनीता गांगुली– बहुत बढ़िया सुझाव है आपका। आप सिर्फ बोल नहीं रहे हैं, कर भी रहे हैं। सब लोग देख रहे हैं। डॉ. साहब, धन्यवाद आपको। आपने मुझे इतना समय दिया। मैं अपने को धन्य समझती हूँ आपसे आज मुलाकात हुई और आगे भी होती रहेगी।

प्रो. कट्टीमणी– धन्यवाद।

डॉ. अनीता गांगुली– धन्यवाद सर!

– केंद्रीय हिंदी संस्थान, 2–2–12/5, डी. डी. कॉलोनी, शिवम रोड, हैदराबाद–500007

❑❑❑

काशी

इंदुकांत शर्मा

मेरा नाम काशी है
दुनिया मुझे वाराणसी और
बनारस के नाम से भी जानती है,
गंगा किनारे बसे शहरों में
मैं ही सबसे अधिक
पवित्र और पुराना हूँ
हिंदू धर्म का सनातनी तराना हूँ।
गंगा की लहरें
मेरे पवित्र कदमों को छू कर
और अधिक पवित्र हो जाती हैं
और मेरे कदमों पर बने
सत्तासी घाटों की माया में घिर कर
कुछ पल को अपनी राह भी बिसर जाती हैं
मेरी आत्मा की तंग गलियों में
मृत्यु की प्रतीक्षा करती ज़िंदगी
करवटें बदलती रहती है
हर चिता की कहानी
लहरों से सुनती है, कहती है
एक मौन प्रतीक्षा मृत्यु की
न कोई शिकवा न गिला
न भय, न संताप
मैंने देखा है यहाँ
मृत्यु की परतों को
परत दर परत खुलते हुए
मृत्यु के इन अबूझे रहस्यों को
मुझसे बेहतर कौन समझेगा,
मेरे घाटों पर कभी न बुझने वाली चिताग्नि
दुनिया भर के पर्यटकों के लिए
किसी कौतूहल से कम नहीं
इस चिताग्नि को
अपने बेहतरीन कैमरों में कैद करने वाले
पर्यटक, इतना भी नहीं समझते कि
मृत्यु आज तक
किसी कैमरें में कैद नहीं हो पाई
तस्वीर में उभरती वो अग्नि लपटें
सिर्फ एक पीली उदास रौशनी है
जिसके प्रकाश में
मृत्यु हमेशा जगमगाती रहती है
और जिंदगी मुस्कुराती रहती है
वास्तव में आत्मा का पंछी
किसी कैमरे में कैद हो ही नहीं सकता
वह तो घने आकाश उड़ने के इंतज़ार में
किसी टूटी मुंडेर पर बैठा मिलेगा
और चिताग्नि की जलती लकड़ियों के संगीत के साथ
गंगा की लहरों पर सवार होकर
गा रहा होगा मृत्यु का अमर गीत,
और जब ये सारी दुनिया गहरी नींद में सो जाएगी
मैं अकेला तन्हाँ सुनूँगा
मृत्यु का वही
चिर परिचित अमर गीत

– बी-4/177, सफदरजंग एंक्लेव, नई दिल्ली-110029

❑❑❑

प्रात:काल का समय

विमला उपाध्याय

मनुष्य लाख थका रहे
घंटों सोता रहे घोड़े बेचकर
पर सुबह होने की प्रतीक्षा
रहती है सबको
कि इससे होता है जागरण,
जड़-चेतन में फैलती है
नई चेतना, प्रेरणा, आशा
कैसे जान जाती है चिड़िया
पूर्व दिशा में भरती है उड़ान
अविराम, अथक मन रमाती हुई
यहीं भरता है आशा, उत्साह, उमंग
कि अंधकार की सत्ता शाश्वत
नहीं है, कभी, कहीं भी
मूल सत्ता प्रकाश की है
यह प्रात:काल बताता है
और मनुष्य इसी में
रमा रहता है अपने को अनुकूल बताते हुए।

– 'वृंदावन', मनोरम नगर, एल. सी. रोड, धनबाद, झारखंड- 826001

❑❑❑

कुछ तो है

प्रियदर्शी खेरा

रोज सबेरे
मेरी देहरी पर
एक गाय आती है
रंभाती है
मुझे बुलाती है
मैं, उसे बासी रोटी खिलाता हूँ
दुलारता हूँ, पुचकारता हूँ
वह रोटी खाती है
प्रेम से सिर हिलाती है
और चली जाती है
मेरे और गाय के बीच
कुछ तो है!

मैं
जब उस शिलाखंड पर
बैठता हूँ
तो असीम शांति पाता हूँ
और
उससे जुड़ जाता हूँ
फिर अपने आप में खो जाता हूँ
मेरे और शिलाखंड के बीच
कुछ तो है!

वह नदी
मुझे बार-बार बुलाती है
और मैं
खिंचा चला जाता हूँ
उस नदी के साथ
हँसता हूँ, खेलता हूँ, गाता हूँ
पर मन नहीं भरता
लौट-लौट कर आता हूँ
उसकी अथाह जल-राशि में
खो जाता हूँ
मेरे और नदी के बीच
कुछ तो है।
वह बरगद का बूढ़ा वृक्ष
जिसकी छाँह में आ कर
मैं तनाव-मुक्त हो जाता हूँ
जीवन-जीने की
जिजीविषा पाता हूँ
वह मुझे आश्रय देता है
विनिमय में
मुझसे, कुछ नहीं लेता है
मेरे और बरगद के बीच
कुछ तो है!
कुछ तो है!!

– 90-91 यशोदा विहार, चूना भट्टी, भोपाल (म. प्र.)

❑❑❑

झेलम से गंगा की ओर

पवन कुमार खरे

गंगा किनारे मेरा गाँव। नदी से कुछ ही दूरी पर मेरा विद्यालय। आषाढ़ का महीना। आज सुबह से ही बादल छाए हैं। घर से आकर अपनी कुर्सी पर बैठा ही था कि बारिश होने लगी। सभी शिक्षक-शिक्षिकाएँ पानी में भीगती आ चुकी हैं। बारिश की तिरछी बूंदों से बैडमिंटन के पोल, फुटबाल के गोल, सूखी पड़ी बाउंड्री वाल, खंभे, लान, युकेलिप्टस, बरगद, नीम के पेड़ दबी कुचली हरी घास सभी नहाने लगे हैं।

थोड़ी देर में बारिश रुक गई। हरी घास से ढका खेल का मैदान बारिश की बूंदों से चमक रहा है।

बारिश रुकते ही घासी घंटी बजाता है। सभी बच्चे लाईन में लगकर प्रेयर करते हैं। अपनी कक्षाओं में जाते हैं। आज रमेश सर छुट्टी पर हैं। उनका पीरियड लेने मैं बारहवीं कक्षा में जाता हूँ। कक्षा में जाते ही छात्र खड़े होते हैं। मैं उनके अभिवादन को स्वीकारते हुए बैठने का इशारा करता हूँ। सबसे पीछे की बेंच पर एक लड़की बैठी है। बुझी-बुझी आँखें, घबराया, शोकग्रस्त चेहरा, चेहरे पर किसी हादसे की गहरी छाया दिख रही है। मेरी ओर आशा भरी नजरों से देख रही है। पढ़ाते समय बार-बार मेरी नजर उसी ओर जा रही है।

पीरियड समाप्त होते ही मैं अपने चेंबर में जाकर कुर्सी पर बैठता ही हूँ कि वही लड़की मेरे सामने आकर खड़ी हो जाती है।

सर! मैं रेशमा अपने माँ-पिता के साथ कश्मीर के बारामूला से आई हूँ। बारहवीं कक्षा में एडमिशन लेना चाह रही हूँ।

तुम्हारे परिवार सहित यहाँ आने का कारण। मैंने पूछा।

रेशमा- इस संबंध में मैं अपने माता-पिता से आपको मिलवाऊँगी।

मैंने कहा-कल स्कूल खुलते ही उन्हें ले आना।

अगले दिल रेशमा के माता-पिता मेरे चेंबर में आ गए। डरे, सहमें, असुरक्षित व गहरी दहशत दोनों के चेहरों पर दिख रही है। कांपती आवाज में बोले-सर! मैं अब्दुल रहमान और ये मेरी पत्नी नाज़िरा है।

आप लोग अपनी जन्मभूमि छोड़ यहाँ पर क्यों आए हो?

रेशमा के पिता ने गहरी सांस भरते हुए कहा- सर! मेरा क्षेत्र एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ हर वाशिंदे की मनोदशा बड़ी ही संकीर्ण, पथरीली, दकियानूसी, दुरूह, काँटों से भरी है पर उस मार्ग से हटकर कोई चलना ही नहीं चाहता। बचपन से कनजरवेटिव, रेडिकेलाइज्ड मार्ग से चले आ रहे लोगों में यदि कोई मार्ग से हटकर चलने की कोशिश करता है तो उसे काफ़िर करार कर दिया जाता है। हम लोग इस मार्ग पर चलने से बेहद दुखी थे। इससे बाहर निकलने हेतु तड़पते थे। हिंसा, आतंक, निष्ठा, आस्था, विश्वास रहित यह मार्ग जो हमारे महान पूर्वजों की कीर्ति को कलंकित करता चला आ रहा है इस मार्ग को अल्लाह का लेप लगाकर पवित्र बतलाया जा रहा है। दुख तो इस बात का है कि इस मार्ग पर चलवाने वाले पतित पाखंडियों को दिव्य पुरुष माना जा रहा है।

क्या इसी मार्ग की परेशानियों के कारण घबराकर तुम परिवार सहित अपनी जन्मभूमि छोड़ यहाँ आए हो।

प्राचार्य जी। यह मार्ग इतनी आत्म भर्त्सना, आत्म कलुषता, सड़ी-गली पुरानी मान्यताओं से भरा कट्टर अवधारणाओं, व्याघातों वाला है जिसे कोई भी समझदार व्यक्ति स्वीकार्य नहीं कर सकता। इंसानियत को शर्मसार करने वाले इस मार्ग में भटकाव, झूठी निष्ठा, झूठा विश्वास ही था। ना तो कश्मीरियत की पहचान थी ना ही जम्हूरियत की विचारधारा। किस काम की ऐसी आस्था जिस कारण हमें अपने बेटों को उनका जीवन नाश करने हेतु जेहाद मार्ग पर भेजना पड़े। ये अलगाववादी, कट्टर सोच रखने वाले अपने बेटों की अच्छी शिक्षा देने हेतु उन्हें विदेशों में पढ़ने भेजते हैं, पर दूसरों के बेटों को तो जेहाद के नाम पर उनका जीवन नाश करते हैं। अल्लाह के उसूल उन पर लागू नहीं होते सिर्फ हमारे जैसे सामान्य परिवार के गरीबों पर लागू होते हैं।

मैंने सवाल किया- रहमान साहब! ऐसे दिव्य पुरुष जो अल्लाह के नाम पर हिंसा भड़का रहे हैं, स्कूलों, पुलिस स्टेशनों, तमाम सरकारी इमारतों पर आग लगवा रहे हैं उसे उनकी बुराइयों का मुकाबला करना, बहके हुए लोगों को समझाना, उनके विरुद्ध एकजुट होकर संघर्ष करना आपके लिए ज्यादा अच्छा था कि उनसे बचकर कायरों की भाँति भाग कर यहाँ आना ज्यादा अच्छा है।

सर जी! धर्म का लबादा पहने ये जेहादी विरोध करने पर जान ले डालते हैं। इन लोगों से तर्क-वितर्क करना अपनी जान देना है सारी कायनात में एक ही अल्लाह का साम्राज्य और अन्य रूपों वाले भगवानों के साम्राज्य में ये लोग बहुत बड़ा अंतर मानते हैं जबकी ज़र्रे-ज़र्रे में समाया अल्लाह परमात्मा एक ही है इसे हरगिज नहीं मानते। यही वजह है मैं बचपन से ही आए दिन इंसान की इंसान के प्रति क्रूरता, बर्बरता देखता चला आहूँ। ये कट्टरवादी सुशिक्षित, सुसंस्कृत, बेरहम दिल वाले अल्लाह के बंदे अपनी धाक जमाए बैठे हैं। अपने को नेक, ईमान वाला, खुदा मार्ग बतलाते हैं। सर, वास्तविकता कहूँ आपसे, जबसे इस कश्मीर में 370 धारा चल रही हैं। तभी से इन राजनेताओं की कुर्सियाँ सज रही है राज्य के बाहर का कोई वाशिंदा वहाँ पर बस नहीं पा रहा। पड़ोसी राज्य से आए दुखी अल्पसंख्यक परिवारों को, अन्य अल्पसंख्यक लोगों को इनकी जर-जमीन, जायदाद से बेदखल कर, बेइज्जत कर भगा दिया गया है।

रहमान जी! आपके साथ ऐसा क्या हो गया जिस कारण आपको परिवार सहित जन्मभूमि छोड़कर आना पड़ा?

हादसा बतलाने के पहले रहमान की आँखे लाल होती गई। आँसुओं का सोता आँखों से बह निकला। आँसुओं को रूमाल से पोंछता हुआ बोला- प्रिंसिपल साहब! शाम का वक्त था। मैं झेलम किनारे मस्जिद में मगरिब की नमाज अदा करने जा रहा था। नमाज अदा करते समय मैंने देखा मस्जिद में बहुत से बंदे ऐसे थे जो न तो खुदा के बंदे थे न ही कश्मीर के वाशिंदे। पर लोगों की उन पर गहरी आस्था थी। आयतों, उसूलों को गलत तरीके से पेश करते हुए शरीअत की ऊलजुलूल बातों को बतलाते हुए वे लोगों में धर्मांधता, उन्माद पैदा कर रहे थे। युवाओं को जेहाद के नाम पर भड़का रहे थे। स्कूलों में बच्चों को जाने से रोकना, विद्यालय भवनों को जलाना, बैंकों में डकैती, पुलिस थानों पर हमला, सेना की चौकियों को ग्रेनेड से उड़ाना तमाम विध्वंसक गतिविधियों की ट्रेनिंग दे रहे थे। मगरिब की नमाज पूरी होते ही कुछ ही घंटों बाद नमाज अदा करके मैं घर आ गया। खाना खाने के पश्चात् सो गया।

रात्रि के करीब दो बजे थे। बाहर से किसी के सांकल खटखटाने की आवाज आई। मैंने दरवाजा खोला तो देखा दो युवक चेहरे पर काला कपड़ा ढके खड़े थे। मैंने दोनों को अंदर आने के लिए कहा। वे दोनों अंदर आ गए। दोनों बाहर के बाशिंदे लग रहे थे। उन्होंने कहा- हम दोनों जेहादी हैं। हर घर से एक जेहादी बनाना चाह रहे हैं। मैं तुम्हारे बेटे को लेने आया हूँ उसे जैश ए मोहम्मद के कैंप में भर्ती करना है। उनकी बात सुन मैं घबरा गया। मुझे शंका हुई कि ये दहशतगर्द लोग हैं।

मैंने क्षमा याचना कर गिड़गिड़ाते हुए कहा- भाई जान! खुदा के नाम पर मुझे बख्शो। मेरा बेटा आदिल अभी छोटा है। मात्र 14 साल का है। आठवीं में पढ़ रहा है। डॉक्टर बनने की ख्वाहिश है उसकी। मैं इसे जेहादी नहीं बना सकता।

दोनों मेरी बात सुन भड़क उठे बोले-अल्लाह के

मार्ग की मजम्मत करने वाले काफिर तेरी इतनी हिमाकत तू सल्लललाहू अलेहे बसल्लम के उसूल की नाफरमानी पर उतर आया। इतनी गुस्ताखी। कयामत के दिन नबी के सामने तू अपना बदसूरत चेहरा लेकर जाएगा। अल्लाह की कड़ी फटकार पड़ेगी तुम पर। जालिम तू जहन्नुम की आग में जलाया जाएगा। ऐसी फटकार लगाते हुए उन्होंने मेरे बेटे को उठाया, मुँह पर काली पट्टी बांधी। पास ही बेटी गुलनिशा सो रही थी, उसे भी उठाया। उसकी सुंदरता से मुग्ध हो उसके मुँह पर भी काली पट्टी बांधी। दोनों को घसीटते हुए बाइक पर बिठलाया। दोनों पट्टी बंधी होने पर चिल्ला भी नहीं पाए। जाते समय हवाई फायर किए। दोनों को ले गए। मैं इस दर्दनाक दृश्य को देखता रह गया। बड़ी बेटी रेशमा पीछे के कमरे में सो रही थी।

उस रात हम सभी को रात भर नींद नहीं आई नाजिरा और रेशमा रात भर तड़प-तड़प कर रोती रहीं।

मैंने पूछा! इतनी विकट परिस्थिति में आपने क्या निर्णय लिया।

रहमान- प्रिंसिपल सर! आस-पास के लोगों को जब पता चला तो वे मिलने के लिए आए। सभी ने सलाह दी की आप पुलिस स्टेशन जाकर एफ.आई.आर. दर्ज करवा दें।

मुझे डर था कि एफ.आई.आर. दर्ज कर देने पर कहीं ये मेरे बेटे-बेटी का कत्ल न कर दें। पर नाजिरा ने भी कहा एफ.आई.आर दर्ज कराना जरूरी है।

मैंने सभी की सलाह पर एफ.आई.आर. दर्ज करवा दी।

एफ.आई.आर. दर्ज करने के एक ही दिन बाद मेरे पास फोन आया जिसमें एक दहशतगर्द ने मुझे डराते हुए कहा- शेख साहब! अपनी बेटी का भला चाहते हो तो अपनी एफ.आई.आर. वापिस ले लो। नहीं तो हम तुम्हारी प्यारी बेटी गुलनिशा को कहीं का न छोड़ेंगे। आबरू उतार कर रख देंगे।

मैं जवाब दे पाता कि फोन काट दिया गया। फोन सुनकर मैं बेहद डर गया। मैंने नाजिरा को भी यह नहीं बतलाया क्योंकि ऐसा सुनकर हो सकता वह खुद को संभाल न पाए और इस दुनिया से कूच ही कर जाए।

मुश्किल से एक पखवाड़ा न बीत पाया होगा कि सी.आर.पी.एफ. जवानों को खुफिया जानकारी मिली की झेलम के किनारे मस्जिद में दो दहशत गर्द छिपे हैं। उन्होने एक लड़के और एक लड़की को अगवा करके रखा है। सेना के बिग्रेडियर ने जब यह सूचना दी तब मुझे विश्वास हो गया कि ये मेरे बेटे-बेटी ही हैं।

रात का वक्त। वादी में बर्फीली ठंडी हवाएँ बह रही थी। मस्जिद में ईसा की नमाज शुरू होने वाली थी। बंदे मस्जिद की ओर चले जा रहे थे। मस्जिद से भारत विरोधी नारे लगने लगे। तभी सेना का सायरन बजा। सेना के अधिकारी ने सभी बंदों को चेतावनी देते हुए आवाज लगाई-कोई भी बंदा मस्जिद में न जाए। मस्जिद में आतंकवादी भारी मात्रा में हथियार, गोला बारूद के साथ घुसे हैं।

सेना के अधिकारी की चेतावनी सुन सभी नमाजी अपने-अपने घरों की ओर भागने लगे। मस्जिद के अंदर किसी की जाने की हिम्मत नहीं हुई।

उसी समय आतंकियों ने मस्जिद से चेतावनी देते हुए कहा- मेरा सभी सेना के जवानों से आग्रह है कि अपने कैंपों में वापिस चले जाएँ। कश्मीर छोड़कर चले जाएँ। हम आजादी चाहते हैं। यदि आप लोग नहीं मानेंगे तो शेख उर्रहमान के बेटे-बेटी को हमने बंधक बना कर रखा है। कोई भी सी. आर. पी. एफ का जवान यदि मस्जिद में घुसने की जुर्रत करेगा हम दोनों की हत्या कर देंगे।

तभी सेना के बिग्रेडियर ने माईक से आवाज लगाई - मातृभूमि में पैदा हुए, मातृभूमि में पले, मातृभूमि का नमक खाने वालों। किसी माँ के सुकुमार निर्दोष बच्चों का कत्ल कर उसकी आत्मा को तड़पाकर तुम किस परमात्मा को प्रसन्न करने जा रहे हो। अरे तुम्हें कभी भी अल्लाह की फज्ल न मिलेगी। बच्चों को छोड़ दो। बच्चों ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है।

सेना के बिग्रेडियर का आतंकियों ने कोई जवाब नहीं दिया तब ब्रिगेडियर ने नाजिरा को बुलवाया। कहा- नाज़िरा! तुम माँ हो। ये माइक लो। इन दहशत गर्दो से बेटों को छोड़ने के लिए गुजारिश करो।

नाजिरा ने गुहार लगाते हुए कहा- अल्लाह मार्ग पर चलने वाले जेहादियों, नबी के सदकों सारे जहाँ का माजिक, मौला परवरदिगार तुम्हें मेरे बेटों को मेरे सामने कत्ल करने, मेरी आत्मा को तड़पने की इजाजत कतई नहीं देता। मेरे बेटों को छोड़ दो। मैं माँ हूँ। मेरे बेटों को

यदि तुम मारोगे तो मैं भी जिंदा नहीं रह पाऊँगी। तब कयामत के दिन तुम खुदा के सामने मुँह दिखलाने लायक भी नहीं रह पाओगे। तुम्हे पता नहीं तुम अल्लाह की इच्छा के विरुद्ध कितना बड़ा गुनाह करने जा रहे थे। कोई भी तुम्हें पाक दामन न समझेगा। जेहादियों यह उन्माद, जुनून, झूठी आस्था निर्दोष बच्चों को मारने की इजाजत नहीं देती। मेरे बेटों को छोड़ दो जेहादियों। मैं जिंदगी भर अल्लाह से तुम्हारी हर खुशी, हर मुराद के लिए दुआ मांगती रहूँगी।

माँ नाजिरा की चीखती, तड़पती, काँपती गुहार भरी आवाज सुन मस्जिद के अंदर से आवाज आई- अरी बदनसीब माँ। तू अपने बेटों की जान की खातिर क्यों गुहार लगा रही है तेरा बेटा अल्लाह के मार्ग पर चल चुका है। अल्लाह से मिलने जा रहा है। आजादी के नाम शहीद होने को फड़फड़ा रहा है। सुन, अपने बेटे की आवाज। वह क्या कह रहा है।

अम्मी! तू मेरी चिंता मत कर। मैं अल्लाह से मिलने जा रहा हूँ। कश्मीर की आजादी की खातिर मैं उन हजारों जेहादियों का अपमान नहीं सह सकता जो खुदा के मार्ग पर चलते हुए इस्लाम की रक्षा हेतु शहीद हो गए। मुझे शहीद होना स्वीकार है। तू मेरी चिंता मत कर। मरने के बाद मेरी कब्र पर फातिहा पढ़ने जरूर आना। मैं अल्लाह के पास जाकर तेरी हर खुशी की दुआ मांगूगा।

बेटे की आवाज सुन बिग्रेडियर ने कहा- नाजिरा! सुन रही हो बेटे की आवाज। बेटे को ड्रग्स और नशीली दवाईयाँ देकर उसका रेडिकेलाइजेशन कर, उन्माद जुनून भरा माईंड सेट कर दिया गया है। वह डरा हुआ है। उससे ऐसा कहलवाया जा रहा है। यह पड़ोसी राष्ट्र का कश्मीर के युवा-युवतियों के विरुद्ध एक मनौवैज्ञानिक युद्ध है जिसमें यहाँ के युवा-युवती जाल में फंसते चले जा रहे हैं। अपनी जिंदगी तबाह कर रहे हैं। कलम-कागज की जगह बंदूक गोला, हथियार पकड़ रहें हैं। फिर भी नाजिरा मैं माँ के दर्द को समझता हूँ। अब दोनों घर जाओ। हम लोग पूरी कोशिश करेंगे कि तुम्हारे बच्चे जीवित बाहर निकल आएँ। शीघ्र ही यहाँ से जाओ क्योंकि कोई भी गोली यह पूछकर नहीं आती कि कौन गुनाही है कौन बेगुनाही। अब हम इनसे निपटते हैं। पर यह सच है जिस इबादत गृह में माता के आँसुओं का अनादर है पिता की तड़पती आत्मा की अनदेखी हो उसमें बंदगी करने वाले बंदों को परमात्मा का मार्ग बना लेने की आस्था निरी झूठी है।

हम दोनों घर आ गए।

मिलिट्री के जवानों और आतंकियों के बीच रात भर गोलियाँ चलती रही। दोनों आतंकी मारे गए पर मरने के पहले दोनों ने चाकू से मेरे बेटे-बेटी का गला काटकर हत्या कर दी।

सुबह होते ही मिलिट्री वालों ने मेरे बेटे-बेटी का शव ताबूत में बंद कर भिजवाया तो मैं दहल गया। नाजिरा पागल होकर चिल्लाने लगी- मेरा बेटा अल्लाह के यहाँ पहुँच गया। मेरी बेटी अल्लाह के यहाँ पहुँच गई। मैं भी मरने वाली हूँ। मरने से बिल्कुल नहीं डरती। अल्लाह के यहाँ जाकर बेटे-बेटी को छुड़वाकर वापिस लाऊँगी। तभी उसने चिल्लाते गुहार लगाते एक सेना के जवान की रिवाल्वर निकाली। कान में लगाकर मारने ही वाली थी कि उस जवान ने तत्काल पकड़कर रिवाल्वर छुड़ा ली। तीन दिनों तक यहीं गुहार लगाकर विलाप करती रही। मैंने, मोहल्ले की महिलाओं ने समझाया। उनके समझाने पर उसका दुख जब थोड़ा कम हुआ तब उसे आभास हुआ मैं मरकर अल्लाह के पास पहुँच जाऊँगी तो भी इन जाहिल जेहादियों के अंदर जूँ तक नहीं रेंगेगी।

एक पखवाड़े तक शोक में डूबी नाजिरा जब कुछ-कुछ नार्मल हुई तब उसी के कहने पर ही मैंने अपनी जन्म भूमि छोड़ने का निर्णय लिया। अपनी झेलम नदी को छोड़ गंगा के तट आपके गाँव आ गया।

रहमान-नाजिरा की दुखदाई दास्ताँ सुन मेरा मन खिन्न हो गया। सोचने लगा पता नहीं भगवान् ऐसे इंसानों पर क्यों कहर ढाता है।

बेटी रेशमा को मैंने बारहवीं कक्षा में प्रवेश दे दिया। और कर भी क्या सकता था।

– 196, शिवाजी पार्क कॉलोनी, उज्जैन (म. प्र.)

❑❑❑

अरण्यकांड में

एच. एस. वेंकटेशमूर्ती

अड़वी रामायणदल्लि रामा ओंदु मरगिलिः
सीतेओंदु चेलुवादा अरगिलि।
सुखवागे इद्दरु मरवोंदरा पोटरेयल्लि
कुक्किकोंडु, आगागा मुतिक्किकोंडु।

हीगीरुवागा, रावणनेंबा गिडुगना कण्णु
सीतेया मेले अकस्मात बितु।
बिद्दद्दे सीतेयन्नु हारिसिकोंडु
रावण आदा परारि-रामनिल्लदा होतु।

मंडोदरी ओद्दे कण्णल्लि नुडीदलुः 'गिड्डुगनू
गिलियू कूडि बाललिक्कागुवुदिल्ला बिडि'।
'कोडलिक्केनु माडबेकु?' काडिदा रावण। हेंडति
रोसि हेलिदलुः नीवू आगिबिडि दरिद गिलि।

सीतेयन्न कूडुवुदक्कामी घोरा तापस्सु माड़ि
रावण आदा गिलि रूपदा हुडुगा।
ई कडे रामा कूडा अष्टे घोरा तापस्सु माडि
रावणना मुगिसलिक्कागि आदा क्रुद्धा हुडुगा।

हीगागि, आ गिडुगा आ गिलि, ई गिडुगा ई गिलि
कूडा-
लागदे, मरेतु दांपत्यदा परिविडि,
आक्रंदिसुता, संधिसिदागलु ओंदन्नोंदु निंदिसुत्ता,
बिडि बिडियागे उलिदवु जीवनविडी।

– 97, सखि, पुष्पगिरि नगर, बनशंकरी, तीसरा स्टेज, बेंगलोर- 5600085

❑❑❑

अरण्यकांड में

अनुवाद : डी. एन. श्रीनाथ

अरण्यकांड में राम एक पेड़ का तोता;
सीता एक सुंदर लाडली तोती।
सुख से ही थे एक पेड़ के खोखले में
चोंच मारते, कभी-कभी चुंबन लेते हुए।

ऐसे समय में रावण नामक एक बाज की आँखें
पड़ी सीता पर अचानक।
पड़ते ही सीता को ले उड़ाकर
रावण ने किया पलायन-जब राम नहीं था।

मंदोदरी ने रोते हुए कहा: 'बाज
और तोता एक साथ नहीं रह सकते।'
'मिलन के लिए क्या करना चाहिए?' सताया
रावण ने।
पत्नी ने कहा क्रोध से : आप भी बन जाइए दरिद्र
तोता।

सीता से मिलन के लिए घोर तप किया और
रावण बन गया तोता के रूप का लड़का।
और इधर राम भी उतना ही घोर तप कर
रावण को खत्म करने के लिए हुआ क्रोधित
बाज।

इससे, वह बाज वह तोता, यह बाज यह तोता
मिलन न हो सकने से दांपत्य की अनुक्रमणिका,
आक्रंदन करते हुए, भेंट होने पर भी परस्पर निंदा
करते हुए,
पृथक-पृथक ही रह गए जिंदगीभर।

– नवनीत, II[nd] क्रॉस, अन्नाजी राव लेआउट, प्रथम स्टेज, विनोबानगर, शिमोगा, कर्नाटक-577204

❑❑❑

विडुविप्पुकळ्

ईरोडु तमिळन्पन्

कनवुकळिडम्
केळ्वि केट्टवन्
मरुपडियुम्
तूंकवे इललै
मरणत्तिडम्
नियायम् केट्क
वाळ्क्कैयै
तिरन्तु चेन्रवन्
तिरुश्चवे इललै
मवुनत्तिडम्
उरैयाडप्पोनवन्
चोर्कळिन् तूसियाक
कॉट्टिक्किटन्तान्
पॉरुळे इललै

पुतिर्कळिन्
पूट्टु तिरक्कप्पोनवन्
कुळप्पत्तिन् मार्पिल्
पाल् कुटिक्कुम्
कुऴन्तैयाना न्
वळरने इललै

इरविन्
एंकसियम् अरिन्तुवर
पोनवन्
तूंकुय् निरंतरप्
पकलानान्
ऍळ.वे इललै

– 95, II[nd] मेन रोड, पोरुर थोटम, चेन्नई-600095

छुटकारे

अनुवादः र. शौरिराजन

सपनों से
सवाल करने वाला
फिर से
सो नहीं पाया,

मौत से
न्याय मांगने
स्वजीवन को
खोलकर जो चला
फिर लौट आया ही नहीं।

मौन से
गुफ्तार करने जो चला
लफ्जों का गर्दधेर
जमा जमाया पड़ा है
मायना- मतलब कोई नहीं निकलता है।

रात अंधियारे का
रहस्य जानने
जो निकला, वह
चिर निद्रालीन
दीवा बन गया-
जाग उठा ही नहीं।

पहेली बुझौवल का
ताला खुलवाने जो निकला
उधेड़बुन की छाती से
स्तनय दूध चूसने वाला
शिशु बन गया
बढ़त उसकी हुई ही नहीं।

– 24, 41-गली, सेक्टर-8, के. के. नगर, चेन्नई-60078

हत्यारे

नारायण जी

अनुवाद : वैद्यनाथ झा

बाजार में डकैती हुई थी।

डकैती कर्म नारायण सर्राफ की गद्दी पर हुई थी।

शाम का समय था।

वह शाम चैत मास की शाम थी। चारों तरफ धूल फैली थी। आकाश भी कुछ ज्यादा धूल के कारण साफ नहीं दिख रहा था। हल्का सा धूसरित मगर लालिमा लिए हुए सूर्य क्षितिज में न डूबकर उससे आधा बाँस ऊपर आकाश में सिमटता जा रहा था और पश्चिम दिशा के बादल डूबते सूर्य की किरणों के स्पर्श से लाल होते प्रतीत हो रहे थे।

ऐसे समय में डकैती हुई थी।

साप्ताहिक बाजार का दिन था। काफी चहल-पहल थी। अचानक सड़क पर बम फूटने लगे थे। अफरा-तफरी मच गई थी। लोग इधर-उधर भागने लगे थे।

डाकुओं की संख्या चार थी। चारों कुर्ता-पायजामा पहने हुए थे। उन्होंने अपने मुँह पर गमछा लपेट रखा था। किसी के पैर में जूते-चप्पल नहीं थे।

उनमें से एक डाकू, जो चारों में सबसे कम उम्र का था और हाथ में बमों का झोला लिए हुए था, गद्दी के फाटक के सामने सड़क पर बम फेंक रहा था। फटाक-फटाक। सड़क पर धुआँ उठता जा रहा था और बम की आवाज से सड़क पर भगदड़ मची हुई थी। सभी अपनी-अपनी जान बचाने के लिए इधर-उधर भाग रहे थे।

सड़क उत्तर-दक्षिण दिशा में थी।

वह डाकू, जिसके हाथ में बमों का झोला था और डाकू दल के मुखिया ने उसे वहाँ के लोगों को आतंकित करने की जिम्मेदारी सौंप रखी थी, बिजली की फुर्ती से एक क्षण उत्तर तो दूसरे क्षण दक्षिण की ओर भाग-भाग कर सड़क पर बम फेंक रहा था। बाकी तीनों डाकू, जिनमें से दो के हाथ में बंदूक और एक के हाथ में रिवाल्वर थी, गद्दी-परिसर में फाटक के रास्ते घुस गए थे।

गद्दी के मालिक कर्म नारायण सर्राफ उस समय ग्रिल से घिरे काउंटर से दूर बाहर बरामदे में रखे खुले तख्त पर गोलगले वाला कुर्ता पहने बैठे थे।

एक डकैत ने, जिसके हाथ में बंदूक थी, गद्दी में घुसते ही कर्मू बाबू, अर्थात् कर्म नारायण सर्राफ के पेट में बंदूक की नली धँसाते हुए पूछा था- "चाभी?"

"मैं व्यापारी हूँ। मेरा घर मुजफ्फरपुर है। मुझे क्या पता?" भयभीत और अचंभित कर्मू डरे हुए स्वर में बोला था और तब वह डाकू उन्हें वहीं छोड़कर ग्रिल से घेर कर बनाए गए काउंटर में घुस गया था।

भीतर गल्ला था जो खुला था। गल्ले में ताला नहीं लगा था।

जिस दरी बिछी हुई चौकी पर गल्ला रखा था, उस पर पीठ टेकने के लिए दीवार से लगा हुआ एक मसनद रखा था पर वहाँ कोई बैठा नहीं था।

वहीं फोम-मढ़े लोहे की कुर्सी पर महिंदर बैठे थे। महिंदर के साथ उसके मामा, जोगी नेता और टीना बाबा थे।

टीना बाबा का तो कुछ और ही नाम था मगर देखने में वह दुबले-पतले थे इसलिए सभी लोग उन्हें टीना बाबा ही बोलते थे।

काउंटर में घुसते ही डाकू ने गल्ले की चौकी खाली देख उन चारों पर अपनी जलती निगाह डाली और कुछ क्षणों के बाद चारों की कनपटी पर चटाक्-चटाक् एक-एक थप्पड़ मार कर अपना सिर नीचे झुकाए बैठे रहने का हुक्म दिया था। फिर उसने अपनी कमर में बांधा गमछा खींच कर चौकी पर बिछा दिया और गल्ला खोल कर सारे नगदी, जिनमें नोट और रेजगारी थी, गमछे पर झाड़ा और गमछा समेट कर बाहर आ गया था।

उसी दौरान मौका मिलते ही कर्मू बाबू ने उठकर अपने आंगन में घुस कर मेन गेट का शटर गिरा दिया था। जिससे डकैत और अंदर न घुस सकें। यह कहना मुश्किल था कि उस डाकू को गद्दी के मालिक के नहीं मिल पाने का कोई मलाल जताने की फुर्सत थी या नहीं।

वह डाकू बरामदा पार कर धड़धड़ाते हुए सीढ़ी उतर गद्दी-परिसर में आ गया था जहाँ एक डकैत सड़क की ओर बंदूक ताने खड़ा थ। कदाचित इसलिए कि अगर उसे किसी भी आने-जाने वाले से खतरा महसूस होगा, तभी बंदूक की गोली से उसे छलनी कर देगा। वैसे सड़क पर लगातार बम फूटने से इस बात की जरा भी गुंजाइश नहीं थी।

दूसरा डकैत हाथ में रिवाल्वर लिए हुए इधर-उधर घूम रहा था। शायद वह उस डाकू दल का सरदार था। कारण, काउंटर से बाहर आए डकैत ने अपने साथ गमछे में लपेट कर लाए हुए नगदी को उस रिवाल्वर वाले डकैत को पकड़ा दिया था। उसने उससे फुसफुसा कर कुछ बात भी की थी। उसके बाद उसने अपने हाथ की बंदूक उस सरदार डकैत को पकड़ा दी थी और उसके हाथ से रिवाल्वर लेकर फिर काउंटर के घेरे में आ गया था।

महिंदर और उसके तीनों साथी डर के मारे एकदम जड़ से बने हुए वैसे ही सिर झुकाए बैठे थे।

पता नहीं क्यों, वह डकैत अपने सरदार से ऐसा क्या हुक्म लेकर आया था कि उसने महिंदर की कनपटी में रिवाल्वर सटा कर गोली मार दी। वह भी तब पता चला जब सभी डाकू चले गए और महिंदर का मामा, टीना बाबा और जोगी नेता काउंटर वाले कमरे से बुरी तरह डरे हुए बाहर आए थे। जोगी नेता की देह पर भार देकर टिका हुआ महिंदर कुर्सी पर से तब तक धड़ाम से गिर पड़ा था और वहाँ खून फैल गया था।

कई लोगों का कहना था कि महिंदर उस डकैत को पहचान गया था और बोला था-तुम! और इसी कारण डकैत ने उसको गोली मार दी थी।

कुछ लोगों का कहना था कि तीनों में अकेले महिंदर ने ही कहा था- "हमें क्यों मारते हो? गल्ला खुला है। जो लेना है, ले लो न! इसीलिए डाकू ने उसे ही गोली मार दी थी।

कहा तो यहाँ तक जाता है कि चारों में महिंदर ही बना-ठना था- सिल्क का कुर्ता पहने था, मालिक लगता था। इसीलिए डाकू ने उसी को मालिक समझ कर गोली मार दी थी।

पर अगर यह सच था तो उस डाकू ने पहले महिंदर से ही क्यों नहीं चाभी मांगी?

शायद तब महिंदर की शक्ल गद्दी के मालिक के उस भांजे जैसी लग रही थी जो पहले हुई लूट के एक मुकदमे में, एक व्यक्ति के खिलाफ गवाही देने वाला था। हो न हो, जिसका संबंध उस डकैत से था।

जितने मुँह, उतनी बातें।

जो भी हो।

स्थानीय लोग उस डकैती के खिलाफ गुस्से में थे और वे हमले पर उतर आए थे और सड़क पर कोका-कोला, फैंटा आदि की बोतलें फेंकने लगे थे।

जब डकैतों ने समझ लिया कि जनता ने उन पर हमला बोल दिया है तो वे गद्दी से बाहर आ गए थे और सड़क पर दक्षिण दिशा में रेलवे की तरफ चल पड़े थे।

चारों डाकू मुँह ढ़के हुए कतार में चल रहे थे। उनकी चाल तेज थी पर कोई दौड़ नहीं रहा था।

चारों घटिया किस्म के डाकू थे क्योंकि लौटते समय संबोध पान वाले की दुकान पर पान बेच कर रखे हुए और डकैती पड़ने के डर से भागे हुए संबोध के डिब्बे में रखे नगदी-नोट ही नहीं, रेजगारी तक गमछे में बांध कर ले गए थे।

स्टेशन चौक पर आकर वे धर्मशाला रोड पकड़ कर पूर्व दिशा में चल पड़े थे।

लोग पीछे-पीछे उन चारों को ललकारते हुए और उन पर रोड़े-पत्थर बरसाते हुए उनका पीछा कर रहे थे।

बाजार में फोटोस्टेट के दुकानदार हरिशंकर ने गजाधर मस्तान से चिल्ला कर कहा था "पार्टनर, डाकू माल लूट कर जा रहा है। उससे माल छीनों।" हरिशंकर यह कहते हुए गजाधर मस्तान के साथ उन भाग रहे डाकुओं का पीछा करने लगा था।

डाकू उसी सड़क पर आगे बढ़ते जा रहे थे। संयोग की बात, तभी रेलवे स्टेशन पर शाम वाली ट्रेन आ गई थी। ट्रेन से उतरने वाले यात्रियों की भीड़ और भी बढ़ने लगी थी। नतीजतन, डाकुओं का पीछा करने वालों की संख्या में भारी वृद्धि हो गई थी।

ट्रेन खुल गई थी।

ट्रेन को पूर्व दिशा की ओर निर्मली जाना था।

डकैतों को घेरने के लिए लोगों ने स्टेशन से खुली ट्रेन का वैक्यूम खोल दिया था।

पर डकैतों ने इन सबकी परवाह किए बिना खड़े इंजन के आगे से रेल लाइन पार कर लिया था और राइस मिल की चारदीवारी के किनारे-किनारे बढ़ते हुए गाछी में घुसने लगे थे।

गाछी में घुसने के बाद डाकुओं को कौन पकड़ सकता था? हरिशंकर और गजाधर मस्तान राइस मिल के भीतर से जाकर चारदीवारी पर चढ़ गए थे।

शाम और गहराने लगी थी।

पीछे से ललकारते लोगों की भीड़ बहुत बढ़ गई थी।

टपान पर खड़ी ट्रेन का ड्राइवर वैक्यूम की सीटी देना भूल गया था। पर राइस मिल की चारदीवारी पर खड़ा गजाधर मस्तान कुछ नहीं भूला था। वह एक-एक डकैत को एक-एक कर गाछी में ओझल होते हुए देख सेना के जवान की तरह अत्यंत सावधानी बरतते हुए सबसे पिछले डकैत के कंधे पर कूद गया था और उसकी गर्दन पकड़ कर अपनी काँख में दबा ली।

गजाधर मस्तान ज्यादा युवा था। उसने काँख में दबा कर रखे डाकू को इंच भर भी टस से मस नहीं होने दिया।

"ऐ गुरुजी, जरा लौटो न! मैं पकड़ा गया।" मस्तान की काँख में दबे डकैत ने आगे जा रहे साथी-डकैतों से कहा पर तीनों में से एक भी वापस नहीं लौटा था।

"छोड़ दो वरना गोली मार दूँगा।" मस्तान की काँख में दबे डकैत ने चेतावनी के स्वर में कहा। पर जब डकैत ने देखा कि मस्तान ने अपनी बाँह में दबाए डकैत पर पकड़ ढीली नहीं की तो उसने उसके पेट में गोली मार दी थी।

"पार्टनर, इसने मेरे पेट में गोली मार दी है।" गजाधर मस्तान इतना ही बोला था कि डकैत की पीठ पर बीस से भी ज्यादा लोग चढ़ गए थे और लात-घूसों से उसे बुरी तरह पीटने लगे और गजाधर मस्तान को उठाए हुए लोग जंगल-झाड़ वाले रास्ते से होते हुए डॉक्टर के पास ले गए थे।

इधर डकैत के साथ चल रही मार-कुटाई में उसके हाथ से छूटी रिवाल्वर किसके हाथ लगी, कोई समझ नहीं पाया था और इस लोभ में कोई गया भी नहीं था। लोग तो डाकू को पकड़ने गए थे।

इस काम में सुभाष पुलिस मैन की सबसे ज्यादा फुर्ती और मुस्तैदी देखने लायक थी। उस समय भी वह वर्दी में ही था और कंधे पर बंदूक लटकाए हुए था। डकैत का पीछा करने में उसकी भूमिका महत्वपूर्ण थी।

सुभाष सिंह ने औंधे पड़े डकैत के दोनों टांगों में मंगाई गई रस्सी से ऐसी गांठ बांधी थी जिसे वहीं बांध सकता था। बांधने के बाद रस्सी का दूसरा छोर पकड़ वह उसे घसीटने लगा। उसके इस काम में कई लोग उसका साथ देने लगे थे।

पेट के बल पड़े उस डकैत को लोग पीछे की तरफ घसीट रहे थे।

डकैत का चेहरा जमीन की तरफ था। जैसे बंसी में गुंथा मेढ़क पीछे की तरफ खींचे जाने पर शक्ति भर दोनों पैरों के बल चलता है वैसे ही वह डाकू अपने बचाव के लिए पहले तो दोनों हथेलियाँ जमीन पर टिका-टिका कर कुछ दूर तक घिसटता रहा। लेकिन कुछ दूर घिसटने के बाद थक कर उसने खुद को हालात पर छोड़ दिया था। लोग उसे घसीटते रहे।

जब भी कोई कुछ बोलता, तभी वह डकैत किसी-किसी व्यक्ति की टांग पकड़ने की कोशिश करता। वैसे यह सच नहीं लगता था पर कहा जा सकता है कि मरता क्या न करता। दरअसल सच तो यह था

कि लोग उसके गुदा मार्ग में बाँस की डंडी भोंक रहे थे और कुछ बाँस के बत्ती के टुकड़े में विष्ठा लगा-लगा कर उसके मुँह में लपेट रहे थे ऐसी हालत में वह डाकू बनैले सूअर की तरह लग रहा था। याद आया, एक बार गाँव वाले कोसी के किनारे के कास, पटेर के जंगल से ऐसे ही बनैल सूअर को अधमरा कर घसीटते हुए लाए थे।

इस तरह जुटी भीड़ का नेतृत्व कर रहे सिपाही सुभाष सिंह ने सड़क पर औंधे मुँह घिसटे जाते डकैत को पल भर के लिए घसीटना बंद कर दिया और उसे पलट कर पूछा था- "क्या नाम है तेरा? सच बोलेगा तो छोड़ दूँगा वरना इसी बंदूक के कुंदे से कुचल दूँगा।" यह कहते हुए उसने चित पड़े डकैत के मुँह और नाक में बंदूक का कुंदा सटा दिया था।

अधमरा पड़ा डाकू कराहते हुए बोला था- "नंदन यादव"

"और घर?"

"सूड़ीबोन"।

डकैत के मुँह से इतना सुनते ही सिपाही सुभाष सिंह उसके सीने और सिर पर जूते पहने ही चढ़ गया।

"सिपाही सुभाष सिंह बाबरी मस्जिद विध्वंस के समय वहीं था और सबसे पहले उसी ने मस्जिद ढहाया था।" यह बात वहाँ मौजूद टुन्ना मिसिर, जो वहाँ लोगों में थोड़ा पढ़ा-लिखा लग रहा था, बोला था।

उसकी बात सुनकर एक बार तो सभी हँस पड़े थे। उसके बाद सबने डकैत को फिर से घसीटना शुरू कर दिया था।

इस तरह घिसट कर उसकी देह की चमड़ी जहाँ-तहाँ उधड़ गई थी। भीड़ में किसी को इस बात की चिंता नहीं थी। सभी उसे जल्द कर्मू बाबू की गद्दी पर ले जाना चाहते थे।

"तुम लोग थक गए हो। थोड़ा हटकर खड़े हो जाओ।" कहते हुए संजय उस डकैत को जोर-जोर से झकझोरने लगा। रूपम और अनंत भी उसका साथ देने लगे।

ऐसी परिस्थिति में भी मुर्तजा विदूषकों की तरफ व्यवहार कर रहा था। वह बाँस के डंडे से घिसट रहे डकैत को ठेल रहा था और खुद ही हँस भी रहा था। उसके पीछे भीड़ भी हो-हो कर हँस रही थी। अंधेरा बढ़ रहा था और उस धुंधलके में भी भीड़ के चेहरे की विजयी मुस्कान साफ झलक रही थी।

इतनी देर में दो व्यक्ति जलता हुआ पेट्रोमेक्य ले आए थे। ये पेट्रोमैक्स कर्म नारायण सर्राफ के लोग लाए थे। इससे यह स्पष्ट था कि एक डाकू के पकड़े जाने की खबर चारों ओर फैल चुकी थी।

पेट्रोमैक्स के साथ कुछ और लोग भी उत्सुकतावश आए थे। उन्होंने भी सड़क पर पड़े डकैत को दो-चार लात जमा कर उसके पैर में जकड़ी हुई रस्सी पकड़ कर ऐसे घसीटा था कि पल भर में ही कर्मू की गद्दी पर ले आए थे। वहाँ एक जलता हुआ पेट्रोमैक्स पहले से ही रखा था।

डकैत को चित पलटा गया। उसे देखते ही कर्म नारायण सर्राफ बोला था-

"यही वह डाकू है जिसने मेरे पेट में बंदूक का कुंदा भोंका था और महिंदर को गोली मारी थी।"

महिंदर की लाश अभी भी काउंटर के भीतर वैसे ही पड़ी थी। अब तक थाने की पुलिस नहीं आई थी।

सिपाही सुभाष सिंह तो मौके पर यूँ ही आया था। उसे शराब के दुकानदार से वसूली करनी थी पर डकैती पड़ने की खबर पाकर वह वहाँ न केवल भीड़ का जरूरी हिस्सा बन गया था बल्कि अपने अनुभव से उन्मादी भीड़ को अधिक गति देने लगा था।

अहाते में कर्म नारायण सर्राफ ने भी चित्त पड़े अधमरे डकैत की पसली में एक लात मारी थी।

"देखो, कैसे टुकुर-टुकर ताक रहा है।"

"अभी भी इसे छोड़ कर देखो, फुर्र हो जाएगा। इस हाल में भी।"

"इसके हाथ-पैर कुचल दो।"

"इससे क्या होगा? इसकी दोनों आँखे फोड़ दो।"

"हाँ, और क्या? थाने की पुलिस आएगी, इसे गिरफ्तार कर जेल भेजेगी, छूट कर आएगा तो फिर डकैती नहीं कर पाएगा।"

"थाने की पुलिस आने से पहले इसे खत्म कर दो।"

जितने लोग, उतनी बातें।

जिस जगह डकैत पड़ा हुआ था, वहीं वजन

तौलने वाला कांटा लगा था। बट्टे भी पड़े थे। अखिलेश ने न तो कुछ सोचा, न विचारा, बस बीस किलो का एक बट्टा उठा लाया था और डाकू को घेरे खड़ी भीड़ को किनारे हटने के लिए कहते हुए वह बट्टा चित्त पड़े डकैत के बीच माथे पर पटक दिया था।

तब नीरस जी ने अखिलेश की पीठ पर एक धौल जमाते हुए कहा था- "वाह बहादुर!"

– लेखक : ग्राम पोस्ट घोघरडीहा, जिला- मधुबनी, बिहार - 847402

– अनुवाद : मकान नं. 405, बी-ब्लाक, सेक्टर 56, हुडा(प्लॉटस), गुरुग्राम-122011 (हरियाणा)

❑❑❑

जोंके का डॉक्टर

श्रीनिवासराव

अनुवाद : प्रो. एस. शेषारत्नम्

कुछ दिनों पहले की बात थी। हमारे गाँव में एक डॉक्टर बाबू रहता था। उसने आयुर्वेद पढ़ा या उमापति पढ़ा किसी को मालूम नहीं था। आर. एम. पी. है या नहीं वह भी मालूम नहीं था। ये सारी बातें जानने की उत्सुकता भी किसी में नहीं थी। उसके हाथ से दी हुई गोली, उसकी बात, रामबाण के समान काम करती थी। इसलिए हम समझते थे कि ये सारी बातें हमारे लिए अनावश्यक हैं।

समय, कुसमय की बात नहीं, आँधी-तूफान की बात नहीं। धूप-लू की बात नहीं थी। जब कभी दरवाजा खटखटाओ, दवा देते थे। ऐसी सलाह देता था कि एक पैसा भी खर्च नहीं होता था। गाँव का नामी डॉक्टर था। यह देखकर कुछ पढ़े-लिखे लोग चिढ़ते थे। वह जो कुछ कर रहा था उसे देख मन-ही-मन कोसते थे।

सिव्वाल रामनायडू हमारे डॉक्टर बाबू का नाम था, लेकिन कोई भी उन्हें उस नाम से नहीं पुकारता था। सभी लोग -जोंकों का डॉक्टर' कहकर पुकारते थे। उसी नाम से उनका आदर भी करते थे। उन्हें भी यही नाम पसंद था। यह जोंकें क्या हैं? यह डॉक्टर क्या है? असल में वही तो असली कहानी है।

रामानायडू जी के दवाखाने की प्रैक्टिस विचित्र थी। ऊँचे चबूतरे वाले घर में रहते थे। चबूतरे पर मरीज के बैठने के लिए पुराने जमाने की एक लंबी लकड़ी की बेंच थी। उसके अनेक भागों पर गड्ढ़े हो गए थे। उस बेंच के तीन पैर बराबर थे और एक पैर थोड़ा-सा छोटा था। उसके नीचे पत्थर रखकर ऊँचाई को बराबर करने का प्रयास किया गया था। अंदर डॉक्टर बाबू की स्थिति भी वही है। इक्ष्वाकुओं के जमाने की लोहे की एक कुर्सी पर कपड़ा डालकर बैठते थे। बढ़ई द्वारा लकड़ी की कुर्सी बनाकर देने के लिए कितनी बार मनाने का प्रयास करने पर भी डॉक्टर बाबू कभी नहीं माने थे। नाममात्र के लिए भी उनमें लोभ नहीं था। कहा करते थे कि औरों की संपत्ति नाग सर्प के जैसी है। वह कभी भी डस सकती है।

उस कमरे के एक कोने में दो बड़े-बड़े सिलौट तथा इससे भी बड़े-बड़े सिलबटा थे न जाने उनमें कौन से पत्ते डालकर पीसते थे। कौन से कंद फेटते थे तीसरी आँख नहीं जानती थी। दो सीसे की झारी में पानी जैसी दवा हमेशा रहती था। स्टेथस्कोप आदि उपकरण उनके पास नहीं होते थे नाड़ी देखकर दवा देना बस। मरीज की इस से बढ़कर और कोई परीक्षा नहीं करता था। कीई भी मरीज आए अपनी बीमारी के एक दो लक्षण बताने मात्र से बाकी लक्षण वह खुद बताते थे।

"पैर दुख रहे हैं न! गला, कच्चा घाव जैसा है न!" यों मरीज आश्चर्य चकित होने के जैसा बोलता था। मक्खन और बाँस के पत्तों का रस मिलाकर तीन जून दो चम्मच के हिसाब से ले लो। दो दिन तक बासी भात छोड़कर खाना। हींग की छौंक लगाई हुई रसम से खाना खाओं, यों कहकर मरीज को भेज देते थे। बस! उस मरीज को दुबारा डॉक्टर के पास आने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

खाना हजम नहीं हुआ कहकर छोटे बच्चे नायडू के पास जाने से वे हँसते थे। "हाँ-हाँ, तूम तो बूढ़े हो, कुछ नहीं कर सकते हो, हजम नहीं हुआ कहने में शर्म नहीं आ रही हल जोत लो, रोपन करो, बैल चलाओ, नाँद बनाओ, खेती-बाड़ी करो, नाश्ते के बदले में खाना खाओ।" यों उसे समझा बुझाकर भेज देते थे। पैर मोचने पर चूना एवं गुड़ मिलाकर पट्टी बाँधने के लिए कहते थे। कान में दर्द कहने पर जंगली कंदरू पत्तों के रस को कानों में डालने के लिए कहते थे। खाज एवं फोड़ आने पर आटा की पट्टी बंधवाते थे, स्त्रियाँ पेट दर्द से पीड़ित होने पर गाय का घी पिलवाकर, पेट पर बंबी की मिट्टी की पट्टी लगवाते थे। इस प्रकार एक पैसा भी खर्च करवाए बिना सारी बीमारियों का इलाज करता था। विचित्र बात यह थी कि उन दिनों में उनके कहने के अनुसार करने से सारी बीमारियाँ यहाँ तक कि फक्कड़ बीमारियाँ भी ठीक होती थीं। लोगों का विश्वास था कि उनका हाथ लगने से मरीज खड़े होते हैं। कोई भी दो लौकी, छह सेर मूँगफली और गुड़ फीस के रूप में देने का प्रयास करने पर, उन्हें मना करते थे। कभी भी किसी के सामने हाथ नहीं पसारा था। गाँव से थोड़ी दूर पर स्थित एक एकड़ की जमीन में खेतीबाड़ी करके मेहनत से पत्नी और बाल-बच्चों का पोषण करता था।

ऐसे अचूक डॉक्टर बाबू को एक बार गाँव में एक बहुत बड़ी समस्या का सामना करना पड़ा। बाँस की टोकरी बनाकर उन्हें बेचकर जीविका चलाने वाला बसेर सत्तेय्या ने कुछ दिनों पहले नायडू से मिलकर दाएँ जाँघ पर हुए व्रण को दिखाया था और दवा माँगी थी। उन्होंने यथावत गृह वैद्य बताया था। लेकिन उससे वह ठीक नहीं हो पाया था। एक हफ्ता बीत गया। फिर सत्तेय्या न सिर पीटते, रोते हुए नायडू बाबू के सामने हाजिर हुआ। सत्तेय्या का व्रण का दर्द और बढ़ गया और वह व्रण दिन-ब-दिन बढ़ने लगा। गाँव के सभी लोगों का दिमाग खराब हुआ था। आश्चर्य की बात यह थी कि ऐसी कोई बीमारी नहीं जो नायडू के काबू में न आई हो! सभी लोग गाल को दबाने लगे थे। सत्तेय्या मृत्यु से लड़ रहा था। इस प्रकार और एक महीना गुजर गया। वह पैर भी नहीं हिला पा रहा था।

आपके दरवाजे पर प्राण छोड़ने के सिवा मेरे लिए कोई चारा नहीं है। यों कहते हुए सत्तेय्या एक दिन सवेरे सीधे नायडू के घर पहुँचे।

नायडू को समझ में नहीं आ रहा था। वह दुखित होने लगा था कि उनका पचास साल का अनुभव काम आए बिना व्यर्थ हो रहा था। कई व्रणों को सुखाया उससे सत्तेय्या का व्रण खेल रहा था। काफी चिंतित था। बाद में सोचने लगा कि वह व्रण उसके अलावा खुद को आने से कितना अच्छा होता। वह मन ही मन चिंतित होने लगा था। क्या करना है? उसे कुछ नहीं सूझ रहा था। "रे सत्तेय्या! आज के लिए घर चले जाओ। रात भर इलाज के बारे में सोचकर, कल सवेरे आने से दवा दूँगा। आते वक्त तुम्हारी औरत और बच्चों और गाँव के प्रेसिडेंट गुल्लिपिल्लि पेद वीर्राजू को भी साथ में लाना। असहनीय पीड़ा में भी आश्वासन मिलने के कारण सत्तेय्या खुश होकर लंगड़ाते हुए घर पहुँचा था। सारा विषय बच्चों को सुनाया। सुबह निकलने के लिए कहा था।

सवेरे-सवेरे सभी इकट्ठे नायडू बाबू के घर पहुँचे थे। प्रेसिडेंट बाबू भी हाजिर हुए थे। मुँह-मुँह से बात फैलने के कारण जलप्रवाह नहर में गिरने के जैसे लोग बड़ी संख्या में निकल आए थे। प्रेसिडेंट वीर्राजू ने गले को संवारा।

"सत्तिगाडि की पीड़ा को देख नहीं पा रहा हूँ। दवाइयाँ भी काम नहीं कर रही। आज अच्छी दवा सत्तेय्या को देने के लिए आपने वादा किया है और मुझे भी साथ ले आने के लिए आपने कहा। प्रसिडेंट बाबू एक-एक शब्द संभल कर ऐसा बोला था कि कोई भी अपशब्द न निकले।" बाद में मूंछों को सँवारते हुए एक कोने में दुबक कर ऐसा बैठा था कि उनका काम हो गया। वहाँ एकत्रित सभी लोग डॉक्टर बाबू क्या बोलेगा? उत्सुकता के मारे प्रतीक्षा कर रहे थे।

"दवा तो तैयार है लेकिन उसे देने के लिए आपको मेरी थोड़ी सहायता करनी है।" नायडू ने निस्तब्धता को चीरते हुए मन की बात को व्यक्त किया। "कहिए ..... कहिए वह क्या है? प्रेसिडेंट ने पूछा। मुझे दो जोंके चाहिए।" धीरे से नायडू ने कहा। उस बात को सुनकर प्रेसिडेंटबाबू समझ में कुछ नहीं आने के जैसे मुख

बनाकर, 'जोंके! दो.... किसलिए...." खींचते हुए कहा। "उनसे ही चिकित्सा है। और क्या?" स्थिर चित्त से नायडू ने कहा। प्रेसिडेंट बाबू ने सिर खुजलाया फिर समझ लिया था कि सभी लोग उन्हें देख रहे हैं बस सिर खुजलाना बंद करके गाँव के चौकीदार को अपनी इच्छा के विरुद्ध बुलवाया।

"रे! डॉक्टर जी को जोंक चाहिए। गाँव के किसी भी तालाब में उतरें तो जितना जोंक चाहिए उतना जोंक मिलेगा। उन्हें पकड़कर जल्दी वापस आना।" आज्ञा जारी किया। 'हाँ जी' कहकर जाने वाले चौकीदार को बुलाकर "कई जोंकें नहीं चाहिए, मात्र दो। मात्र दो...." नायडू ने कहा। वहाँ इकट्ठे हुए लोग नाक पर उँगली रख कर सोचने लगे थे कि यह चमत्कार क्या है? क्या होगा जानने की उत्सुकता में प्रतीक्षा कर रहे हैं। इतने में डॉक्टर बाबू ने सत्तेय्या को उठाकर चबूतरे पर उल्टा लिटाने के लिए बच्चों से कहा। उसके बच्चों ने वैसा ही किया। पीड़ा के मारे पलटे मारते हुए सत्तेय्या यह सब उसका कर्म समझकर मुँह बंद करके लेटा था। नायडू ने व्रण हुए उसके पिंडली पर थोड़ा-सा गर्म पानी फेरकर कपड़े से उसे पोंछा। तब तक वह व्रण बड़े आम के जैसा मोटा हुआ था। उस पर गर्म पानी फेरने से उस पीड़ा को सत्तेय्या सहन नहीं कर पाया। वो रो पड़ा।

सारा व्यवहार यों चल रहा था। इतने में चौकीदार लौट आया था। वह खाली हाथ नहीं आया था। चौकीदार ने दो जोंकों को तालाब से निकालकर काफी सावधानी से उन्हें पत्तों में रखकर नायडू को सौंपा था। नायडू उन्हें गौर से देख रहा था। कब क्या होगा यों सोचते हुए जनता डर के मारे डॉक्टर बाबू को देख रही थी। सुबह-सुबह इस झंझट में फँस गया हूँ। यह जोंक के इलाज का फैसला जल्दी खत्म होने के बाद बाहर जाकर अदालत में मुकद्मा को स्थगित कराना है। वहाँ के मिलटरी होटेल में माँस खाना है रे।" यों सोचते हुए प्रेसिडेंट बाबू मन ही मन गुस्सा करने लगा।

जोंको को पत्तों सहित आराम से पकड़े हुए नायडू ने उन्हें सत्तेय्या के फोड़े पर छोड़ दिया। हल्की सी गुदगुदी हुई होगी, सत्तेय्या थोड़ा सा हिल गया। कुछ बोलने का प्रयास किया। चुप रहो, रे! यहाँ चिकित्सा चल रहा है। यों कहते हुए उसका मुँह बंद हुआ। इकट्ठा हुए लोग चबूतरे पर जमकर साँस बंद करके पलक मारे बिना देख रहे थे। फोड़े को पकडे हुए जोंक ने कुछ ही क्षणों में आराम से अपना काम शुरू किया। एक इंच लंबा, छंगुली भर चौड़ा, काला और लाल रंग मिलाने से जो नया रंग निकल आता है उस रंग में जोंके दिखाई दे रही थी। वे फोड़े का चर्म मुँह से पकड़कर अनेक प्रकार के कुस्ती लड़ रही थी। नायडू ने चैन से साँस लिया। नायडू ने सभी को दूर हटने के लिए इशारा किया। आँखों से देखा, गला फाड़कर शोर मत मचाओ। यों नायडू ने इशारे से ही उन्हें मना किया था। सत्तेय्या के बच्चे और पत्नी ने मेज पर लिटाए हुए उसे जमकर पकड़ लिया था। कुछ ही क्षणों में जोंके फोड़े पर टूट पड़ी और फोड़े का खून पीने लगी। जैसे-जैसे वे बड़े होने लगे वैसे-वैसे उसका फोड़ा घटने लगा। प्रेसिडेंट बाबू मूक बने रहे।

मानो सत्तेय्या के खराब खून को जोंके पी रही थे। तीसरी आँख को पता चले बिना आपरेशन हो रहा है। कैसी अकल! कैसी अकल!" यों आश्चर्य के मारे लोग टेड़ा होने लगे। "छुप...छुप।" यों नायडू मुँह बंद करने पर मौन रहा। सभी को मालूम हुआ था कि जोंकों के सहारे, कैंची के बिना ही आपरेशन हो गया। वे सब 'जय', बोलना चाहते थे, लेकिन इस डर से चुप रहे थे कि ऐसा करने से नायडू उन्हें मारेगा। कुछ समय के बाद सत्तेय्या की पिंडली का आकार लगभग यथावत् हुआ था। जोंके तो ताड़ का फल जैसी मोटी हुई थी। इस दशा में सत्तेय्या पीड़ा के मारे छटपटाया। "मात्र एक क्षण" यों कहकर नायडू ने उसे समझाया थोड़े समय के बाद ही नायडू ने खुशी से कहा था कि इलाज पूरा हुआ। सभी ने चैन की साँस लिया।

नायडू ने फिर पूछा था किसी के पास तंबाकू है। सभी एक दूसरे का मुख देखने लगे। हर दिन चुरट पीने वाली मिट्टी का काम करने वाली नूकालू ने 'हाँ है' कही। कमर में ठेस हुए दो तंबाकू के नाले दिए। उन्हें नायडू ने तत्काल हाथों से रगड़ कर सत्तेय्या के फोड़े पर स्थित जोंको पर रस निचोड़ दिया। तंबाकू की बू लगते ही किसी ने छुड़ाया जैसे जोंके टप-टप नीचे गिर पड़ी। तब तक वे खून के बुलबुले जैसे हैं। नायडू ने

सावधानी से ले जाकर गाँव के बाहर गड्ढ़ा खोदकर उन्हें दफनाने के काम पर किसी को लगाया था। क्या हो रहा था? सत्तेय्या को कुछ मालूम नहीं था, लेकिन वह प्यास... प्यास मात्र कह सका। कमरे में से अजवाइन के पानी की बोतल नायडू ने उसके गले में दो चम्मच डाली थी। उठो .... उठो जोर से कहा। दूसरे दिन से लेकर चार दिन तक पैर में पट्टी बाँध कर घूमते हुए सत्तेय्या ने बाद में उसे भी खोलकर फेंक दिया। यथावत् हष्ट-पुष्ट घूमने लगा। ऐसा हंगामा किया था कि उसे नया पैर लगाया था। सभी ने नायडू डॉक्टर की प्रशंसा की।

बस! उसी समय से नायडू का नाम खत्म हुआ जोंके का डॉक्टर का नाम से वह पुकारे जाने लगा। भद्दा इलाज है, कहकर कुछ लोग उसे कोसते पर "जब कोई चारा नहीं है तब वैसा किए बिना और क्या कर सकता है? यह सब हमारी भलाई के लिए है। बड़े-बड़े डॉक्टरों के पास जाने की शक्ति हमारे पास कहाँ है- जिससे ठीक होता है वह दवा है, जहाँ जीते हैं वह गाँव है" यों कहते हुए सभी लोग उसके पक्ष में खड़े होते हैं।

कई वर्ष बीत गए। दशाब्द घूम गए। जोंकों का डॉक्टर बूढ़ा हो गया। फिर भी गाँव के मुखिया के जैसे इलाज कर ही रहा था। शायद अस्सी की उम्र में वह बुरी तरह बीमार पड़ा था। कभी भी नाक साफ करने की जरूरत नहीं पड़ी। ऐसे आज डॉक्टर ने भी खाट पकड लिया। शुरू-शुरू में कोई भी इस बात को नहीं माने थे।

"असल में नायडू को बीमारी कैसे पकड़ लेगी। उसका नाम लेते ही सारी बीमारियाँ भाग जाती है।" यों वे तर्क करते थे।

"वह भी मनुष्य है। पीड़ाएँ घेर लेती हैं।" यों कहते हुए और कुछ लोग उचाटते थे। कुछ भी हो। जोंकों के डॉक्टर को पेट के ओतंडों की बीमारी ने पकड़ लिया था। खाना हजम नहीं हो रहा था। सभी को शक्तिनुसार सहायता किए हुए उसको भगवान ने क्यों इस प्रकार हिंसित कर रहा था। यों सोचते हुए नायडू हिचकियाँ भर कर रो पड़ा था। कई प्रकार की दवाईयाँ निगल लिया।

उच्च शिक्षा प्राप्त कर शहर में अच्छी नौकरी करने वाले नायडू के बच्चे डॉक्टर को दिखाएँगे कहकर उसे अनेक प्रकार से समझाने-बुझाने का प्रयत्न किया। नायडू माना नहीं। शहर एवं वहाँ के डॉक्टरों का नाम सुनते ही उसे डर लगता था। उसने साफ कह दिया मैं गाँव छोड़कर शहर बिलकुल नहीं जाऊँगा।

दिन बीतने लगा, लेकिन रोग थोड़ा-सा भी शमित नहीं हुआ था। बस बच्चे उसकी भुजाएँ पकड़कर जबरदस्ती उसे शहर ले गए थे। बड़े अस्पताल में भर्ती करवाए थे। बड़े-बड़े डाक्टरों से धड़ा-धड़ा जाँच करवाई थी। एंडोस्कोप, कोलनोस्कोप, ओस्कोप, ये स्कोप कहकर लगातार बिल पर बिल तैयार कर वे सभी डॉक्टर नायडू के परिवार को सिनेमास्कोप दिखाया। बीमारी से थोड़ा सा भी सुकून नहीं मिला उल्टे बीमारी बढ़ने लगी।

"मुझे ये दवाइयाँ सुविधा नहीं देगी, मैं खुद अपना इलाज करूँगा रे।" यों नायडू के जिद करने पर भी बच्चे उनकी बात को नहीं माने थे। आखिर डॉक्टरों ने कहा था कि आपरेशन करने के अलावा और कोई चारा नहीं। नायडू ने इस बात को सुनकर भीम जैसा जिद् किया और कहा था कि मरना है तो मरूँगा लेकिन आपरेशन नहीं कराऊँगा।

"रे.....! जबरदस्ती मुझे मार डालते। यों कहते हुए नायडू बच्चों पर टूट पड़ा। क्रोध के मारे काँपते हुए कहा कि मैं गाँव में ही मर कर भस्म हो जाऊँगा न कि आपरेशन कराऊँगा। सीदा-सादा इस बात को नहीं कहा। उमड़-उमड़ कर रोते हुए कहा। नायडू की पत्नी लक्ष्मी देवी को तरस आया था। उसने बच्चों से विनती की कि अंतिम दशा में पिता को मत रुलाइए। इसे सहन नहीं कर पाएँगे बच्चों ने तत्काल गाड़ी बुलाकर माँ-बाप को गाँव में छोड़कर, शहर चले गए।

नायडू वापस लौट आया। खबर सुनकर गाँव के लोग उसके घर पर जम गए थे। कैसे हैं डॉक्टर बाबू? यों परामर्श करने लगे। बेहतर। कहकर नायडू ने खुद की चिकित्सा शुरू की। सहजन पेड़ की छाल ले आने के लिए एक आदमी को भेजा था। उस छाल से काढ़ा उबालकर पिया। पान के पत्ते ले आने के लिए और एक को भेजा था। उनके ऊपर घी लगाकर आग पर गर्म करके पेट पर लगाया था। इस प्रकार दो महीने तक

विविध इलाज खुद किए। कई प्रकार के चूर्ण निगल लिए। कई प्रकार के प्रयत्न किए। धीरे-धीरे स्वस्थता होने लगी। रई का मांड पीने लगा। कुछ दिन के बाद गर्भ किए हुए चावल को पकवाकर खाना खाने लगा। और एक महीना गुजरने के बाद आँते साधारण स्थिति में आ गई। और एक महीना या डेढ़ महीने तक पथ्य में रहा था। बस, फिर पहले के जैसा नायडू एवं पक्का जोंकों का डॉक्टर बन गया। युवा जैसा दिखने लगा।

उसके लिए यह दूसरा जन्म रहा। फिर प्रैक्टीस शुरू किया। गाँव के सभी लोग बेहद खुश थे। लोगों का कहना था कि सियार के मुँह में नायडू ने पत्थर ठूँस दिया। उसने मृत्यु को जीत लिया। उससे परामर्श करने और इलाज के लिए हर रोज चबूतरे पर भीड़-भाड़ यथावत् जमने लगी थी। कोई भी उससे परामर्श करे सबसे नायडू एक ही बात कहता था।

"रे! आप सभी लोग मुझे जोंकों के डॉक्टर कहकर पुकार रहे थे, असली जोंकों के डाक्टर शहर में है।" यह बात समझ में न आने के कारण कई लोग फीका मुँह बना लेते थे। उन्हें इस बात को स्पष्ट करते हुए नायडू ने कहा था कि "जोंकों से इलाज कर मनुष्य को जिलाने से आप सभी लोग मुझे जोंकों के डॉक्टर के नाम से पुकारते थे। शहर में रहने वाले जोंकों के डॉक्टरों का व्यवहार ही अलग प्रकार का था। वे मेरे जैसे नहीं हैं। वे ही प्रथम श्रेणी की बड़ी-बड़ी जोंके है। जोंकें जिस प्रकार खून को चूसती हैं उसी प्रकार शहर के डॉक्टर मरीजों को चूसते है। सारे पैसे लूट लेते थे। बीमारी को न कम होने देते, वैसे तो मरीज को खुशी से न मरने भी देते थे। वैसे उसे जीने नहीं देते। असली जोंकों के डॉक्टर वे ही हैं। अनुभव से कह रहा हूँ।" यों जोर से कहते थे।

"बाबू! आपके रहते हुए, हम क्यों शहर के डॉक्टरों के पास जाते?" यों गाँव के लोग उत्तर में कहने लगे तो नायडू, जोंकों के डॉक्टर काफी खुश होते थे।

नब्बे या चौरानवें वर्ष जिए हुए नायडू की मृत्यु भी विचित्र प्रकार से हुई थी। एक दिन बैठे हुए व्यक्ति जैसे ही अनायास चल बसे थे। पुष्प के जैसा हँसते हुए चल बसे। किसी को पीड़ा पहुँचाए बिना चल बसे। किसी से उल्टे एक बात भी कहलावाए बिना चल बसे।

अब उस गाँव जाने पर जोकों के डॉक्टर नहीं दिखाई देते। वैसे तो जोंकें भी नहीं दिखाई देती। बात तो यह है कि गाँव में तालाब ही नहीं दिखाई देते फिर जोंकों का नाम कैसे ले सकते हैं?

– 4-66-1/4, लॉसन्स बे कॉलोनी, विशाखापटनम्-530017

❑❑❑

सृजन के आईने में अनुवाद

प्रो. पूरनचंद टंडन

अनुवाद साधना है
देशांतर के व्यक्तियों के बीच निर्मित
अव्वल गहराईयों में
पैठने का
नि:शंक ही
द्विविधा रहित
मिल बैठने का
अनुवाद, मात्र भाषांतर नहीं, वह सेतु है।

'*अनुवाद एक सेतु है।*' इस परंपरा का निर्वहन करने वाला 'सेतु के आर-पार' (नाटक), हिंदी साहित्य की सुदीर्घ परंपरा में अनुवाद को सृजनात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करने वाली एकमात्र एवं प्रथम नाट्य कृति है!

सैकड़ों बार इस पुस्तक के पृष्ठों से मुखातिब हो चुकी मेरी दृष्टि बरबस मेरा ध्यान उस वाकये की ओर खींच ले जाती है जिसमें कवि गुरु रवींद्रनाथ टैगोर ने 'गीतांजलि' का अंग्रेजी अनुवाद किया तो सारी दुनिया ने उसे सर-आँखों लिया। स्मरण रहे अनुवादोपरांत ही उन्हें साहित्य का सर्वोच्च नोबेल पुरस्कार भी मिला था। यहाँ मेरा तात्पर्य अनुवाद की कालजयी महत्ता से है।

पुस्तक में वर्णित एक पात्र कहता है--

सिद्धांतकार : एक बात निश्चित है कि अनुवाद विश्व के महत्वपूर्ण और महान् कार्यों में से एक है। अनुवाद के अभाव में हम अपनी संस्कृति से भी परिचित नहीं हो पाएँगे। आप जानते ही हैं कि विश्व का सर्वश्रेष्ठ साहित्य संस्कृत में उपलब्ध है और समकालीन भाषाएँ संस्कृत भाषा की दुहिताएँ हैं। अनुवाद के अभाव में हम अपनी नानी माँ से भी परिचित नहीं हो सकते। विश्व के अनेक देशों के समृद्ध साहित्य एवं संस्कृति को नहीं जान सकते। (पृष्ठ 57)

मिसेज खन्ना ने 'साहित्यिक फार्मलेशन' का प्रयोग एक 'इनफार्मल प्ले' की निर्मिति में किया है। अत: वह रचना में विभिन्न प्रश्न, पात्रों के माध्यम से ही सामने रखती हैं। यथा -- अनुवाद क्या है? अनुवाद का महत्व? अनुवाद के क्षेत्र? अंतरराष्ट्रीय महत्व?

अत: नाटक की कसौटी पर यह नाटक खरा उतरता है। अनुवाद क्या है? विषय पर पुस्तक किसी यांत्रिक पारिभाषिक शब्दावली (जैसे, अनुवाद मूल भाषा या स्रोत भाषा में निहित अर्थत्या या संदेश एवं शैली को यथासंभव सहज समतुल्य रूप में लक्ष्य भाषा की प्रकृति व शैली के अनुसार परिवर्तित करने की सोद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया है) की अपेक्षा एच. एच. विल्सन, मोनियार विलियम्स, दांते, बेनेदत्तों क्रोचे, जॉन मासफिल्ड, आई. ए. रिचर्ड्स, कैटफोर्ड, रामचंद्र शुक्ल, रामधारी सिंह 'दिनकर', डॉ. नगेंद्र, डॉ. गार्गी गुप्त, प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित, प्रो. पूरनचंद टंडन, प्रो. गजानन चव्हाण इत्यादि की शब्द-परिभाषाओं को, इनकी नब्ज को लेखिका ने महसूस कर अपनी कलम से उकेर दिया हो।

'सेतु के आर-पार' (नाटक)/ डॉ. संतोष खन्ना/ हेमाद्रि प्रकाशन, 1/1955, गली न. 22-ए, ईस्ट रामनगर, शाहदरा, दिल्ली-110032/ प्रकाशन वर्ष : 2018/ पृष्ठ : 120/ मूल्य : ₹300/-

मृत्यु लोक में चित्रगुप्त सभा में अनुवादक से प्रश्न करते हैं -

चित्रगुप्त : ''आप अनुवादक हैं। हम जानना चाहते हैं कि अनुवाद क्या है?

अनुक 1 : महाराज, एक भाषा की रचना को दूसरी भाषा में प्रस्तुत करने को अनुवाद कहते हैं।'' (पृष्ठ 14)

यह पुस्तक 'अनुवाद' विषय पर 'बायसफार्म' के विपरीत 'सेंट्रल ब्रक्स' को सामने रखती है। अनुवादक की 'ट्रेजिल सिचुएशन' देखिए --

महादूत : ''महाराज, ये प्राणी अनुवादक है। दूसरों की कही बात को पुनः कह देते हैं और दावा करते हैं कि ये साहित्यकार हैं।'' (पृष्ठ 7)

महादूत : ''स्मरण करिए महाराज। ऐसे ही व्यक्तियों को बहुत पहले इतालवी कहावत में 'त्रादूतोरे-त्रादीतोर' अर्थात् प्रवंचक कहा गया था, जो आज भी उतना ही सही है बल्कि उससे भी अधिक।'' (पृष्ठ 7)

यमदूत 2 : (व्यंग्यात्मक लहजे में) हाँ, महाराज। मुझे भी स्मरण आया, अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध साहित्यकार क्रोचे ने भी इनका प्रशस्तिगान करते हुए इनकी तुलना एक ऐसी नारी से की थी जो यदि सुंदर होती है तो वफ़ादार नहीं और वफ़ादार होती है तो सुंदर नहीं। (पृष्ठ 8)

महादूत : ''परकाया-प्रवेश के बिना तो यह रह ही नहीं सकता, पूरा पोंगापंथी है.... आफ़त मचा रखी है महाराज इसने, आफ़त!'' (पृष्ठ 8)

महादूत : ''दूसरे के अधिकार हथियाने में ये बड़े सिद्धहस्त हैं...।'' (पृष्ठ 12)

यमदूत 3 : ''...तुम्हारी औकात क्या है? अनुवादक को कौन कहाँ पूछता है?'' (पृष्ठ 23)

प्रायः प्रारंभिक दौर में अधिकांश पाश्चात्य मनीषियों (कुछ भारतीय विद्वानों द्वारा भी) ने अनुवादक को 'प्रवंचक', 'अनुगामी', 'जादूगर', 'मूलघाती', 'सौंदर्यघाती', 'साहित्यघाती' तक कह दिया और तो और इन्होंने अनुवाद कार्य को 'हेय' माना।

कुछ घृणित परिभाषाएँ उद्धृत कर रहा हूँ --

1. अनुवादक बड़े गद्दार होते हैं। (इतालवी कहावत)

2. अनुवाद करना पाप है। (शॉवरमैन)

3. अनुवाद महज एक समझौता है। (जोनेट)

4. कला की एक विधा के रूप में अनुवादक कभी सफल नहीं हो सकते। (राजगोपालाचारी)

यह कृति अनुवाद की प्रक्रिया एवं अनुवादक पर लगे आरोपों का तर्कपूर्ण निराकरण प्रस्तुत करती है --

सिद्धांतकार : ''यह तप है, कठिन साधना है, कोई यंत्र-तंत्र नहीं, जैसा कि अनुवादक पर आरोप है।'' (पृष्ठ 21)

सिद्धांतकार : ''महाराज, अनुवाद एक सुंदर पुष्प की सुगंध को दूसरे सुंदर पुष्प में उंडेलने की कला है। ... जब तक इस कार्य में 'स्व' का पूर्ण विसर्जन नहीं होता, अनुवाद असंभव है।'' (पृष्ठ 21)

मिसेज खन्ना ने यह स्थापना दी है कि न तो कोई विषय या अनुशासन हेय अथवा खराब होता है और न ही अनुवाद प्रक्रिया। उन्होंने यह सिद्ध कर दिखाया कि दोष ढूँढ़ना तो आसान है किंतु इन दोषों के मध्य समाधान का मार्ग प्रशस्त करना अत्यंत मुश्किल। मिसेज खन्ना ने इस पुरुषार्थ को बखूबी निभाया है और पाठकों को यह संदेश दिया है कि अनुवाद का कार्य लोक हित, समाज हित एवं राष्ट्र हित का कार्य है।

अनुवाद का वैश्विक महत्व एवं कार्य क्षेत्र अत्यंत व्यापक रहा है। इसका अंदाजा आप इस बात से लगा सकते हैं कि मानव जब पहली बार चाँद पर कदम रखने में सफल होता है तो संपूर्ण विश्व यह सूचना (न्यूज़) अनुवाद के माध्यम से ही हासिल कर पाता है। वरन् नील एल्डन आर्मस्टांग कौन थे? यह प्रश्नचिह्न (?) सदैव बना रहता। जरा देखिए मिसेज खन्ना ने इस प्रसंग को अपनी कृति में कितनी सहजता से उतार दिया है:-

अनुक 1 : ''जब मानव चाँद पर उतरा तो समूचा विश्व झूम उठा था ख़ुशी के मारे।

यह समाचार समूचे विश्व को कैसे मिला? भाषा विषमता से समूचा विश्व अलग-थलग न पड़ जाता यदि अनुवाद की सहायता न ली जाती। कल्पना कीजिए इस समाचार के प्रसार के लिए अनुवाद की कितनी महती भूमिका रही होगी।'' (पृष्ठ 31)

इस प्रकार यह पुस्तक अनुवाद के वैश्विक सरोकारों के साथ-साथ इसके विभिन्न कार्यक्षेत्रों की भी रोचक व्याख्या करती चलती है।

यह पुस्तक तकनीकी विषय को साहित्यिक कॉम्पेक्ट में प्रस्तुत करने वाली वस्तुतः प्रथम कृति है। चूँकि पारंपरिक रूप से अनेक विषय-वस्तुओं (राष्ट्रीयता, लोकहित, समाज, संस्कृति, अवसाद, आधुनिकता) पर नाट्य रचना की जाती रही है। इनमें से कुछ प्रमुख साहित्यिक अनुवादक इस प्रकार से हैं -- भारतेंदु 'मर्चेंट ऑफ वेनिस', बच्चन 'शेक्सपियर की चार महान ट्रेजिक कृतियों का पद्यानुवाद', रघुवीर सहाय 'मैकबेथ', अमृतराय 'हेमलेट' इत्यादि। हिंदी साहित्य में उल्लेखनीय यह अनुवादक व अनूदित रचनाएँ सर्वविदित हैं।

खन्ना जी ने इस नव्य कृति से एक ऐसे 'सेतु' का निर्माण किया है, जो अपने नवीन कलेवर के साथ लोकजागरण हेतु प्रस्तुत हुआ है -

गीताकार : गीता का एक यह भी सिद्धांत है कि गलत बात सहन न की जाए।...

तुलसीदास ने गीता से ही नहीं, लगभग 72 ग्रंथों के अंशों का अनुवाद कर इन्हें मानस में शामिल किया है पर उन्होंने इस बात का कहीं उल्लेख नहीं किया। उनके अनुवाद की एक बानगी देखिए -

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारतः।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मनं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।।
(गीता 4.7-8)
जब जब होई धर्म कै हानि।
बाढ़हि असुर अधम अभिमानी।।
तब तब धरि विविध शरीरा।
हरहिं कृपा निधि सज्जन पीरा।। (पृष्ठ 36)

हालाँकि लेखिका इसका निराकरण अपने इस कथन के साथ कर देती हैं -

''*सहृदय* इसे सृजन स्वीकार करते हैं।''

कथावस्तु भारतेंदु के प्रहसनों के समान बेहद रोमांचकारी है। उदाहरणार्थ,

महादूत : महाराज, भूल गए? इनके विरुद्ध कितनी ही शिकायतें आ चुकी हैं?

अतः इस नाटक में 'भारत दुर्दशा' और 'अँधेर नगरी' सम-व्यंग्य की मारक चोट महसूस होती है।

पात्र चित्रण इस पुस्तक की प्राण-वस्तु है। इसमें आप धीर-अनुवादक, वाक्पटु-सिद्धांतकार, शालीन-साहित्यकार, अभागी-अनुवादिका के साथ-साथ गीताकार वेदव्यास और रामायणकार तुलसीदास से भी मुखातिब होते चलेंगे। एक महिला पात्र का सजीव चित्रण देखिए --

महिला : "बिखरे बाल, अस्त-व्यस्त वस्त्र, फूली साँस, आँखों में विषाद और निराशा की घनी रेखाएँ -- एक महिला दौड़कर चित्रगुप्त के चरणों में गिर जाती है।'' (पृष्ठ 32) संवाद कौशल द्वारा लेखिका विशुद्ध 'मनोरंजन' की सर्जना कर पाने में पूर्णतः सफल हुई हैं। यथा --

अनुक 1 : 'He delivered the letter to the hospital' इसका अनुवाद देखिए। उसने अस्पताल में पुत्र को जन्म दिया। (हँसी का फव्वारा) (पृष्ठ 41)

अनुक 1 : दूसरा उदाहरण देखिए :
In the torrential rain, all the sleepers were washed away. (पृष्ठ 41)

मूसलाधार वर्षा में सभी सोने वाले बह गए। (पुनः हँसी) (पृष्ठ 44)

अनुक 1 : इस अनुवादक ने अंग्रेज़ी शब्द Gift को जर्मन में Gift ही रहने दिया है जबकि 'जर्मन' में उसका अर्थ है 'विष'।

यमदूत 2 : ''विष'' गिफ्ट कर दो। (हँसी) (पृष्ठ 45)

अतः यह पुस्तक 'संदर्भ-सापेक्ष' प्रत्येक संवादीय प्रकारों को उकेरती चलती है। दो भाषाओं के मध्य 'भाव-सेतु' की शानदार निर्मिति करती चलती है। इसे संतोष खन्ना जी ने बखूबी नाट्य-अंग बनाया है।

'भेड़ों के खेड़', 'वरद्हस्त', 'कानून-निष्णात', 'उंडेलना' आदि शब्द प्रयोग शाब्दिक विविधता बयाँ करते है। वहीं दूसरी तरफ अनेक पात्र आपको भाषा का महत्व बताते नजर आ जाएँगे --

अनुक 1 : अनुवाद से भाषा विकास पाती है...। (पृष्ठ 53)

जरा देखिए। 'व्यंजनात्मक वाक्य विधान' कितना नाटकीय बन पड़ा है।

यमदूत 2 : ''सघन बादल ही वर्षा वाहक होते हैं। विस्तार पाते ही बिखर जाते हैं...।'' (पृष्ठ 53)

'सेतु के आर-पार' (नाटक) मिसेज खन्ना के व्यक्तित्व का साक्षात आईना है। जिसमें सेतु का एक छोर उनके संवैधानिक विधि-ज्ञाता, प्रखर संपादिका, पत्रकार, चिंतक व साहित्यिक व्यक्तित्व की छाया प्रस्तुत करता है। वहीं इसके बरक्स सेतु का दूसरा छोर उनके सहज, मृदु, भावुक, और दर्पण के समान निर्मल व्यक्तित्व की प्रतिछाया प्रकट कर देता है।

नाटक की अंतिम पंक्तियाँ जिससे चित्रगुप्त पृथ्वी (मृत्युलोक) से वापस नरलोक की ओर प्रस्थान करते हैं, स्वत: ही नामकरण पाठक को स्पष्ट हो जाता है। सिद्धांतकार : आओ, हम भी चलें। अनुकवाद का समाधान शुभ हो गया। धर्म के नाम पर जिन लोगों ने धरा पर हा-हाकार मचा रखा था उन्हें भी अब अपने कुकर्मों का फल भोगना पड़ेगा।

अनुक : पृथ्वी पर कुछ शांति और सौहार्द का वातावरण बनेगा।

सिद्धांतकार : धन्यवाद ईश्वर का। सभी का प्रस्थान...

(यवनिका पतन)

यह नाटक 'सेतु के आर-पार' अवस्थित पृथ्वी (मृत्युलोक) और नरक लोक के मध्य समस्या समाधान रूपी एक शृंखला निर्मित कर दोनों के मध्य 'सुखद सेतु' का निर्माण करता नजर आता है।

शानदार वातावरणीय निर्मिति पाठक को इसे बरबस पढ़ने हेतु मजबूर कर देती है। यह लेखिका का 'प्लस प्वाइंट' भी है। इसमें यह नाटक वर्तमान दौर में बेहद अनूठा बन पड़ा है। एक उदाहरण देखिए --

''चारों तरफ धुंध का वातावरण है या शायद धुँआ उठ रहा है। धीरे-धीरे किरणों का प्रकाश फैलने लगता है। सिंहासन पर चित्रगुप्त अपने परंपरागत परिधान में विराजमान हैं और सावधान मुद्रा में खड़े हैं -- महादूत और कुछ यमदूत। वहीं एक तरफ जंजीरों में जकड़े कुछ व्यक्ति खड़े हैं।'' सुधी पाठक स्वत: ही वातावरण में सम्मोहित हो जाता है।

नाटक पठनोपरांत 'यवनिका-पतन' के साथ ही पाठक पूर्णत: समझ जाता है कि यह नाटक अनेक 'समसामयिक ज्वलंत विषयों को उठाता है। लेखिका की सारी जद्दोजहद इस पर केंद्रित है कि कोई भी पढ़ा छूट न पावे। अत: उन्होंने नाटक में अनुवाद और अनुवादक का महत्व प्रतिपादन एवं केंद्रीय उद्देश्य तो बनाया ही है किंतु इसके साथ-साथ प्रशासनिक अधिकता के बतौर 'न्याय की लेट-लतीफी' पर बेखौफ प्रश्नचिह्न भी खड़ा किया है जो पिछले दिनों एक तलाकशुदा मुस्लिम महिला को 18 वर्ष पश्चात्, मृत्योपरांत मिले न्याय (Justice Dela is Justice Denied) की ओर भी संकेत करता है।

यही समसामयिकता इस नाटक की जीवंत प्रासंगिकता और रंगमंचीय अनिवार्यता की मांग करती है।

महादूत : कानून की प्रक्रिया बकायदा चलती रहे, संगीन से संगीन अपराधी छूटते रहें, कभी कहीं से सिफारिश आए, कभी कहीं से, नतीजा देख रहे हैं न? धीरे-धीरे नरक खाली हो रहा है महाराज, आप अपना साम्राज्य चौपट करके रहेंगे... (पृष्ठ 10)

महादूत : देख लीजिए! इस बीच माँ शारदा सिफारिश लेकर आ गईं तो आप उन्हें इनकार नहीं कर पाएँगे महाराज। (पृष्ठ 11)

नरकलोक में अनुवादक, पृथ्वीलोक की न्याय व्यवस्था बताते हुए विदीर्ण कर देने वाली उक्ति कहता है --

''वहाँ न्याय की आशा सूखे तिलों से तेल निकालना है। मुकद्दमें चलते हैं बरसों, वादी न्याय को तरस जाते हैं।'' (पृष्ठ 23) तंत्र का हिस्सा होकर, ऐसी निष्पक्षता संपूर्ण नाटक और लेखिका के लोकतांत्रिक चरित्र को बेलौस अभिव्यक्ति प्रदान करती है।

निश्चित ही लेखिका (संतोष खन्ना) में - सर्जनात्मक प्रतिभा, विभिन्न विषयों का ज्ञान, स्रोत भाषा एवं लक्ष्य भाषा की सम्यक् समझ, जीवन का व्यापक और गहरा अनुभव, गहरी सामाजिक प्रतिबद्धता के साथ; कुशल अनुवादक के समस्त गुण आत्मस्थित हैं।

मेरा मानना है कि ज्ञान विधा के संदर्भ में अनुवाद मात्र भूगोल ही नहीं अपितु संपूर्ण जीवनशैली और संस्कृति भी है। 'सेतु के आर-पार' (नाटक) अनेक प्रश्नों के माध्यम से इस 'अनुवाद संस्कृति' को बयाँ करता है। आगंतुक (पात्र) की 'व्हाइट मैन बर्डन थ्योरी' को संकेत पात्र के द्वारा प्रतिष्ठा रचता है जिससे पाठक

'एक भारत, एक भारतीय' के भाव से रोमांचित हो उठता है। अतः मुझे लेखिका (श्रीमती संतोष खन्ना) को साधुवाद देते हुए बेहद गर्व महसूस हो रहा है कि उन्होंने अथक परिश्रम एवं प्रयासों से अनुवाद जैसे 'तकनीकी विषय को साहित्यिक सृजनात्मकता प्रदान कर ऐसी प्रथम ऐतिहासिक कृति की रचना कर दी है जो निश्चित ही आने वाले समय में इस परंपरा का 'माइनस्टोन' कहलाएगी।

न रोक अनुवादक को तू यहाँ
जाने दो उसको स्वर्गधाम
वह जिया हमेशा परहित में
कर त्याग तप किया महाकाम
भाषाएँ जोड़ी, सिर जोड़े
बना दिया विश्व को एक ग्राम। (पृष्ठ 117-118)

अतः जो नाटक के कंज्यूमर्स, पाठक व विचारक हैं उन्हें निश्चित ही इस कृति से लाभ होगा। इसके साथ ही नाट्यशास्त्र एवं रंगमंच के विद्यार्थियों, शोधार्थियों एवं शिक्षकों के ज्ञान को भी यह कृति समृद्ध करेगी ऐसा मेरा विश्वास है...!

– 'संकल्प', डी-67, शुभम् एंक्लेव, पश्चिम विहार, नई दिल्ली

❑❑❑

विश्व भाषा हिंदी

वशिनी शर्मा

'विश्व भाषा हिंदी' केंद्रीय हिंदी संस्थान के पाठ्यक्रम 300 और 400 से जुड़े विदेशी छात्रों के लिए लिखी गई है। पुस्तक का उद्देश्य है विदेशी छात्रों को हिंदी भाषा के इतिहास से परिचित कराना। ये छात्र प्राय: 200 के पाठ्यक्रम के स्तर तक 'हिंदी साहित्य का इतिहास' का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर चुके होते हैं लेकिन भाषा के इतिहास से ये छात्र अपरिचित होते हैं। भाषा का इतिहास इन छात्रों के लिए एक नया विषय है। विदेशी छात्र भारतीय समाज की उस भाषिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं दार्शनिक पृष्ठभूमि से परिचित नहीं होते जिसकी जानकारी भाषा एवं भाषा के इतिहास को समझने के लिए आवश्यक है। ये छात्र विभिन्न भाषा-भाषी देशों के होते हैं जिनकी समस्याएँ एवं आवश्यकताएँ अलग-अलग होती हैं।

विदेशी छात्रों की उपर्युक्त कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए पुस्तक में यथासंभव सरल शब्दावली एवं सीमित संरचनाओं का उपयोग करने का प्रयास किया गया है। विदेशी छात्रों में अधिकतर छात्रों का भारोपीय परिवार की भाषा से संबद्ध हैं। अत: पुस्तक में भारोपीय परिवार से संबद्ध भाषाओं पर विस्तार से चर्चा है।

भारत में जिन चार प्रांतों की भाषाएँ बोली जाती हैं उनका भी विस्तार से वर्णन किया गया है। आज हिंदी न केवल विश्वस्तर पर शिक्षण की भाषा बन गई है वरन् बहुराष्ट्रीय कंपनियों के भारत में प्रवेश ने उसे वैश्विक संदर्भ में स्थापित कर दिया है। आज अंग्रेजी विज्ञापनों में हिंदी का बढ़ता प्रयोग, विश्वस्तर पर हिंदी समाचार चैनलों ने उसे यह विश्वास दिला दिया है कि भारत तक पहुँचने के लिए, उसकी सामासिक संस्कृति से परिचित होने के लिए हिंदी ही माध्यम भाषा है। आज विश्व के अनेक देशों में हिंदी की विदेशी भाषिक शैलियों का विकास हुआ जैसे 'फीजीबात हिंदी', सूरीनाम में 'सरनामी हिंदी' दक्षिण अफ्रीका में 'नैताली' तथा उज़बेकिस्तान और कज़ाकिस्तान में 'पारया'। ऐसी 'हिंदी' और उसके इतिहास को जानने के लिए छात्र इच्छुक रहते हैं। अत: प्रस्तुत पुस्तक विश्व भाषा हिंदी, इस रूप में भी छात्रों के लिए आवश्यक है। उपर्युक्त विवेचना से जुड़ा एक प्रश्न सहज रूप से उठता है कि किसी भाषा के अध्ययन के लिए उसके इतिहास की जानकारी आवश्यक क्यों? मनुष्य जीवन की विकास यात्रा के समान ही भाषा के विकास की एक लंबी यात्रा है, उस यात्रा के विकास के कई पड़ाव हैं, जहाँ से भाषा को गुजरना पड़ता है।

जैसा कि हम सभी जानते हैं कि हिंदी भाषा का इतिहास अत्यंत प्राचीन काल से माना जाता है। भाषा में इतने लंबे अंतराल में होने वाले परिवर्तनों से छात्रों को परिचित कराने के लिए उसके क्रमिक विकास को समझना अति आवश्यक है। भाषा के विकास में जहाँ

विश्व भाषा हिंदी/ प्रो. मीरा सरीन/ प्रकाशक-युक्ति प्रकाशन-ए-2, न्यू इंडिया अपार्टमेंट, प्लाट संख्या-6, सेक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली-110085 / प्रकाशन वर्ष : 2017/ पृष्ठ : 206/ मूल्य : ₹400/-

संधा भाषा, सधुक्कड़ी लोकभाषा, देसी भाषा, अबहट्ट, प्रारंभिक हिंदी, पुरानी हिंदी आदि नाम दिए गए हैं, वहाँ 'गूजरी' और 'दक्खिनी' हिंदी मूलतः खड़ीबोली हिंदी का ही एक रूप है। 'खड़ी बोली' हिंदी शब्द का अस्तित्व बहुत बाद में आया यथा भाखा, भाषा, हिंदवी, हिंदुस्तानी, हिंदुई, रेख़्ता आदि अनेक नाम हिंदी के लिए समय-समय पर आए। इस प्रकार पालि, प्राकृत, अपभ्रंश और खड़ीबोली से हिंदी का स्वरूप निश्चित हुआ। आज छात्र जब कक्षा में शैक्षिक हिंदी को सुनता है, तब बाजार में उसका परिचय कक्षा से भिन्न भाषा से होता है। छात्रावास में रहकर द्वितीय भाषा-भाषी छात्रों का हिंदी से रूबरू होता है, तो भाषा के बदलते रूपों को वह हर क्षण महसूस करता है।

उपर्युक्त संदर्भ से जुड़ा हुआ एक प्रश्न है, जो अक्सर पूछा जाता है कि भाषा के इतिहास की तो अनेक पुस्तकें लिखी गई हैं, फिर इसकी क्या आवश्यकता? इसका उत्तर यही है कि मातृभाषा से इतर अन्य भाषा/द्वितीय/विदेशी के रूप में शिक्षण सामग्री निर्माण के सिद्धांत के तहत शिक्षण सामग्री के लिए चयन, अनुस्तरण और प्रस्तुतीकरण के प्रश्नों के साथ भी उसे जुड़ना पड़ता है। इस दृष्टि से विदेशी छात्रों के लिए लिखी गई पुस्तक अभी तक मेरे संज्ञान में नहीं है।

छात्रो के लिए कठिनाइयाँ भी हैं जैसे एक ही कक्षा से विभिन्न भाषा-भाषी एवं विभिन्न देशों के छात्र होते हैं। इन छात्रों का स्तर, संस्कृति, उद्देश्य तथा इनकी अपने-अपने देशों के सामाजिक तंत्र में हिंदी की स्थिति अलग-अलग होती है। इन सभी बिंदुओं को पुस्तक लिखते समय ध्यान में रखा गया है।

पुस्तक में कुल सात अध्याय हैं। प्रथम अध्याय विश्वभाषा परिवार से संबंद्ध है जिसके अंतर्गत विश्व की भाषाओं का वर्गीकरण प्रस्तुत करते हुए प्रत्येक का सामान्य परिचय दिया गया है। आर्यभाषा परिवार पर विस्तार से लिखते हुए आर्यभाषाओं का वर्गीकरण एवं संक्षिप्त परिचय दिया गया है। भारत में जिन चार भाषा परिवारों की भाषाएँ बोली जाती हैं, उनका विस्तार से वर्णन द्वितीय अध्याय में है। तृतीय अध्याय हिंदी की बोलियों से संबंद्ध है जिसके अंतर्गत हिंदी की बोलियों को वर्गीकृत कर प्रत्येक बोली का सामान्य परिचय दिया है। चतुर्थ अध्याय हिंदी भाषा के विकास से जुड़ा है। आठवीं-नवीं शताब्दी, सिद्धों-नाथों की हिंदी से प्रारंभ होकर हिंदी के अंतरराष्ट्रीय पटल तक पहुँचने में जिन विविध रूपों, परिवर्तनों से वह विकसित हुई है उसका विस्तार प्रस्तुत अध्याय में किया गया है। पाँचवें अध्याय में हिंदी, हिंदुस्तानी और उर्दू को विकासक्रम की एक कड़ी के रूप में देखा गया है। 'हिंदी' शब्द प्रकार भाषावाची बन गया, इसका भी एक प्राचीनतम इतिहास है। हिंदी को अपनी विकास अवस्था तक पहुँचने में अनेक रूप धारण करने पड़े ¼ हिंदवी, हिंदुस्तानी, हिंदुस्थानी, रेख्ता, रेख्ती, दखिनी, गूजरी, खड़ीबोली आदि जिसका संक्षिप्त परिचय इस अध्याय में दिया गया है। छठा अध्याय 'हिंदी भाषा के विविध रूप' शीर्षक से संबंद्ध है जिसके अंतर्गत संपर्क भाषा, राष्ट्रभाषा और राजभाषा की संकल्पना स्पष्ट करते हुए, हिंदी के प्रयोजनमूलक रूप अर्थात् विभिन्न स्थितियों, संदर्भों और उद्देश्यों के अनुरूप वह भिन्न-भिन्न भाषा रूपों का प्रयोग किस प्रकार करता है, उसपर विस्तृत चर्चा करते हुए 'जनसंचार और हिंदी' विषय पर विस्तार से लिखा गया है। जनसंचार माध्यम ने हिंदी को 'ग्लोबल विलेज' बनाया है इसे उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया गया है और अंतिम अध्याय 'विश्वभाषा हिंदी' परिचय से जुड़ा है। हिंदी आज 'भारत' की बपौती नहीं है, भारत की भाषा को सीखने का अपना अलग-अलग उद्देश्य है। इन देशों में हिंदी शिक्षण की स्थिति उनकी अपनी-अपनी वैयक्तिक एवं सामाजिक आवश्यकताओं पर निर्भर है जैसे- श्रीलंका, इंडोनेशिया, मलेशिया आदि देशों के लिए हिंदी सामाजिक, सांस्कृतिक प्रेरणा प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त अमरीका, इंग्लैंड, रूस, जापान, फ्रांस आदि देशों में इसके अध्ययन-अध्यापन का कार्य हो रहा है। अप्रवासी देशों में हिंदी का व्यवहार करने वालों के लिए हिंदी उनकी संस्कृति का अंग है, लेकिन शिक्षण व्यवस्था ठीक न होने के कारण उसका स्तर काफी हल्का है। इन देशों के छात्रों के लिए हिंदी भाषा और साहित्य का अध्ययन एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। इन सभी बिंदुओं को पुस्तक लिखते समय ध्यान में रखा गया है। आज विश्व का प्रत्येक नागरिक वैश्विक संदर्भ में हिंदी की स्थिति और प्रयोग को देख रहा है।

विश्वभर में एक सकारात्मक माहौल देखने को मिल रहा है। विविध प्रयोजन हिंदी को बहुआयामी

स्वरूप प्रदान करने में लगे हैं। ऐसे में हिंदी के विशेष अध्ययन हेतु इस पुस्तक में हिंदी भाषा के उद्‌भव और विकास तथा उसके विविध रूपों के साथ-साथ उनकी विश्व व्यापकता का निदर्शन है। विश्व के अनेक देशों में हिंदी भाषा के प्रति बढ़ती रुचि के कारण ही जहाँ विश्वभर से हिंदी प्रेमी छात्र भारत में आते हैं वहीं उन देशों में भी हिंदी अध्ययन-अध्यापन निरंतर बढ़ रहा है। हिंदी के क्षेत्र में विदेशी विद्‌वानों का योगदान तो उल्लेखनीय रहा ही है। केंद्रीय हिंदी संस्थान जैसी प्रतिष्ठित संस्था के अंतरराष्ट्रीय हिंदी शिक्षण विभाग की अध्यक्ष रहीं विदुषी प्रो. मीरा सरीन ने हिंदी भाषा एवं साहित्य संबंधी सुदीर्घ शिक्षण अनुभवों के आधार पर इन पुस्तक में हिंदी के व्यापक परिदृश्य की सारगर्भित जानकारी दी है। हिंदी भाषा के अध्येताओं के लिए यह एक पठनीय एवं संग्रहणीय पुस्तक है।

– 53, कैलाश विहार, आगरा, उत्तर प्रदेश - 282007

❑❑❑

गज़लों में जीवन सत्य

डॉ. जय शंकर शुक्ल

"सिराज औरंगाबादी" (जीवन, व्यक्तित्व एवं संकलित गज़लें) संपादनकर्ता असलम मिर्झा का एक अभिनव कृत्य है; जिसमें से उनका संकल्प अपने पूर्ववर्ती विशिष्ट रचनाकारों के प्रति प्रदर्शित होता है। गज़लकार सिराज औरंगाबादी लोकभाषा में गज़लें कहने के हिमायती शायरों में प्रथम पंक्ति के माने जाते हैं। उस कालखंड में गज़ल की सर्वमान्य और प्रचलित भाषा फारसी से अलग कुछ सोचने कहने की कोशिश करने वाले शायर को हम सिराज साहब के रूप में जानते व मानते हैं। अदब के नए प्रतिमान रचने के कारण ये अपने दौर के महान शायर माने जाते हैं। इस अर्थ में असलम मिर्झा साहब धन्यवाद के पात्र हैं; जिन्होंने लोक के सामने लोक भाषा में रचना करने वाले शायर को लाने का काम किया।

जीवनी और व्यक्तित्व अपने शब्दों में अभिव्यक्त कर असलम मिर्झा ने सिराज साहब को उनके कृतित्व के साथ पुनः एक नए पाठ के साथ चर्चा में लाने का काम किया है। इस पुस्तक में सिराज साहब की कुल 103 गज़लें संग्रहीत है; जिनके तेवर और कहन अलहदा हैं। मिज़ाज़ की बात करें तो हर गज़ल में उसके अलग-अलग शेड देखने को मिलते हैं। असलम मिर्झा साहब ने कुछ इस प्रकार अपनी बात कही है-

"औरंगाबाद जो दक्खिन देश का एक बड़ा शहर है यहाँ भी दक्खिनी के बड़े कवि हुए जिनमें प्रथम वली औरंगाबादी रहे, जिन्होंने दक्खिनी भाषा को माँज कर उसे आज की उर्दू के निकट ले आने में अपना कमाल दिखाया। वली के बाद शाह सय्यद सिराज औरंगाबादी आए, परंतु उनकी शायरी में दक्खिनी भाषा का प्रभाव कम हो चुका था।"

असलम मिर्झा ने समय की पदचाप को न केवल नजदीक से समझा है, अपितु उसे अपने चयन व संपादन द्वारा स्पष्ट करने का भी प्रयत्न किया है। सिराज के व्यक्तित्व के बारे में अपनी बात कहते हुए असलम मिर्झा कहते हैं वे कि- "सिराज की शायरी का जब-जब विश्लेषण होता है तो यह विदित होता है कि जहाँ वह फारसी के गद्य व पद्य के भली-भाँति ज्ञाता थे वहीं वे दक्खिनी साहित्य के भी जानकार थे। सिराज की शायरी में दक्खनी शायरी के के रीति-रिवाज के साथ-साथ वली औरंगाबादी के यहाँ भाषा की जो नूतन अभिरुचि का जल्लोश दिखाई देता है उसमें पूरी तरह सिराज उभर कर आते हैं।" यानी सिराज परंपराओं की निरंतरता के साथ-साथ उसमें सुधार के भी हिमायती रहे हैं।

आगे सिराज के विशेष अवदानों को व्यक्त करने के क्रम में मिर्झा लिखते हैं- "सिराज को शायरी की जन्मजात योग्यता प्राप्त थी, वे जन्मजात प्रतिभा के धनी थे। अपनी सहित्यिक रुचि के कारण ही वे उर्दू गज़ल की एक शानदार और जानदार आवाज बनकर आज भी पढ़ने वालों को मंत्र मुग्ध करते हैं। सिराज के पास आत्ममुग्ध करने की जो क्षमता है वह कम ही कवियों

सिराज औरंगाबादी/ असलम मिर्झा/ मिर्झा वर्ल्ड बुक हाउस, हमीद कॉम्पलेक्स, कैसर कॉलोनी, औरंगाबाद/ प्रकाशन वर्ष : 2019/ पृष्ठ : 203/ मूल्य : ₹300/-

के पास दिखाई देती है। उर्दू के एक समीक्षक डॉ. मो. हसन ने सिराज के विषय में लिखा है कि- "सिराज औरंगाबादी उस अदबी रिवायत के वारिस थे जो सदियों से दक्खिन में फरोग पा रही थी। वजही से लेकर वली तक यह अदवी रिवायत नई मंजिलें तय करती रही। वली और सिराज उस रिवायत का सिलसिला शुमाली हिंद की शायरी से मिलाते हैं।"

इस तरह रिवायतों को अपने योगदान से समृद्ध करने वाले सिराज न केवल पाठक वर्ग में बल्कि रचनाकारों के मध्य भी सम्मान व आदरत के पात्र रहें। सिराज ने विभिन्न मीटरों में अपनी रचनाओं को प्रस्तुत कर अपनी रचनात्मक प्रतिभा का लोहा मनवाया। इस बात को असलम मिर्झा कुछ इस तरह से कहते हैं- "सिराज के समकालीन कवियों जैसे शाह कासिम, बेकल दौलताबादी, फिदवी दक्खनी, अबदाल बुरहान पुरी एवं उज्लत सुर्ती आदि थे। और उनके पश्चात् आने वाले मीर तकी मीर, मिर्झा मो. रफी सौदा, मीर दर्द इत्यादि ने सिराज की जमीनों पर गज़लें ही नहीं कही वरन् सिराज की शायरी में जो विषय है उन्हें अपने-अपने दंगर और शैली में कहने का प्रयास भी किया। उसी प्रकार इब्राहिम ज़ौक, मिर्झा ग़ालिब और अन्य कवियों के यहाँ हमें सिराज की प्रतिध्वनि साफ सुनाई देती है। डॉ. जमील जालीवी के कथन से इस बात को और गहराई से समझा जा सकता है-

"पूरी उर्दू शायरी के पसमंझर में सिराज की शायरी को रखकर देखा जाए तो वह उर्दू शायरी के रास्ते पर एक मर्कजी जगह पर खड़े नज़र आते हैं। जहाँ से मीर, सौदा, दर्द, मुसहफी, आतिश, मोमिन, ग़ालिब और इकबाल की रवायत के रास्ते साफ नज़र आते हैं। इसीलिए उनकी आवाज़ सारे बड़े शायरों की आवाज, लय और लहजे में मौजूद है।"

संपादक असलम मिर्झा धन्यवाद के पात्र हैं; जो उन्होंने इतने अजीम शायर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व जनमानस के सामने लाने का एक प्रयत्न एक बड़े शाहकार के रूप में किया। स्वयं उन्हींके शब्दों में- "पाठकों की रुचि का ध्यान रखते हुए मैंने सिराज की ऐसी गज़लों को चुना जो सिराज की शायरी और उनकी कला को समझने में सहायक हैं और उन्ही गज़लों का देवनागरी में लिप्यतंरण किया। जिन-जिन गज़लों में फारसी, उर्दू और अरबी के कठिन शब्द हैं, उनके हिंदी अर्थ संबंधित गज़ल के नीचे दिए हैं; इस प्रकार शेर आसानी से समझ में आ जाएगा।

सामान्य चर्चा में विशिष्ट विषयों को व्यक्त करना असलम मिर्झा साहब की विशेष योग्यता मानी जा सकती है। उन्होंने एक युग का खाका खींचते हुए युग के महत्वपूर्ण हस्ताक्षरों के मध्य महान शायर सिराज का मूल्यांकन करने का विशिष्ट कार्य किया है। मिर्झा ने इस पुस्तक के 203 पृष्ठों में कुल 103 गज़लों को चुनकर तथा उनका तर्जुमा करके संग्रहीत किया है। गज़लों के चयन में मीटर तथा कथ्य का विशेष ध्यान रखा है। ये गज़लें अपने युग की सामाजिक व्यवस्था का आइना हैं। जिनसे गुजर कर व्यक्ति उस काल के अनुभवों से दो-चार हो सकता है।

असलम मिर्झा का यह कार्य उन्हें बड़े संपादकों तथा तर्जुमाकारों की पंक्ति में लाकर रख देता है। इन विशेषताओं के साथ इस पुस्तक में संपादक महोदय के लिए कुछ बातों पर ध्यान रखने की हिदायत भी आवश्यक है। हिंदी में नए होने के कारण वर्तनी एवं मात्राओं पर मिर्झा साहब कम ध्यान दे पाए। आशा है आगे की कृतियों एवं इसके संस्करण में इस बात का ध्यान अवश्य रखेगें।

वर्तनी व मात्रा के बदलाव से शब्द का अर्थ तक बदल जाता है। विद्वान संपादक इस बात अवश्य ध्यान रखेगें, ऐसी मैं आशा करता हूँ। कुल मिलाकर, यह पुस्तक संग्रहणीय है। जनमानस तक सिराज साहब व उनके युग की रवायतों को पहुँचाने का महत्वपूर्ण कार्य किया है।

– भवन सं., 49 गली सं.-06, बैंक कॉलोनी, मंडोली, दिल्ली-110093

❑❑❑

मुद्दे की बात और एक सहज व्यंग्यकार का लेखन

डॉ. रमेश तिवारी

समकालीन व्यंग्य यथार्थ यह है कि आज के अधिकतर व्यंग्य लेखन से चाहे-अनचाहे मुद्दा निरंतर छूटता अथवा गायब होता जा रहा है। जीजा जी छत पर हैं, भाभी जी घर पर हैं, टाइप अभिव्यक्तियों को ही व्यंग्य का पर्याय समझने की भूल की जा रही है। व्यंग्य को 'मजे-मजे' में, मजे-मजे के लिए' लिखने का संदेश दिया जा रहा है। ऐसे माहौल में व्यंग्य की तस्वीर तो धूमिल होनी ही है। समकालीन व्यंग्य की चुनौती अथवा संकट यह निरंतर धुंधली होती तस्वीर ही है। बावजूद इसके इस धुंध भरे वातावरण में रोशनी की कुछ किरणें भी मौजूद हैं जो अपनी पूरी ऊर्जा से निरंतर इस धुंध को छांटने का प्रयास करती दिखाई पड़ती हैं। हिंदी व्यंग्य में ऐसी ही एक शख्सियत का नाम है- संतोष त्रिवेदी। समकालीन व्यंग्य लेखन में संतोष त्रिवेदी का नाम नया नहीं है। संतोष त्रिवेदी का परिचय मुझे देना हो तो कुछ यूँ देना चाहूँगा : उम्र लगभग पचास साल, रंग गोरा, कद औसत से अधिक (कुछ ऐसा जो दूर से ही पहचान में आ जाए), मिजाज ईमानदारी से परिपूर्ण, व्यंग्य में दखल, रचनाओं के माध्यम से सक्रिय हस्तक्षेप, समाचार पत्र-पत्रिकाओं में लगातार प्रकाशित, लेखन और चिंतन में साम्य के पक्षधर और दिखावेपन की दोहरी जिंदगी से पूरी तरह असंबद्ध। गलत बात कितने भी करीबी व्यक्ति ने कही हो, उससे असहमति जताने और आवश्यकतानुसार उसका विरोध करने का गुण उनका स्थाई भाव है, और इसे बदल पाना असंभवप्राय है। मेरा मानना है कि ऐसे व्यक्ति की हिंदी व्यंग्य में सक्रिय मौजूदगी ही हिंदी व्यंग्य की सेहत के लिए अच्छी है। संतोष त्रिवेदी पेशे से हिंदी भाषा-साहित्य के प्रवक्ता होने के कारण भाषा-साहित्य के अध्ययन-विश्लेषण में पर्याप्त दक्षता रखते हैं। अध्ययन-विश्लेषण के परिणामस्वरूप हासिल यह समझ इनके लेखन और चिंतन-मनन को धारदार बनाती है।

'सब मिले हुए हैं' शीर्षक से संतोष त्रिवेदी का पहला व्यंग्य संग्रह सन् 2016 में अयन प्रकाशन, महरौली, दिल्ली से प्रकाशित हो चुका है। अपने पहले व्यंग्य-संग्रह में प्रकाशित रचनाओं के आरंभिक लेखन से स्वाभाविक रूप से निरंतर प्रगति की ओर अग्रसर संतोष त्रिवेदी का लेखन पाठकों के लिए हर्षमिश्रित आश्वस्ति का विषय है। इनका अद्यतन व्यंग्य संग्रह भी अयन प्रकाशन ने ही छापा है। शीर्षक है- 'नकटों के शहर में'। उल्लेखनीय है कि इनकी रचनात्मकता निरर्थक, निरुद्देश्य और मात्र लिखने के लिए लिखना परिणाम न होकर हमारे समय-समाज के बीच निरंतर व्याप्त होती विसंगतियों-विद्रूपताओं की खोज और टकराहट से जन्म लेती है। यदि अद्यतन संग्रह (नकटों के शहर में) में संकलित चंद प्रमुख रचनाओं पर विचार करें तो हम पाएँगे कि 'आरत काह न करइ कुकरमू' हो या 'न बिक पाने का दुख' या अन्य रचनाओं को जितना पढ़ा-समझा

'नकटों के शहर में'(व्यंग्य-संग्रह)/ संतोष त्रिवेदी/ प्रकाशक-अयन प्रकाशन, महरौली, दिल्ली/ प्रकाशन वर्ष : 2019/ पृष्ठ : 128/ मूल्य : ₹250/-

और जाना जाता है, उसका निष्कर्ष यही निकलता है कि संतोष त्रिवेदी की रचनाएँ समाज की विसंगतियों-विद्रपताओं को सामने लाने का परिणाम हैं।

हम जब आज के समय-समाज की पड़ताल करते हैं तो पाते हैं कि आज हम सब बाजारवादी व्यवस्था में जीने के लिए मजबूर हैं। चाहकर भी व्यवस्था से स्वयं को बाहर रख पाना या बच पाना संभव नहीं है। बाजारवादी व्यवस्था हम सबको अपने सुरसारूपी मुख में समाविष्ट कर लेने को बेताब है। हमारे समय-समाज की विडंबना यह है कि आज के दौर में जो बिकाऊ है, अथवा बिक गया, वही सफल है। जो बिकाऊ न हो सके, या जो 'अनबिके' रह गए, उनको आज के समय के लिए मिसफिट और असफल करार दिया जाता है। यह पढ़ने-सुनने में पाठकों को भले ही कड़वा लगे, किंतु समकालनी यथार्थ यही है। इसका एक छोटा सा नमूना आप 'न बिक पाने का दुख' रचना में देख सकते हैं। यह रचना 'आईपीएल' के लिए क्रिकेट खिलाडियों की नीलामी में अनबिके रह गए खिलाड़ी की व्यथा-कथा को जिस तरह उभारती है, वह हमें बार-बार सोचने को मजबूर करती है। "अनबिका रह जाना उनके कैरियर की सबसे बड़ी असफलता है। इस बिकाऊ समाज में 'अनबिके' रहने का दर्द उनसे ज्यादा और किसे होगा? घर वालों को बिना-बिका मुँह दिखाएँगे तो लज्जा नहीं आएगी? वे तो उजला करने वाली क्रीम चुपड़कर बैठे थे, फिर भी खरीदारों को गच्चा नहीं दे पाए। उन्हें पता नहीं कि गच्चा देने का काम बाजार का है। आज बाजार से बाहर हुए हैं, कल 'खेल' से भी बाहर होंगे। जो खुद को ठीक से बेच भी न सके वह कुछ भी हो सकता है, अच्छा 'खिलाड़ी' नहीं।" यह तो मात्र एक उदाहरण भर है। ऐसी असंख्य विसंगतियाँ प्रायः हम सब देखते हुए जीने के अभ्यस्त हो चुके हैं, किंतु इनके पीछे की अमानवीयता को जब रचनाकार अपनी रचनात्मकता में समाविष्ट कर हमारे सामने रखता है तो हमारी आँखें खुली-की-खुली रह जाती हैं। संतोष अक्सर इसी प्रकार अपनी रचनाओं के लिए विषय की तलाश करते हुए और उनके साथ प्रायः इसी प्रकार का ट्रीटमेंट करते हैं। ऐसी रचनाओं को पढ़कर आप मुस्कुरा तो नहीं सकेंगे। यह अमानवीय व्यवस्था लेखक को बहुत गहरे तक कचोटती है जिसे वह अपनी रचना में पुनः सृजित कर संवेदना के उसी धरातल पर पाठकों को भी जोड़ने का सार्थक प्रयास करता है। यही कारण है कि ऐसी अनेक रचनाओं को पढ़ते हुए हमारे भीतर संवेदनाओं पर पड़ी धूल-गर्त की परत मानो छिलती हुई प्रतीत होती है।

वर्तमान समय की जो नियामक शक्तियाँ हैं, उनमें राजनीति सर्वप्रमुख है और राजनीति का वर्तमान स्वरूप इतना विकृत हो चुका है कि उसकी ओर कोई भी सभ्य व्यक्ति अथवा समाज आकर्षित ही नहीं होता। आज आप किसी शरीफ अथवा पढ़े-लिखे मनुष्य की रुचि राजनीति में शामिल होकर कुछ नया करने की ओर नहीं देख सकेंगे। संतोष की लेखकीय दृष्टि राजनीति और अन्य सभी समकालीन नियामक शक्तियों पर निरंतर केंद्रित रहती है। चाहे वह बाजार हो, धर्म, राजनीति हो अथवा कुछ और। इस संग्रह में अनेक ऐसी रचनाएँ संकलित हैं जिन्हें पढ़ते हुए पाठकों को एक अलग ही अंदाज, एक अलग ही तेवर का साक्षात्कार होगा। इस संग्रह की रचनाओं में आरत काह न करइ कुकरमू न बिक पाने का दुख, दुबई से बैंक के नाम पाती, नकटों के शहर में, पुस्तक मेले में किताबों से बतकही, मित्रता पर ऑनलाइन वज्रपात, गिरकर उठने का सुख, बिनु व्हाट्सअप सब सून, टोंटी-तोड़ जवाब, कलियुग के देव गुगलदेव, पलटने का मुफीद मौसम, बस एक सम्मान का सवाल है, ट्रोल नाके से गुजरना, साहित्य में सफल प्रक्षेपण, फेसबुक कुछ दृश्य, पुस्तक-मेला लाइव, सब मिले हुए हैं, परसाई-प्रेमी से मुलाकात, काम पर भारी पड़ता नाम, आश्वासन आखिरी दौर का इत्यादि प्रमुख रूप से पठनीय हैं। हालाँकि कहीं-कहीं कुछ रचनाओं को पढ़ते हुए आप पाएँगे कि हिंदी का यह लेखक अंग्रेजी के शब्दों को जबरन रचना में ठूँसने का पक्षधर है, बल्कि जहाँ प्रसंग की मांग है वहाँ उस शब्दविशेष को उसका अनुवाद कर प्रस्तुत करने की बजाय प्रचलित रूप में ही रखकर पाठकों की सुविधा का ख्याल रखा गया है ताकि अर्थ बाधित न हो। ना ही पठनीयता में बाधा हो।

हमारे समय की विडंबना यह है कि यहाँ नीचे गिरने वालों की भीड़ बढ़ती ही जा रही है और आश्चर्य यह है कि गिरने का कोई अफसोस भी नहीं है। ऐसी

प्रवृत्तियों को लक्ष्य करते हुए एक रचना लिखी गई है- 'गिरकर उठने का सुख'। इसे पढ़ते हुए इसके सहज-सरल और सांकेतिक वाक्य रचना को बहुत प्रभावी बनाते हैं। "वे फिर से गिर गए हैं। अब की बार गहरे गड्ढे में गिरे है सड़क पर चलते हुए वे देश के प्रति चिंतन कर रहे थे। इस बीच बरसाती पानी से लबालब छोटे-मोटे गड्ढों ने कई बार उन्हें अपनी गोद में बैठाना चाहा पर वे सफल नहीं हो पाए। वे जरा गहरे मिजाज के आदमी ठहरे, इसलिए गहराई में चले गए। दृढ़निश्चयी इतने कि बारिश की तरह उनका चिंतन भी मूसलाधार बरस रहा था। .... सहमति से 'गिरना' वैसे भी कोई अपराध नहीं है। यहाँ तो सड़क, सरकार और ईश्वर सब उनके साथ हैं। वे गिरे हैं। तो इसमें भी देश का ही भला है। गिरने में काहे की लाज और शर्म! वे तो फिर भी खुलेआम गिरे हैं। अब वे खुलकर चिंतन करने लगे।" लेखक ने बड़ी ही सफाई से इन पंक्तियों में संकेतों द्वारा व्यंग्य-प्रहार किया है। इसी से मिलती-जुलती एक रचना है- 'पलटने का मुफीद मौसम।' यूँ तो परिर्वतन प्रकृति का अटल सत्य है। किंतु मनुष्य परिवर्तनशील होकर भी अपनी बात से पलट जाए तो इसे अच्छी आदत नहीं माना जाता, कमजोरी माना जाता है। यह रचना इन्हीं मानवीय प्रवत्तियों की पड़ताल करती है। इस रचना को पढ़कर पाठकों को अपने आसपास के चरित्रों की याद भी आ सकती है। असल में लेखक जिस परिवेश में जीवन जी रहा होता है, उसमें जो कुछ भी उसे असंगत प्रतीत होता है, उन्हीं बिदुओं पर उसकी कलम चलती है। लेखक हम लोगों के बीच का मनुष्य ही तो होता है। हमारी तरह ही उसकी भी जीवनचर्या होती है। इसलिए वह जिन बिंदुओं पर लिखता है, उससे जुड़े अथवा मिलते-जुलते पात्र हमारे परिवेश में भी हो सकते हैं।

इस संग्रह की शीर्षक रचना है 'नकटों के शहर में।' हालाँकि नाक पर पहले भी व्यंग्य लिखा जाता रहा है। हरिशंकर परसाई ने तो 'दो नाक वाले लोग' नामक रचना लिखी ही है, अन्य रचनाकारों ने भी नाक पर लिखा है। भारतीय जनमानस में जो मान्यता व्याप्त है, उसके अनुसार नाक हमारी प्रतिष्ठा का प्रतीक है। इसीलिए जब कोई गतिविधि हमारी प्रतिष्ठा में कमी का कारण बनती है तो उसे नाक कटाने वाला कृत्य कहा-माना जाता है। वर्तमान समाज की विडंबना यह है कि आज पहले के दौर से परिवर्तन यह आया है कि आज नाक कटाने वाले लोगों की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है। यह संख्या इतनी तेजी से बढ़ रही है कि पूरी नाक वाले अपवाद और अल्पसंख्यक की भाँति नजर आने लगे हैं। जिधर-जिधर जहाँ तक लेखक की दृष्टि जाती है, चहुँ ओर नकटे ही नकटे नजर आते हैं। ऐसे परिदृश्य में जब चारों ओर नकटे ही नकटे दिखते हैं तो लेखक को लगता है, मानो वह नकटों के शहर में रह रहा है, जिन्होंने अपने स्वार्थों में अंधे होकर अपनी नाक (प्रतिष्ठा) कटा डाली है। संवेदना की इसी जमीन पर संग्रह की शीर्षक रचना 'नकटों के शहर में' रची गई है। "जब से नाक कटने का ऐलान हुआ हैं, शहर के नकटे खुश हैं। उनको लगता है कि इस कदम से समाज में बराबरी कायम होगी। लोग जैसे होंगे, वैसे ही दिखेंगे। ऊँच-नीच का भेद भी खत्म होगा। सभी की सूरतें सपाट और सच्ची होंगी। अभी तक सुंदरता और समृद्धि की माप नाक से होती थी। वही नहीं होगी, तो क्या अमीर क्या गरीब। सौंदर्य के बाजार में भी ठंडक बढ़ेगी। इससे सामाजिक सद्भाव तो बढ़ेगा ही, सरकार को भी राहत मिलेगी।"

बाजार, राजनीति के साथ-साथ आज सोशल मीडिया ने भी जन-जन के जीवन में अपनी पैठ बनाई है। क्या गाँव, क्या शहर हर जगह हमारे हाथों में स्मार्टफोन और स्मार्टफोन में व्हाट्सअप, फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम आदि माध्यमों का प्रयोग धीरे-धीरे बहुत आम होता जा रहा है। लेखक ने इस संग्रह की रचनाओं में भी सोशल मीडिया की विसंगतियों पर व्यंग्य-प्रहार किया है। ट्रोल नाके से गुजरना, बिनु 'व्हाट्स अप' सब सून, मित्रता पर ऑनलाइन वज्रपात, फेसबुक : कुछ दृश्य आदि रचनाएँ इसका प्रमाण हैं। 'मित्रता पर ऑनलाइन वज्रपात' शीर्षक रचना का यह अंश देखिए: "वे मित्र थे। अब नहीं रहे। पिछली रात जब हम सोए थे, सब कुछ ठीक ठाक था। यह जानकर हमने इत्मीनान की नींद ली थी कि उनके फेसबुकी दिल में अपन महफूज है। सुबह उठा तो देखा ठुकराए प्रेमी के गुलदस्ते की तरह अपन उनके फेसबुकी दरवाजे पर मुरझाए पड़े हैं। दरवाजा अंदर से कसकर

बंद है। धूल झाड़कर अंदर जाने की कोशिश की, तो यह जानकर दिल बैठ गया कि दरवाजा लॉक है और हम 'ब्लाक'।" सोशल मीडिया ने हमें जहाँ एक-दूसरे से जुड़ने का मंच मुहैया कराया है वहीं एक-दूसरे के प्रति थोड़ा असहिष्णु भी बनाया है। असहमतियों की गुंजाइश निरंतर कम से कमतर होती जा रही है। हालात कुछ यूँ बन रहे हैं कि जो जहाँ है, वह वहाँ अपना एकाधिकार चाहता है। अपनी बात से असहमति किसी को तनिक भी स्वीकार नहीं है। सोशल मीडिया के मंच पर तो नजदीकी मित्र भी कई बार हल्के-फुल्के वातावरण में भी सामान्यत: बुरा मान जाते हैं और अपने घनिष्ठ मित्र को भी झट अंफ्रेंड कर ब्लॉक करने में भी नहीं चूकते। इसी प्रवत्ति पर यह पूरी रचना लिखी गई है।

इस लेखक की एक अन्य प्रमुख रचना है- 'आरत काह न करइ कुकरमू'। इस रचना में दल-बदल की अवसरवादी राजनैतिक प्रवृत्ति पर करारा प्रहार किया गया है। लेखक ने आज के राजनीतिज्ञों की पोल-पट्टी पूरी तरह खोल कर रख दी है। एक बानगी देखिए- "सच्चा जनसेवक दूरदर्शी होता है। सर्वदल समभाव में उसका पक्का यकीन ही उसे यायावर बनाता है। वह टिकट-वितरण से समझ लेता है कि उसकी 'वैतरणी-यात्रा' संकट में है। 'अंतर-आत्मा' की आवाज उसे जोर-जोर से पुकारने लगती है। उसके सामने सारे विकल्प खुल जाते हैं और वह नए खोल में आ जाता है।" एक तरफ शीर्षक और दूसरी तरफ रचना का अंत:स्वर, दोनों से जब पाठक का व्यंजना के धरातल पर तादात्म्य होता है तो समकालीन राजनीति की वास्तविक तस्वीर और उसमें व्याप्त विसंगति का मर्म समझ में आने लगता है।

किसी भी लेखक का किताबों की दुनिया से बहुत गहरा लगाव है। पुस्तकों के मेले में वह रुचि लेता है। मेले में जाकर वह किताबों से वार्तालाप करता है तो किताबों के साथ उसकी बातचीत बड़े ही रोचक अंदाज में होती है। समकालीन व्यंग्य साहित्य के लगभग सभी व्यंग्यकारों की प्रवृत्तियों पर उनकी रचनाओं के संकेतों के साथ लेखक ने बहुत करारा प्रहार व्यंग्य में किया है। आप स्वयं जब रचना को पढ़ेंगे तो उम्मीद है कि मेरे निष्कर्षों से आप भी सहमत होंगे। 'पुस्तक मेले में किताबों से बतकही' शीर्षक रचना से यह बानगी देखिए:

"सबसे पहले 'नारद की चिंता' से बात की। आखिर समकालीन व्यंग्य में सबसे प्रिय पुस्तक है यह मेरी। "आपके लेखक कहाँ है?"

"इन दिनों वो सबसे ऊँचे टीले पर चढ़ने में लगे हैं। उनका मानना है कि बड़ा होने के लिए ऊँचाई पर चढ़ना ही सेफ पैसेज है। इससे बाकियों पर नजर बनी रहती है। और ऊपर कोई थूकने की हिम्मत भी नहीं करता।"

"पर इस बात की आशंका हुई ही क्यों? वे तो अच्छा-खासा लिख भी लेते हैं।"

"तुमसे ज्यादा इस बात की चिंता हमें है। पाठक जब तक मेरा पन्ना पलटता है, उसके पहले ही पलट लेते हैं।...."

पास में रखी व्यंग्य यात्रा सिसक पड़ी। कहने लगी, "हमारे उनका तो और बुरा हाल है। अपने काम में इतना व्यस्त रहते हैं कि पूछो मत। मैं खुद ही बताए देती हूँ। उनके दोनों पैर हमेशा यात्रा में रहते हैं- एक पैर विमोचन संभालता है, तो दूसरा लगातार मिल रहे सम्मान को।"

"यह तो अच्छी बात है। सम्मानों का गिनीज बुक रिकॉर्ड वे ही हमारे साहित्य को दे सकते हैं।" गौरतलब है कि लेखक ने किसी व्यंग्यकार का नाम लिए बगैर रचनाओं आदि के द्वारा संकेत भर दिया है और पाठक इन पंक्तियों को पढ़ते हुए असल बात तक पहुँच जाता है जो लेखक का अभीष्ट है। शायद ही कोई ऐसी शख्सियत हो जिसे इस रचना में शामिल करने का काम लेखक ने किया है। इसी रचना में आगे लेखक बार-बार प्रहार करता चलता है : "अचानक बगल से आवाज सुनाई दी, "हम न मरब। हम न मरब।" मैंने देखा बब्बा कराह रहे थे। कहने लगे- "मेरा स्टेटमेंट भी लो। अभी हमने अपनी वसीयत नहीं बनाई है।" लेखक इनसे भी जवाब तलब करता है। आगे बढ़ते हुए 'कल्लू मामा जिंदाबाद' संग्रह से मुलाकात हो जाती है। उनसे भी सवाल जवाब शुरू होते हैं। "मैंने गौर से देखा तो कल्लू मामा जिंदाबाद के पन्नों से एक बूढ़ा कबूतर फड़फड़ाकर निकल रहा था। उसे देखते ही उसने उस

पर सवालों की गोली दाग दी.... "आपकी घर वापसी कब हुई? अगला बयान किस थाने में है? जवाब : भई, मेरी पसंदीदा जगह मंच है, थाना नहीं। वो इतिहास की बात है। अब मैं मंच से ही बयान पढ़ता हूँ। किसी भी मंच में बैठकर ईमानदारी से दाना चुगता हूँ और उड़ लेता हूँ।" जब लेखक यहाँ सवाल करता है कि "नए लेखकों के लिए क्या संदेश है? तो जवाब मिलता है "हमेशा झुंड में रहें, जहाँ दाना मिले दबोचें और फुर्र हो लें। हम जैसे बुजुर्गों की इज्जत करते रहें। कृपा मिलती रहेगी। तभी पीछे से अट्टाहस सुनाई दिया। गर्दन पलटकर देखा तो अट्टहास के पन्नों में जटायु दबे हुए थे। हमने पूछा, "कैसे हैं आप?" जवाब मिला, "जब तक सांस है, आस है। इधर नए बंदरों ने जीना हराम कर दिया। लेकिन मैंने भी सोच रखा है कि जब तक 'सब मिले हुए हैं', हमारे इनबॉक्स की बत्ती जलती और लालबत्ती की कार चलती रहेगी।" इस प्रकार के संवादों की व्यंजना को, जो व्यंग्य प्रेमी और अध्येता हैं, वे आसानी से समझ सकते हैं। यही सवाल-जवाब यदि नामवाची कर दिए जाते तो उतना आनंद नहीं आता, जितना रचनाओं के नाम लेकर प्रस्तुत करने में आ रहा है। यह लेखक की अध्ययन दृष्टि और उसकी विशिष्टता है कि वह पूरे प्रसंगों को इस प्रकार ईंट-दर-ईंट सजाता चलता है यही लेखक का अपना तेवर है और विसंगतियों को व्यंग्य में पिरोते हुए प्रस्तुत करने वाली उसकी अपनी शैली। वरना ऐसी रचनाओं को कोई पत्रिकाओं के संपादक तो नामचीन व्यंग्यकारों से बिगाड़ के डर से छापने से भी इनकार कर देते हैं। ऊपर से तुर्रा यह कि ऐसे कमजोर हृदय वाले संपादक खुद को व्यंग्यकारों में गिनते नहीं अघाते। जब व्यंग्यकार ही रिश्तों में बिगाड़ के डर से सच्चाई का पक्ष लेने में संकोच करेगा तो ऐसे व्यंग्यकारों के होने-न होने के कोई मायने नहीं हैं। कम-से-कम ऐसी रचनाएँ इस बात का जवाब तो हैं ही कि यदि व्यंग्यकार भी विसंगतियों से ग्रसित होगा तो उनपर भी कोई न कोई व्यंग्यकार लेखनी चलाएगा और उनकी विसंगतियों पर रचनात्मक प्रहार करेगा।

रिश्तों में बिगाड़ के डर से जो लोग सच कहने में संकोच कर जाते हैं या सच का दामन छोड़ देते हैं, उनको मैं मुंशी प्रेमचंद की अमर कथा 'पंच परमेश्वर' के उस प्रसंग की याद दिलाना चाहूँगा, जब खाला जान से संवाद करते हुए अलगू चौधरी अपने मित्र जुम्मन के खिलाफ फैसला देने में असमर्थता व्यक्त करते हैं। वहाँ प्रेमचंद खाला के द्वारा एक ऐसा सवाल खड़ा करते हैं, जो इस कहानी की थीमलाइन सिद्ध होती है। खाला अलगू से पूछती है : "बेटा, क्या बिगाड़ के डर से ईमान की बात न कहोगे?" प्रेंमचंद यहाँ लिखते हैं- "हमारे सोए हुए धर्म-ज्ञान की सारी संपत्ति लुट जाए, तो खबर नहीं होती, परंतु ललकार सुनकर वह सचेत हो जाता है। फिर उसे कोई जीत नहीं सकता। अलगू इस सवाल का कोई उत्तर न दे सका, पर उसके हृदय में यह शब्द गूंज रहे थे- क्या बिगाड़ के डर से ईमान की बात न कहोगे" इन्हीं कालजयी पंक्तियों की वजह से प्रेमचंद अमर कथा-शिल्पी माने जाते हैं। भूलना नहीं चाहिए कि ईमानदारी सर्वोत्तम नीति हैं मानव-मूल्य हैं। और इस मूल्य की रक्षा हर हाल में होनी चाहिए। अपनी इस कहानी से प्रेमचंद यही संदेश देना चाहते थे। यह संदेश कल भी प्रासंगिक था, आज भी है, और कल भी रहेगा। वर्तमान युग के किसी भी साहित्यकार और व्यंग्यकार के लिए अनिवार्य रूप से यह संदेश लागू होता है। व्यंग्यकार को सदा विसंगतियों के खिलाफ लिखना होता है। चाहे वे विसंगतियाँ कनिष्ठ-वरिष्ठ किसी की भी हों, विसंगतियाँ, विसंगतियाँ हैं। उनपर प्रहार ही व्यंग्यकार का दायित्व है। मुझे खुशी और गर्व है कि संतोष त्रिवेदी इस कसौटी पर खरे उतरते हैं और कभी ऐसे कठिन सवालों से कतराते हुए दिखाई नहीं देते। आज हमारे समाज में ऐसे ही व्यंग्यकारों की अधिकाधिक आवश्यकता है जो मुँहदेखी बातें न करके मुद्दों की बातें करें और सच को स्वीकार करते हुए तमाम विसंगतियों को बेपर्दा कर अपनी रचनाओं द्वारा उन पर व्यंग्य-प्रहार करें। मेरी समझ से यही किसी रचनाकार के लिए बेहतरी का मार्ग है, और उसकी मुक्ति का भी।

– 64-बी, फेस-II, डीडीए फ्लैट, कटवारिया सराय, नई दिल्ली-110016

❑❑❑

रस्सी पर चलती लड़की

डॉ. सारिका कालरा

'रस्सी पर चलती लड़की' काव्य-संग्रह 2017 में प्रकाशित हुआ है। यह भगवान वैद्य प्रखर द्वारा लिखित दूसरा काव्य-संग्रह है तथा बोधि प्रकाशन, जयपुर से प्रकाशित है। उनके पहले काव्य-संग्रह और इस काव्य-संग्रह के बीच लगभग छह वर्ष का अंतराल है और जैसा कि सहज स्वाभाविक है उनके पहले काव्य-संग्रह से दूसरे की यात्रा के बीच कवि ने अपने अनुभवों की अभिव्यक्ति के लिए अपने शब्दों में और अधिक तीखापन पैदा किया है वह भी बिना जल्दबाजी के। उन्होंने इस तथ्य को इस काव्य-संग्रह की भूमिका में भी स्वीकार किया है कि "छह वर्षों में घटित परिवर्तन, नए परिचय, नए अनुभव, नई अनुभूतियाँ, नई किरचें अर्थात् .... नए अहसास! मैंने अपनी ओर से जल्दबाजी नहीं की। आसमान में उड़ने वाले पंछियों से कौन कहे कि जमीन पर उतरो। जब जैसा बना, शब्दों में व्यक्त कर दिया" संग्रह की भूमिका में ही कवि का इतना उदार स्पष्टीकरण आकर्षित करता है। कवि के लिए कविता लिखना एक सहज स्वाभाविक प्रक्रिया है। जैसे पृथ्वी पर उपस्थित सभी प्राणी सहज स्वाभाविक प्रक्रिया द्वारा चलायमान हैं वैसे ही कवि के लिए कोंपलों या पंखुडियों की भाँति मन में खिली नवीनतम भावनाओं की सहज, सुंदर अभिव्यक्ति का माध्यम कविता है। कवि भगवान वैद्य प्रखर ने व्यंग्य, कहानी, लघुकथा, लेख, यात्रा-वृतांत आदि भी लिखे हैं लेकिन ये सारी विधाएँ कवि के लिए वैसी ही हैं जैसे दूध से छाछ, दही, मक्खन, मावा, पनीर, रबड़ी आदि दूध से बने पदार्थ निकलते हैं लेकिन कविता मूल है अर्थात् कविता दूध की भाँति मूल है। कवि ने अपने आसपास जो देखा, जो महसूस किया उसे शब्दों में बिना लाग-लपेट के इस संग्रह में व्यक्त कर दिया।

इस संग्रह में निन्यानवे कविताएँ हैं। संग्रह की दूसरी कविता 'प्रिंट आउट' इस तकनीकी युग की सहूलियत को तो व्यक्त करती ही है लेकिन साथ ही हमारे संबंधों में इस तकनीक के कारण आई संवेदनहीनता को भी व्यक्त करती है। स्मृतियों को 'पेन ड्राइव' में सहेज कर नहीं रखा जा सकता, न ही वे एक गलत क्लिक से डिलीट हो पाती हैं। कोई वायरस भी इन स्मृतियों को चौपट नहीं कर सकता। 'प्रिंट आउट' भी उनके स्थायित्व की गारंटी नहीं देता। स्मृतियाँ तो वे जीवंत अहसास होती हैं जिनके बूते हम अपना समस्त जीवन निभा जाते हैं। फिर आज के तमाम उपकरण चाहे मनुष्य ने अपनी सुविधा के लिए इजाद कर लिए लेकिन ये उपकरण वास्तव में मनुष्य के 'स्मृतिभंग' का ही कारण बन रहे हैं। अहसासों का, गंध, स्पर्श का कोई प्रिंट आउट कभी निकल ही नहीं सकता-

काश,
स्पर्श, गंध, अहसास का भी
प्रिंट आउट निकल पाता
तो संबंधों के नाम पर
तुम्हारे मेरे बीच केवल कोरा स्क्रीन न होता

'रस्सी पर चलती लड़की' (काव्य-संग्रह)/ भगवान वैद्य 'प्रखर'/ बोधि प्रकाशन, एफ-77, सेक्टर-9, रोड न. 11 करतापुरा इंडस्टियल एरिया, बाईस गोदाम, जयपुर-302006/ प्रकाशन वर्ष : 2017/ पृष्ठ : 152/ मूल्य : ₹150/-

'बचपन' कविता 'प्रिंट आउट' कविता का ही विस्तार है। इस कविता में परिवार का सबसे छोटा सदस्य मेधावी है। वह ग्रह, तारों, का अस्तित्व आंक चुका है। ब्रह्मांड के कई रहस्यों को जान चुका है लेकिन इस दुनिया के बल्कि अपने परिवार के भीतर संबंधों में समा चुकी संवेदनहीनता की तह तक पहुँच पाने में वह असमर्थ है। उसके मम्मी-पापा, मम्मी-दादी और दादा जी और पापा के बीच वे कौन से ग्रह हैं जो इनको एक दूसरे के करीब नहीं आने देते। इन प्रश्नों के उत्तरों को वह गूगल, याहू पर भी खंगाल चुका है। पर क्या इनके उत्तर उसे कभी मिल पाएँगे? यह कवि की वास्तविक चिंता है। वर्तमान समय में ज्ञान-विज्ञान पर तो हम आधिपत्य जमा चुके हैं लेकिन क्या अपने आस-पास फैले रिश्तों में समाई-रिक्तता, अजनबीपन, ऊब, संत्रास का कोई विज्ञान कभी जान पाएँगे हम? भविष्य में आने वाली पीढ़ियाँ शायद इस अपनेपन का पाठ कभी पढ़ ही न पाएँ। मोबाइल, इंटरनेट का ये कृत्रिम युग हमें अपनी जड़ों से दूर कर रहा है सहजता, स्वाभाविकता जैसे अब दूर की चीजें लगती हैं। सब कुछ को एक उपकरण में संजोकर रख लेने के इस युग से पुरानी पीढ़ी आक्रांत हैं। अपने जीवन के अंतिम पड़ाव पर पहुँचे पिता की पीड़ा 'जड़े' नामक कविता में स्पष्ट है जो अपनी मृत्यु से पूर्व अपनी सारी संपत्ति का बंटवारा अपने बेटों में करने के बाद चाहता है कि उसका चश्मा, टोपी, लठिया, किताबें उसकी चिता पर ही रख दिए जाएँ क्योंकि आज के समय में इन व्यर्थ की चीजों का कोई दावेदार नहीं होता। यह कविता एक व्यंग्य है आज की इंटरनेट संस्कृति पर और कवि *ने बखूबी इसे इस कविता में व्यक्त किया है-*

बैंक बैलेंस, फर्नीचर, टी. वी., फ्रिज
सबके बंटवारे की सूची बन गई
बस नामुराद ये किताबें रह गई
× × ×
जिनका कोई लेवाल नहीं।

व्यंग्य किसी भी रचनाकार का एक सशक्त हथियार है। कवि ने इस व्यंग्य का बखूबी इस्तेमाल अपने इस काव्य-संग्रह में किया है। संग्रह में कविताएँ देखते ही बनती हैं। इतिहास, वर्तमान, राजनीति, अर्थशास्त्र, पारिवारिक संवेदनाएँ आदि कोई ऐसा विषय नहीं है जहाँ कवि की दृष्टि न गई हो। इन बहुविध संवेदनाओं से पटी हुई काव्यकृति की काव्यभाषा में भाषा के सारे अस्त्रों का ही कवि ने प्रयोग किया है। व्यंग्य का मारक प्रयोग कई कविताओं में देखते ही बनता है। 'सोने की चिड़िया', 'नदी', 'पिता, 'लैप-टॉप', 'पुत्र', उम्रदराज' आदि ऐसी अनेक कविताएँ हैं। समृद्ध इतिहास की तुलना कवि आज के समय से करते हुए व्यंग्यमयी शब्दावली में 'सोने की चिड़िया' में करते हुए कहता है-

कहते हैं, भारत कभी
सोने की चिड़िया था
मैं कहता हूँ वह आज भी है
× × ×
अरबों की लागतवाली शादी में मिल जाती है
शराब के गिलास में अलमस्त डूबी हुई
चुनाव के दौरान
कठपुतली-सी नाचती हुई
पर कटी, कुछ हाथों में बंदिस्त,
हमारी प्यारी सोने की चिड़िया।

कवि को अपने गौरवशाली और समृद्ध अतीत का गुमान तो है ही लेकिन साथ ही जब वह आज के संदर्भ में अपने अतीत को देखता है तो वह एक तीखी पीड़ा से गुजरता है। वास्तव में यह सिर्फ कवि के भीतर उमड़ता हुआ प्रश्न ही नहीं है अपितु यह समस्त जनसाधारण का प्रश्न है कि आखिर हमारा समस्त देश सोने की चिड़िया से बदलकर चंद लोगों के लिए ही सोने की चिड़िया बनकर रह गया है। उन तथाकथित लोगों को कवि अपनी इस कविता में निर्भीकता से इंगित भी करता है। इसी तरह से 'छवि' नामक कविता एक शोचनीय स्थिति पैदा करती है साथ ही मीडिया की भूमिका पर भी प्रश्नचिह्न लगाती है। पूरे भारत का चित्र यहाँ उपस्थित है, कहाँ था पूरा भरत? कहकर कवि अपनी बेचैनी प्रकट करता है। मीडिया द्वारा कुछ चंद जुमलों को उछाल भर देने से एक वास्तविक स्थिति स्पष्ट नहीं होती। कविता में कवि उल्लेख करता है कि नए प्रधानमंत्री के शपथ ग्रहण समारोह में यह बताया गया कि पूरा भारत यहाँ उपस्थिति था लेकिन वास्तव में कवि की चिंता है कि क्या यह पूरा भारत है? नहीं पूरा

भारत तो बसता है- आत्महत्या ग्रस्त किसान के परिवार में, कुपोषण की बलि चढ़े बालकों में, सड़क के किनारे जिंदगी बिता रहे लोगों में, झोपड़पट्टी में आदि इन सब के बिना क्या भारत का पूरा चित्र उपस्थित हो सकता है शायद नहीं। 'पैसा बह रहा है' कविता में व्यंग्य की धार पैनी है। यहाँ पैसे की बाढ़ आ गई है हर जगह-मेल मुलाकातों में, कोर्ट-कचहरी में, प्यार की बातों में, आचरण में, रिश्तों में आदि हर जगह और हद तब हो जाती है, जब यह पैसा 'दुर्लभ प्रजाति के विषधर की भाँति उड़कर' वहाँ छलांग लगा देता है जहाँ सांत्वना या संवेदना पहुँचा करती थी। राजनीति में चुनाव की बात हो तो यह पैसा विकराल बाढ़ को भी मात दे देता है-

पैसे का तांडव, सब बहने लगता है उसमें
सत्य, चरित्र, मित्रता, नैतिकता
विश्वास के पौधे उखड़ जाते हैं जड़ से
निष्ठा, आत्मीयता की लाशें
बहती दिखाई देती हैं।

कवि पर्यावरण संरक्षण के प्रति भी काफी सतर्क है। संग्रह की कई कविताएँ इसका उदाहरण हैं- 'नदी', 'धरती अवसर चाहती है', 'इंद्रधनुष', 'पेड़ और इंसान', 'किताबें', 'बूढ़ा तालाब' आदि। 'नदी' कविता एक बिंबधर्मी कविता है। एक ऐसी स्त्री से उसकी तुलना की गई है जिसके साथ जबरन अकरणीय किया गया हो। पहले उसकी शिराओं में जहर भरा गया, फिर उसे अखाद्य खिलाया गया, उसका गला दबोचा गया। नदी अपनी अस्मिता बचाने के लिए चीखी- चिल्लाई थी लेकिन उसके हाथ-पैर बाँध दिए गए। जिससे जो बना, जिसके हाथ जो लगा वह नदी से लूट कर ले गया और धीरे-धीरे एक दिन उसका छटपटाना बंद हो गया। और आज वह एक छिपकली की भाँति दिखाई देती है- "लोग कहते हैं, कभी 'नदी' नाम था उसका, हाँ, एक जीवित नदी थी वह" ऐसी कविताएँ आक्रांत करती हैं। हमारा भविष्य पर्यावरण के संरक्षण पर ही टिका हुआ है और हम अपने जीवित रहने के साधनों को ही नष्ट करते जा रहे हैं। प्रकृति के इस दोहन के भयंकर परिणाम हमें भुगतने होंगे। कवि अपनी इन कविताओं द्वारा हमें चेताता हुआ चलता है। तालाब, नदियाँ सूखती जा रहीं हैं और मानव बस्तियाँ बढ़ती चली जा रही हैं। तालाब अब मगरमच्छ की आँख-सा दिखाई देता है और दृश्य इतना भयावह हो गया है कि-

चारों ओर से कूड़ा, झुग्गियाँ, मलबा और
शहर की गंदगी से पटा पड़ा है तालाब
उसकी आयु का
कोई साथी शेष नहीं है, उसके इर्दगिर्द
न कोई पौधा, न कोई इमारत
यहाँ तक कि पुराना श्मशान भी
बढ़ती बस्ती निगल गई

इस काव्य-संग्रह की शीर्षक कविता 'रस्सी पर चलती लड़की' अपनी संवेदना में बेमिसाल है। स्त्री संवेदना के जितने भी पक्ष हो सकते हैं वे सारे यहाँ मौजूद हैं। घर और बाहर हर जगह स्त्री शोषित है। समाज के तथाकथित वर्ग चाहे वे उच्च हों या निम्न या अति निम्न वर्ग सभी स्त्री को एक वस्तु की तरह इस्तेमाल करते हैं। इस कविता में लड़की एक वस्तु या कहें एक विज्ञापन की तरह इस्तेमाल की गई है। समाज का यह वर्ग जो खेल दिखाकर अपना जीवनयापन करता है वह भी भलीभाँति जानता है कि स्त्री को सामने रखकर ही समाज की संवेदना को पाया जा सकता है। लोगों की रुचि इस खेल में तभी बनेगी जब पुरुष के स्थान पर स्त्री उस जानलेवा खेल में हिस्सा लेगी। पिता के हाथ में कोड़ा उसे भयभीत करता है कि अगर वह इस रस्सी को पार नहीं करेगी तो हश्र बुरा होगा। पिता द्वारा उसके खुद के शरीर पर बरसाए गए कोड़े उसे भीतर तक हिला कर रख देते हैं उसे लगता है कि यह कोड़े पिता अपने शरीर पर नहीं बल्कि उसके खुद के शरीर पर बरसा रहे हैं और लड़की इस भय के चलते रस्सी के दूसरे छोर पर पहुँच जाती है। खेल खत्म होने पर तालियाँ मिलती हैं पर लड़की सोचती है कि भाई के होते हुए उसे ही क्यों इस रस्सी पर चढ़ा दिया जाता है? "माँ की गोद में सहमी लड़की सोच रही है, इस खेल में, हर बार उसे ही क्यों चढ़ाया जाता है रस्सी पर!" लड़की के इस प्रश्न का जवाब तो माँ के पास भी नहीं है। इस प्रश्न का जवाब तो इस व्यवस्था के पास है। एक ऐसी व्यवस्था जिसमें स्त्री के हिस्से आती है केवल जिम्मेदारी, कर्तव्य और त्याग। कवि ने बहुत ही बेबाक ढंग से और सधी हुई भाषा में इस व्यवस्था पर

कुठाराघात किया है। इसके अतिरिक्त 'उम्रदराज' जैसी अनूठी कविता इस संग्रह का हिस्सा है जो उन बुजर्गों को समर्पित है जो अपनी जड़ों से दूर हैं। और अपनी संतानों के पास रहने को मजबूर हैं। ये फ्रैक्चर्ड उम्रदराज, रिपेअर्ड उम्रदराज, जर्जर उम्रदराज, ऑपरेटड पर अपनी बिखरती यादों के सहारे धीरे-धीरे काल के गाल की तरफ बढ़ रहे हैं।

– हिंदी-विभाग, लेडी श्रीराम कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, लाजपत नगर, दिल्ली-110024

❑❑❑

संपर्क सूत्र

1. डॉ. दीनदयाल, 146, द्वितीय तल, अशोका एंक्लेव, मेन फरीदाबाद, हरियाणा-121003
2. डॉ. संध्या वात्स्यायन, एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, अदिति महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
3. डॉ. वीरेंद्र सिंह बर्त्वाल, मकान नंबर-एच. 301, नेहरू कॉलोनी, धर्मपुर, देहरादून, उत्तराखंड-248001
4. श्रीमती बबीता रानी श्रीवास्तव, सहायक निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली-110066
5. डॉ. जय कौशल, सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, त्रिपुरा विश्वविद्यालय, अगरतला, त्रिपुरा
6. श्री रमेश चंद्र, 46/22, गांधी नगर, पिक इंडिया के पीछे, गली नं. 12, पटौदी रोड, गुरुग्राम हरियाणा-122001
7. श्री रामभवन सिंह ठाकुर विद्यावाचस्पति, 'रामाश्रम' महाराज बाग, भैरोगंज, जिला- सिवनी (म. प्र.)-480661
8. सुश्री कंचन बाला, द्वारा श्री कोजाराम टाडा, ए-32, कृष्णा नगर, नई पाली रोड, बासनी कृषि मंडी पोस्ट आफिस, जोधपुर-342005
9. डॉ. ओम प्रकाश पांडेय, गेट बाजार, (एन. जे. पी.) पो. भक्तिनगर, सिलीगुड़ी-734007 (पं. बंगाल)
10. प्रो. प्रदीप के. शर्मा, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, चेन्नई
11. डॉ. रजनी 'प्रताप', सहायक प्रवक्ता, हिंदी विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला (पंजाब)
12. डॉ. अनीता गांगुली, केंद्रीय हिंदी संस्थान, 2-2-12/5, डी. डी. कॉलोनी, शिवम रोड, हैदराबाद-500007
13. श्री इंदुकांत शर्मा, बी-4/177, सफदरजंग एंक्लेव, नई दिल्ली-110029
14. डॉ. विमला उपाध्याय, 'वृंदावन', मनोरम नगर, एल. सी. रोड, धनबाद, झारखंड-826001
15. सुश्री प्रियदर्शी खेरा, 90-91 यशोदा विहार, चूना भट्टी, भोपाल (म. प्र.)
16. डॉ. पवन कुमार खरे, 196, शिवाजी पार्क कॉलोनी, उज्जैन (म. प्र.)
17. डॉ. एच. एच. वेंकटेशमूर्ती, 97, सखि, पुष्पगिरि नगर, बनशंकरी तीसरा स्टेज, बेंगलोर-560085
18. श्री डी. एन. श्रीनाथ, नवनीत, IInd क्रॉस, अन्नाजी राव लेआउट, प्रथम स्टेज, विनोबा नगर, शिमोगा, कर्नाटक-577204
19. श्री ईरोडु तमिळन्पन्, 95, IInd मेन रोड, पोरूर थोटम, चेन्नई-600095
20. श्री र. शौरिराजन, 24, 41-गली, सेक्टर-8, के. के. नगर, चेन्नई-600078
21. श्री नारायण जी, ग्राम प्रो. घोघरडीहा, जिला-मधुबनी, बिहार 847402

22. श्री वैद्यनाथ झा, मकान नं. 405, बी-ब्लाक, सेक्टर-56 (हुडा प्लाट्स) गुरुग्राम-122011 (हरियाणा)

23. श्रीनिवासराव, 4-66-1/4, लॉसन्स बे कॉलोनी विशाखापटनम्-530017

24. प्रो. एस. शेषारत्नम, 4-66-1/4, लॉसन्स बे कॉलोनी विशाखापटनम्-530017

25. प्रो. पूरनचंद टंडन, 'संकल्प', डी-67, शुभम एंक्लेव, पश्चिम विहार, नई दिल्ली

26. सुश्री वशिनी शर्मा, 53, कैलाश विहार, आगरा, उत्तर प्रदेश- 282007

27. डॉ. जय शंकर शुक्ल, भवन सं. 49, गली सं. - 06, बैंक कॉलोनी, मंडोली, दिल्ली-110093

28. डॉ. रमेश तिवारी, 64-बी, फेस-II, डीडीए फ्लैट, कटवारिया सराय, नई दिल्ली-110016

29. डॉ. सारिका कालरा, हिंदी-विभाग, लेडी श्रीराम कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, लाजपत नगर, दिल्ली-110024

❑❑❑

केंद्रीय हिंदी निदेशालय

<u>भाषा पत्रिका की सदस्यता हेतु आवेदन पत्र</u>

सेवा में,

निदेशक

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग

मानव संसाधन विकास मंत्रालय, पश्चिमी खंड-7, आर. के. पुरम - 110066

ई-मेल chdsalesunit@gmail.com

फोन नं. - 011 - 26105211 एक्सटेंशन नं. 201, 244

महोदय/महोदया

कृपया मुझे **भाषा** (द्वैमासिक पत्रिका) का एक वर्ष के लिए / पाँच वर्ष के लिए / दस वर्ष के लिए / बीस वर्ष के लिए दिनांक ..... से सदस्य बनाने की कृपा करें । मैं पत्रिका का वार्षिक / पंचवर्षीय / दस वर्षीय / बीस वर्षीय सदस्यता शुल्क ..... रुपए, निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्राफ्ट सं ..... दिनांक ..... द्वारा भेज रहा/ रही हूँ। कृपया पावती भिजवाएं ।

नाम : .....

पूरा पता : .....

.....

मोबाईल/दूरभाष : .....

ई-मेल : .....

संबद्धता / व्यवसाय : .....

आयु : .....

पूरा पता जिस पर : .....

पत्रिका प्रेषित की जाए .....

सदस्यता	**शुल्क डाक खर्च सहित**
वार्षिक सदस्यता	रु. 125.00
पंचवर्षीय सदस्यता	रु. 625.00
दसवर्षीय सदस्यता	रु. 1250.00
बीसवर्षीय सदस्यता	रु. 2500.00

डिमांड ड्राफ्ट **निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय होना चाहिए ।** कृपया ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम एवं पूरा पता भी लिखे ।

नाम एवं हस्ताक्षर

नोट: कृपया पते में परिवर्तन होने की दशा में कम से कम दो माह पूर्व सूचित करने का कष्ट करें ।

सत्यमेव जयते

भारत के उपराष्ट्रपति
VICE-PRESIDENT OF INDIA

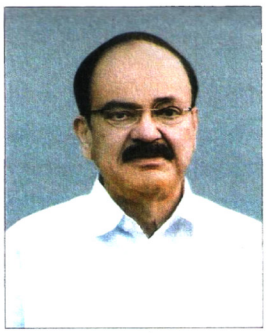

संदेश

मैं यह जानकर हर्षान्वित हूँ कि केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा "भारतीय भाषा कोश (संविधान की अष्टम अनुसूची में सम्मिलित 22 भाषाएँ)" का प्रकाशन किया गया है।

भारत एक भाषावैविध्यपूर्ण राष्ट्र है। यहाँ का भाषाबाहुल्य देखकर उचित ही कहा जाता है कि "कोस-कोस पर पानी बदले, चार कोस पर वाणी"। वस्तुतः भाषा संस्कृति और संस्कारों की संवाहिका होती है। शब्द की महिमा अप्रतिम है। वस्तुत: शब्दराहित्य निष्प्राणता का प्रतीक माना जाता है। भारतीय सुदीर्घ आदि संस्कृति के उत्स से अनेक भाषाएं अनुस्यूत हुई हैं। ये सभी भाषाएँ अपने देश, काल, वातावरण के आक्षेपणों से ढल कर वर्तमानकालिक सुदृढ़ भाषाओं के रूप में आविर्भूत हुई हैं। सभी भारतीय भाषाएँ समरसता और सादृश्यता से ओतप्रोत हैं। ये इस विविधताओं से भरे राष्ट्र को एकजुट बनाए रखने और आर्य संस्कृति को अक्षुण्ण बनाए रखने में पूर्ण रूप से सफल रही हैं। यही कारण रहा है कि विश्व सदैव इस उदात्त संस्कृति की अनुपम भास्वर छवि से अभिभूत रहा है।

प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी भाषियों के लिए न केवल सम्पूर्ण भारतीय भाषाओं के साथ प्रामाणिक परिचय स्थापित करने का एक अनन्य माध्यम है अपितु इस कोशग्रंथ के माध्यम से नवीन अंतरभाषिक शोधों के परिणयन में भी अतीव सुविधा प्राप्त होगी। पुस्तक में शब्दों का वैज्ञानिक एवं व्यवहार्य चयन न केवल इसकी दैनंदिन उपादेयता का संवर्धन करता है अपितु इसके साहित्यिक और अद्यतन उपयोग की असीम संभावनाओं को भी द्योतित करता है। मुझे आशा है कि यह पुस्तक समाज में भाषिक द्वन्द्वों के परिहरण हेतु निस्संदेह अपनी यथोचित भूमिका निभाएगी।

मैं पुनः लेखकवृन्द के सराहनीय सत्प्रयास की प्रशंसा करता हूँ और प्रकाशित पुस्तक हेतु अपनी अनंत शुभकामनाएँ संप्रेषित करता हूँ।

(एम. वेंकैया नायडु)

नई दिल्ली
26 जून, 2019

पंजी संख्या. 10646/61
ISSN 0523-1418

भाषा (द्वैमासिक)
BHASHA-BIMONTHLY
पी. ई. डी. 305-5-2019
700

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
उच्चतर शिक्षा विभाग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार
पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110066
www.chdpublication.mhrd.gov.in
प्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय, रिंग रोड, मायापुरी, नई दिल्ली – 110064 द्वारा मुद्रित